

आत्म-रहस्य

[आत्मा, सत्य और दशन-मीमासा]

लखक

श्री रत्नलाल जैन

सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

प्रकाशक
मातण्ड उपाध्याय मंत्री
रास्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

प्रथम बार १९६८

मूल्य
तीन रुपए

मुद्रक
ज० के० शर्मा
इलाहाबाद ना जनक प्रस
इलाहाबाद



स्व० ए० हीरालाल जन

समर्पण

पूज्य पिता स्वर्गीय
ला० हीरालाल जी
के चरणों
में

यह पुस्तक

म 'आमरहस्य' को पढ़ गया। इसमें लेखकने यह गिरलान का प्रयास किया है कि न केवल विभिन्न धर्म और दान प्रत्युत भाषुनिक विज्ञान और मनोविज्ञान भी सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा का प्रतिपादन करते हैं। विभिन्न विचारका के दृष्टिकोण विभिन्न हैं। यह भद कुछ ता विचारको के हृदि भक्तके कारण उत्पन्न हुआ है, कुछ देगकालगत परिस्थितियां न उनको इम बात के लिए विवग किया कि पदाय क पयक पयक पहलुआ को अधिक महत्त्व दें। इस नयभद के कारण पदाय के वणन में वषम्य का पाया जाना स्वाभाविक है, परन्तु यदि वषम्य के वारण का ध्यान में रर कर निष्पदा तप मे काम लिया जाय तो विभिन्न मता का समन्वय करके आत्मा के स्वरूप का परिचय मिल सकता है। आत्मा के स्वरूप के साथ-साथ जगत् के स्वरूप कमफल की प्राप्ति प्रप्राप्ति आदि कठिन समस्याओं की ग्रथियां भी खुल सकती हैं। रतननालजी न ग्रथियों का खोला भी है। वह जिस परिणाम पर पहुँच है वह बहुत दूर तक ता वाहस्पत्य विचारधारा को छोड़कर सभी भारतीय दानों की समान भूमिका और सम्पनि है। इसके भाग उनके विचार उन विषय तथ्या की आर भुके हैं, जिनका प्रतिपादन जन आचार्यों ने किया है।

जहाँ तक पुस्तक का उद्देश्य यह प्रनिष्ठापित करना है कि आत्मतत्त्व विचारणीय है हमको जगत् के भौतिक स्वरूप-मात्र को इतिथी न मानना चाहिए विचार में असहिष्णु होकर इदमिथमव न मानकर विभिन्न पहलुआ को देखकर मतुलन करना चाहिए आत्म-स्वरूप को पहचानन के लिए मनन व साथ-साथ त्याग तप समाधि की आवश्यकता है वहाँ तक भ रतननालजी को उनकी सफनता पर बघाई देना है। प्राच्य और पाश्चात्य विचारा का एक ही जगह मच्छा सग्रह हुआ है और यह सग्रह वृद्धि को अकृा देकर सोचन के लिए विवग करता है।

—सम्पूर्णानिद

प्राक्थन

दीर्घकालीन पराधीनता के पश्चात् भारत स्वतंत्र हुआ है। आज हम उसके उज्ज्वल भविष्य की धार दृष्टि लगाय हुए हैं। भारतमाला का प्रत्येक सपूत उसकी आर्थिक, राजनतिक आदि उन्नतिकी योजना बनाने व कार्यावित करनेमें मलग्न है। मनिव गिदा अनिवाय करके समस्त देश के शम्भीकरण में ही कुछ सञ्चना को भारत का कल्याण दीखता है। कुछ को भारत में बडे बड कारखान खोलकर उत्पादन बढान में ही भारत की भलाई प्रतीत होती है। और कुछ पाश्चात्य देशों के समाजवाद में ही भारत का हित समझने है।

मेरी धारणा है कि जबतक हमारी उन्नति का आधार अध्यात्मवाद या वैज्ञानिक धर्म नहीं होगा तबतक मानव-समाज का वास्तविक कल्याण नहीं हो सकेगा तथा एक के बाद दूसरे महा भयकर युद्ध उपस्थित होकर इस ससार को काल करान के मुह में भोवन रहेंगे। आज भी सभार तीसरे महायुद्ध की धार बड बग के नाय दौड़ रहा है। मेरी भावना है कि अध्यात्मवाद को आधार मान कर भारत की आर्थिक सामाजिक राजनतिक मनिव आदि समस्त क्षत्रा में इतनी उन्नति की जाए कि कोई भी राष्ट्र उसको बुरी दृष्टि से देखने का साहस न कर सके तथा भारत ससार को अहिंसा व प्रेम का पाठ सिखाकर उसका आध्यात्मिक नतत्व कर सके।

महात्मा गांधी द्वारा संचालित मत्याग्रहो म भाग लन के कारण मुम अनक बार कारावास में कितन ही समय तक रहना पडा है जहा अध्ययन मनन व लिखने के स्वण अवसर प्राप्त हुए हैं। सन् १९३० व

१९३० व गण्णाप्रहो के समय म द्म पुस्तक का विनाश था। गांधी विचारों न पढ़कर विचार ही सुभाष चिन्तने के अनुसार द्म पुस्तक में गण्णापन कर दिया गया। मन् १९३० के कारावास व पञ्चान् द्म पुस्तक का स्वर्गीय ब्रह्मचारी श्रीरामदासजी व श्री नाथुरामजी प्रणी न पढ़कर उचित समझा दिया। उनके परामर्शानुसार गण्णापन करके पुस्तक को अधिक सुरक्षित बनाया गया। लेकिन गांधीजी के दिनों में द्म पुस्तक व कार्ण पुस्तक में शोषण करके शीघ्र ही अंत में भंग न गया।

मन् १९४० व १९४२ व स्वतंत्रता आन्दोलनों में फिर कारावास में जाना पड़ा वहाँ पुस्तक का बचपान रूप दिया। गांधी चन्द्रमन् स्वामी न द्मकी भाषा का परिभाषित किया है। जिन उल्लेख गया द्म विज्ञान गांधी व द्म पुस्तक का आधारित रूप म् में गण्णापन ही है उनका म धारणी है। कारावास म १९४४ म बाहर आने पर देग की विषय परिस्थिति तथा बागज की मरगाई दुर्घटना व द्मकी पाठ्य व द्म पुस्तक के प्रकाशन में धीरे धरे मरगाई। भाई राजद्रुमार जी न इनाहाबा लो जनत प्रग में द्म वगैरे तथा म्ता गांधीय मदन म प्रकाश बनकर पुस्तक का जनता तक पहुंचाने में सहायता ही है धन उनका भी धारणी है।

मरी धारणा है कि वर्तमान प्रचलित धर्मों व धर्मगत धर्मात्मवा एकमा ही है। मनुष्य जैसे भिन्न प्रकार व वर्तन धारण करके धर्म प्रचार का निश्चय देता है एम ही यह धर्मात्मवाद भिन्न भिन्न देशों की भिन्न भिन्न परिस्थिति व कार्ण भिन्न भिन्न धर्मों व रूप में निश्चय देता है। यदि कोई व्यक्ति वर्तन म परिच्छिन्न मनुष्य का देगकर धर्म को ही मनुष्य समझ ल वन्ध से डबे हुए मनुष्य को मनुष्य न समझ तो यह उगली मूल ही माननी होगी। टीक यही द्म मात्र धर्मवाचियों की हा रही है। धर्मात्मवादको धर्म अन्तर छिपाये हुए निष्कार्ड व रीति रिवाज को व धर्म समझते हैं उनमें परिच्छिन्न धर्मात्मवाद का

नहीं पहिचानते । यह भ्रम ही समस्त प्रचार की भूल व श्रुटिया का कारण है ।

यदि इस पुस्तक के अध्ययन से पाठकों के हृदय में जिज्ञासा उत्पन्न हुई और उनके रसि अध्यात्मवादी की धार धारणित हुई तो मैं अपने प्रयास का सफल समझूँगा ।

बिजनौर]

—रतनलाल जैन

विषय-सूची

प्रथम भाग

आत्म अनुसंधान

	पृष्ठ
१—विज्ञानयुग	६
२—पदाय की दो श्रेणी	१२
(१) आत्मा व भौतिक पदाय	१२
(२) दम्बन सुनन वाला भौतिक पदाय से भिन्न ह	१३
(३) जानन अनुभव करने वाला मस्तिष्क से भिन्न असद मूल तत्व ह	१४
(४) समति रखन वाला पदाय पुद्गल स पथक ह	१६
(५) मनुष्य में सकल्प शक्ति ह	१७
(६) मनुष्य में काम शोध आदि भावनाएँ ह	१७
(७) ज्ञान, सकल्प शक्ति, रागद्वेषादि भावनाएँ आत्मा व अस्तित्व का सिद्ध करती ह	१८
३—विज्ञान आत्मा व सम्बन्ध में क्या कहता ह	२२
(१) विज्ञान का प्रारम्भिक काल	२२
(२) ब्रह्मनिवा के मत	२३
(क) श्री ब्रह्मसम का मत	२३
(ख) पार्श्वी बटलर व आचार्य टटल का मत	२५
(ग) श्री भक्तानुगत का मत	२८
४—मनोविज्ञान अनुसंधान समिति के अनुभव	३०
(१) व्यक्तित्व व परिवर्तन	३०

	पृष्ठ
(क) स्मृति का भ्रकस्मात् नष्ट हो जाना	३०
(ख) एक ही समय में भिन्न भिन्न व्यक्तित्व	३२
(२) अद्भुत ज्ञान अमत्कार	३३
(क) बुद्धि अमत्कार	३३
(ख) भविष्यत का ज्ञान	३५
(३) स्वप्न	३७
(४) हिप्नोटिज्म	३८
(५) अमकील पन्थाय पर दृष्टि जमाना	३९
(६) विचार प्रपण	४०
(७) क्या शारीरिक मृत्यु होने पर मनुष्य का व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है ?	४२
(क) मनुष्य योनि में जन्म	४३
(ख) प्रतयानि में जन्म	४४
१ प्रतयानि में उत्पन्न होकर दिग्बलाई देना	४४
२ प्रत योनि में उत्पन्न होने के कितने ही समय पश्चात् दिग्बलाई देना	४५
३ प्रत बोलत भी है	४५
४ प्रतों का गृहवास	४६
५ प्रतयोनि में शरीर मनुष्य शरीर सत्ता मूर्तिक नहीं होना	४७
६ मूल आत्मा से अतर्कीत करना	४७
५—आत्मा का वास्तविक स्वरूप	४९
(१) ज्ञानस्वरूप	४९
(२) आनन्द स्वरूप	५४
(३) अनन्त शक्ति	६२

	पृष्ठ
(४) आत्मा सच्चिदानन्द ह	६३
६—आत्मा का निवास-स्थान	६५
(१) तात्त्विक विवचन	६५
(२) ब्रह्मानिका के मत	७०
७—आत्मा का अमरत्व	७४
(१) विमानानुसार	७६
(२) तात्त्विक विवचन	७६
(जीव का बनाने वाला कोई नहीं है)	७६
(३) पुनर्जन्म	८६
८—कर्म सिद्धांत	८६
(१) क्या कोई कर्मफल देता है	८६
(२) सिद्धान्तिक विवचन	९७
(क) कर्मफल देने वाला शक्ति स्वयं प्राणी के भीतर	
सूक्ष्म शरीर के रूप में विद्यमान है	९७
(ख) कर्मफल किस प्रकार मिलता है	१०३
(३) दाशनिक्को के मत	११७
(क) ईसाई व इस्लामिक दाना के मत	११७
(ख) भारतीय दाना का मत	११८
(ग) साख्य व ब्रह्मनादाशनिक्का के मत	११८
(घ) जन दाना निक्का का विषय मत	१२२
९—जगत का निर्माण	१४०

द्वितीय भाग

सत्य मार्ग (चिदानन्द प्राप्ति मार्ग)

१—क्या सच्चिदानन्द अवस्था प्राप्त की जा सकती है ?	१४५
---	-----

	पृष्ठ
२—चिरागद स्वरूप प्राप्ति का माग	१५२
३—निवृत्ति माग	१६१
(क) गृहस्थपथ (पञ्च अंगुष्ठ)	१६२
(ग) न यागपथ (पञ्च महाप्रण)	१७०
४—प्रवृत्ति माग	१७७
(क) गृहस्थ न पञ्च आश्रम नियम	१७७
(ग) मयागा न पञ्च आश्रम नियम	१८६

तृतीय भाग

समन्वय या एकीकरण

१—नापाठ्य विषय	२०१
२—स्वाहाद या अनशान्ति	२०८
३—शान्ति की विभिन्नता का कारण	२१४
४—शान्ति का सम्बन्ध	२१८
(१ २) शान्ति का माग	२१८
(४) शान्ति का वैश्विक दान	२२१
(५) शान्ति का उत्तर मामांश	२२१
(६) शान्ति की माता	२२६
(७) शान्ति का दान	२२२
(८) शान्ति का दान	२२५
(९) शान्ति का दान	२३६
(१०) शान्ति का दान	२४५
५—उपसंहार	२५२

प्रथम भाग
आत्म अनुसंधान

१—विज्ञान युग

प्रत्येक मनुष्य युग की कामना करता है उसकी तलाश में घूमता है। जिज्ञा इन्द्रिय की तृप्ति के लिये अनवरत प्रवार के स्वादिष्ट भोजन करता है। नत्र व कण इन्द्रिय को प्यास बुझाने के लिये नाच गाना थ्यटर सिनेमा आदि में जाता है। घ्राण इन्द्रिय को सतुष्ट करन के लिये इन तैल आदि भुगवित पदार्थों का सेवन करता है एवं नाना प्रवार के भोग विलास में लिप्त होता है। घन को सुख का साधन समझकर उसकी प्राप्ति के लिये जुटता है। अनेक प्रवार के व्यवसाय करता है।

परन्तु इन इन्द्रिय सुखा से उसकी तृप्ति नहीं होती। तितना अधिक सेवन इनका किया जाता है उतनी ही अधिक वासना प्रज्वलित होती जाती है। इस वासना का कभी भी अंत नहीं होता। इसके अनिश्चित इन्द्रिय सुख अस्थिर है, जब तक इनके भोग उपभोग में लगा रहता है तब तक ही उनके स्वप्न का आनन्द आता है ज्योंही इन्द्रिय सुख का सवन बंद किया, त्योंही उसका आनन्द भी समाप्त हो गया केवल तपणा (चाह) शेष रह जाती है। इस प्रकार यह इन्द्रिय सुख, अस्थिर क्षणभंगुर एवं दुःख रूप है।

अनवरत प्रयत्न करने पर भी जब युग उसको नहीं मिलता, उसकी हृष्ट्या स्तम्भित सुख के स्वरूप जानन की होती है। सुख के स्वरूप जानन की उत्पत्ति के साथ साथ उसके हृत्प में अनवरत प्रश्न उत्पन्न लगने हैं जैसे कि 'मैं कौन हूँ' 'कहाँ से आया हूँ' 'मेरा 'वास्तविक' स्वरूप क्या है', इस जीवन का उद्देश्य क्या है आदि आदि।

इन प्रश्नों के समाधान के लिये उसका ध्यान सहज ही अपने पूज्य महान ऋषियों की कृति की ओर जाता है उनके रचित धार्मिक ग्रन्थों

क अध्ययन में लगता है। भिन्न भिन्न धार्मिक ग्रन्थों के पढ़ने में नास्त होना है कि भिन्न भिन्न आचार्यों ने उपरोक्त प्रश्नों का समाधान भिन्न भिन्न प्रकार से किया है, कहीं कहीं इनका समाधान परस्पर विरोधी है। भिन्न भिन्न प्रकार के उत्तरों को पढ़कर उसका हृदय और भी उलभन में पड़ जाता है। उसकी समझ में नहीं आता कि वह किसके वचन को सत्य माने और किसके को असत्य।

इसके अतिरिक्त इन धार्मिक ग्रन्थों में जिस गैली का अनुकरण किया गया है उससे हृदय को सतोष नहीं होता। इनकी गैली बर्णनिक पद्धति में मेल नहीं खाती। यह युग विज्ञान का है। मनुष्य की बुद्धि तीव्र एवं सूक्ष्म आलोचिका हो गई है वह जिस बात को भी बिना अनुसंधान के अन्वयण किए मानने को तय्यार नहीं।

बुद्ध धार्मिक ग्रन्थों में तो ऐसा मान लिया गया है कि अमुक अवतार पगम्बर या महर्षि ने ऐसा कहा है इसीलिए यह मान्य है किसी का यह अधिकार नहीं कि उसकी आलोचना करे। किसी किमी ग्रन्थ में तक से भी काम लिया गया है परन्तु इस तक से भी सन्तोष नहीं होता। ऐसी दशा में मनुष्य बड़ी उलभन में पड़ जाता है और उसकी बुद्धि कुछ भी काम नहीं देती। निराग होकर वह अपने मन को उपरोक्त प्रश्नों के समाधान से हटाता है। उसे प्रनात होन लगता है कि इन प्रश्नों के समाधान में लगना निरी भ्रमता है। उसका मन धार्मिक कामों में हट जाता है। उनको लोक अपवाद के भय से करता है परन्तु उनमें उसका मन सजिक भी नहीं लगता। ऐसी परिस्थिति में वह नास्तिकता की ओर झीझता से बढ़ता है विवश हो सासारिक एवं गृहस्थ के कर्तव्यों में व्यस्त होता है।

अतः इस पुस्तक में किसी अवतार पगम्बर देव या महर्षि द्वारा कथित शास्त्र को आधार नहीं माना है। प्रत्येक प्रश्न का समाधान बर्णनिक ढंग पर किया गया है। पहिले भाग में अनुसंधान द्वारा यह निश्चय किया गया है कि मनुष्य शरीर के भीतर एक अदृश्य पदार्थ और है जिसको

आत्मा के नाम से पुकारा जा सकता है उस आत्मा का वास्तविक स्वरूप चिन्तनन्दमयी है। यह भी निश्चय किया गया है कि यह आत्मा मत्तार में क्या भ्रमण कर रहा है। दूसरे भाग में उस सत्य भाग का विवेचन किया गया है कि जिस पर चलकर आत्मा अपने वास्तविक चिदानन्द स्वरूप को प्राप्त करके आनन्द का उपभोग अनन्त काल तक कर सकता है। तृतीय अर्थात् अन्तिम भाग में यह दिखलाया गया है कि वनमान प्रत्येक धर्म व दान में बहुत कुछ सत्य है जो अन्तः इन धर्म व दानों में लिखलाई देता है वह भिन्न भिन्न आचार्यों के द्वारा आत्मा के भिन्न भिन्न गुण व अवस्थाओं का भिन्न भिन्न दृष्टिकोणों से निरूपण द्वारा उत्पन्न हुआ है। अन्त में वनमान मुख्य दस धर्म व दानों का समन्वय किया गया है।

ज्ञान होता है कि मनुष्य को भी दृश्य व अदृश्य दो विभागों में विभक्त किया जा सकता है —

मनुष्य का दृश्य भाग तो दूसरी श्रेणी के भौतिक पदार्थ से बिल्कुल भिन्नता जुगता है। वह नेत्र के द्वारा दृष्टिगोचर, हृल के द्वारा स्पर्श किया जाता है, उसके शरीर से गन्ध आती है। मनुष्य जब मर जाता है, उसका दृश्य भाग पड़ा रहता है और जब उसका अग्नि में दाह संस्कार किया जाता है तो कुछ भाग जनकर वायु में मिल जाता है शेष भाग राख या हड्डी के रूप में पड़ा रहता है, जो निःसन्देह भौतिक पदार्थ है। इसी प्रकार मनुष्य का शरीर दूध, जल, फल, अन्न आदि भौतिक पदार्थों के द्वारा बाल अवस्था से पापित होकर प्रौढ अवस्था को प्राप्त होता है। इन बातों से स्पष्ट है कि मनुष्य का दृश्य वास्तव भाग शरीर निःसन्देह भौतिक पदार्थ का बना हुआ है। मनुष्य के अदृश्य भाग की परीक्षा अब गप रहती है।

(२) देखने सुनने वाला भौतिक पदार्थ से भिन्न है

मनुष्य जब किसी पदार्थ का दखता है तो उस पदार्थ का चित्र उमरं नत्रों के अन्तर पुतली के पीछे बनता है और वहा से वह चित्र सूक्ष्म तन्तुप्रा के हस्तन चलन द्वारा मस्तिष्क तक पहुँचता है। यदि उम व्यक्ति का ध्यान उस पदार्थ की ओर होता है तो वह पदार्थ उसको दिसनाइ देता है एवं उसके अस्तित्व का भान उसको होता है। फिर वह व्यक्ति उस पदार्थ के गुण दोष आदि बातों पर विचार करता है।

यदि उम व्यक्ति का ध्यान उम पदार्थ की ओर नहीं होता है तो वह पदार्थ आत्मा के सामने होता हुआ भी निसलनाई नहीं पड़ता है न उसका अस्तित्व का भान होता है। इस दशा में भी उम पदार्थ का चित्र आत्मा के भीतर पुतली के पीछे बनता है और वह सूक्ष्म तन्तुप्रा द्वारा मस्तिष्क तक पहुँचता है। केवल अन्तर यह है कि उस व्यक्ति का ध्यान इस दशा में उम पदार्थ की ओर नहीं है।

नत्रा के सामन पदाथ होन पर उसका चित्र नेत्रा के भीतर पुतली के पीछे बनना एव सूक्ष्म तन्तुओं के हलन चलन द्वारा मस्तिष्क तक पहुचना वैज्ञानिक नियमानुसार धराबर होता रहता ह, परन्तु मनुष्य के ध्यान पर विज्ञान का कोई भी नियम लागू नहीं होता। मनुष्य का ध्यान विज्ञान के समस्त परिचित नियमों से नितान्त स्वतंत्र एव भिन्न ह।

यहां दशा शब्द गुणन के समय होती ह। शब्द कान तक पहुचता ह वहां से सूक्ष्म तन्तुओं के हलन चलन द्वारा मस्तिष्क तक पहुच जाता ह। यदि उस व्यक्ति का ध्यान शब्द का धोर ह तो वह शब्द सुनाई पडता ह यदि उसका ध्यान किसी अन्य वस्तु की धोर लगा ह और उस शब्द की धोर नहीं है तो वह शब्द पास होता हुआ भी सुनाई नहीं पडता ह।

इससे ज्ञात होता ह कि मनुष्य के अंदर भौतिक पन्थाय के प्रतिरिक्त कोई अन्य सूक्ष्म पदाथ ह जिसके ध्यान देन पर मनुष्य निवृत्तवर्ती बाह्य वस्तुओं को देख या पास होन बाल शब्द को सुन सकता ह और यदि उस सूक्ष्म पन्थाय का ध्यान बाह्य वस्तु या शब्द की धोर नहीं ह तो वह व्यक्ति उस समीपवर्ती वस्तु को न देख सकता ह और न पास में होन बाल शब्द को सुन ही पाता ह।

(३) जानने अनुभव करने वाला मस्तिष्क से भिन्न अखंड मूलतत्त्व है

मनुष्य में जानन विचारन एव अनुभव करन की शक्ति ह। किन्ती भी भौतिक पन्थाय में यह गुण नहीं पाया जाता। भौतिक पदाथ के बन हुए एजिन को त्रे तीजिय यह मनुष्य की भाति चन्द्रा फिरता है। बोयता पानी क रूप में भाजन करता ह परन्तु उसमें विचारन सोचा अनुभव करन की शक्ति का संवया अभाव ह।

मनुष्य के सामने जब कोई बात होती है तो वह उस पर विचारना है। उस बात की राग हानि एवं गुण दाप पर ध्यान देता है व अनक प्रकार की योजनाएँ बनाता है। इन सब बातों का भौतिक पदाय के बने एजिन में स्वयं अभाव है। अत्र प्रश्न उठता है कि यह ज्ञान व अनुभव मनुष्य में कहाँ से आता ?

यदि यह कहा जावे कि किसी घटना या पदार्थ के सम्बन्ध उपस्थित हो जान पर मस्तिष्क या शरीर के किसी भाग से एक प्रकार का सूक्ष्म पदार्थ निकलता रहता है जो विचारने या सोचने का कार्य करता है तो ऐसी जगह में यह मानना होगा कि समय समय पर भिन्न भिन्न घटना व बातों के सम्बन्ध उपस्थित हो जान पर पृथक् पृथक् सत्ता रखने वाले सूक्ष्म पदार्थ निकलते रहते हैं जो विचारने की शक्ति का कार्य करते हैं। यह भी मानना होगा कि मनुष्य के अन्तर्गत पृथक्-पृथक् सत्ता रखने वाले ऐसे असंख्य अल्पम पदार्थ हैं, जो भिन्न भिन्न समय में सोचने का कार्य करते हैं। सूक्ष्म पदार्थ भिन्न भिन्न घटना व बातों से उत्पन्न हुए हैं इसलिए इन पदार्थों का कार्य व विचारने की शक्ति भी भिन्न-भिन्न होगी। भिन्न भिन्न कार्य व होने से इनमें परस्पर विरोध भी होगा जिसका परिणाम यह होना चाहिये कि विरोधी कार्य होने से शरीर का एक भाग एक प्रकार का कार्य करे और दूसरा भाग बिल्कुल उसके विपरीत विरोधी कार्य करे या इनमें परस्पर टक्कर लग जाय तो य सूक्ष्म पदाय काय शक्ति विहीन हो जावे। परन्तु ऐसा देखने व अनुभव में नहीं आता। मनुष्य बराबर सोचता विचारता रहता है। कभी भी उसकी विचार-शक्ति नष्ट नहीं होती। इसलिए यही मानना पड़ेगा कि जानने विचारने की शक्ति वाला एक सरल पदार्थ है जिसमें पृथक्-पृथक् विरोधी अणु नहीं हैं और जिसका कार्य सरल व लगातार होता रहता है। इससे इसी परिणाम पर पहुँचा जाता है कि मनुष्य के भीतर जानने, अनुभव करने वाला मस्तिष्क व भिन्न अखण्ड मूल तत्व है।

(४) स्मरण रखने वाला पदार्थ पुद्गल^१ से पृथक है

मनुष्य व भौतिक पदार्थ के वन हुए एजिन में एक और भी अन्तर है । मनुष्य पत्नी वाला का स्मरण रख सकता है । पहिल दमे हुए पदार्थ पर दृष्टि पडत हा वह देता है कि यह यहा पदाय है कि जिसरो मने पहिल अमुष समय पर दया था । इस स्मरण शक्ति का एजिन म गवधा अभाव है । स्मरण शक्ति बतलाना है कि जिसन पहिल वस्तु का दया था वही दयत वाला आज भी विशमान है ।

यह स्मरण शक्ति कहा से आ गई ? यदि यह कहा जाव कि किमी घटना या वस्तु के सम्मुख उपस्थित होन पर मस्तिष्क या शरीर के किमी विषय भाग से सूक्ष्म अणु निकलते रहते हैं जिनका काय स्मरण रखना है तो एसी घटना व वस्तुय हर समय होती रहती है इसलिए यह भी मानना हागा कि उपरोक्त प्रकार के सूक्ष्म अणु भी लगातार निकलते रहत है । इन सूक्ष्म अणु का या तो इकट्ठा हात रहना मानना हागा या यह मानना हागा कि जब दूसर क्षण म नवीन अणु आ जाते है तो पहिल अणु नष्ट हा जाते है । यदि पहिल अणु को नष्ट हाता माना जाव तो स्मरण हो नहीं सकता । जिन सूक्ष्म अणु न पहिल वस्तु को दया था जब व ही नहीं तो पहचानना या स्मरण रमगा कौन ?

यदि मनुष्य के अन्तर भिन्न भिन्न समय म उत्पन्न हुए सूक्ष्म अणु का एकत्रित होना माना जाव तो यह असम्भव है कि एक क्षण के अनुभव को अन्य क्षणों के अनुभव से मिलाकर कोई परिणाम निकाला जा सके क्योंकि इन पृथक्-पृथक् अणु के अनुभव को समन्वय करन चाहा कौन

^१ अज्ञान न भाहित पदार्थ के लिये पुद्गल शब्द का प्रयोग किया है ।

विषय अज्ञ नहीं है, इसलिये यही मानना पडगा कि स्मरण रखन वाला पुद्गल से भिन्न, कोई विषय अखण्ड मूल तत्त्व है जो पहिल जानी हुई वाना का स्मरण रख सकता है ।

(५) मनुष्य में सकल्प शक्ति है

मनुष्य और एजिन की त्रियाद्या का तुलनात्मक दृष्टि से देखन पर जात होता है कि मनुष्य में सकल्प शक्ति (will power) है कि म आज अमुक वाय करूंगा । यह स्वरूप-शक्ति मनुष्य में राजा के सदृश है । राजा की आज्ञा पाते ही जैसे मंत्री आदि आधीन पुण्य वाय करने लगते हैं, ठीक उसी प्रकार सकल्प शक्ति ही मनुष्य के हाथ-पैर आदि बरों द्वारा उसके सकल्प के अनुसार काम करना लगता है । किसी मनुष्य ने सकल्प किया कि भुम्बरो धायुसेवन करने के लिये धनी पुण्य-वाटिका में जाना है । सकल्प के हाते ही उसका शरीर जो पहिले सटा हुई अवस्था में अष्टा रहित था खडा हो जाता है और पुण्य-वाटिका की ओर जाता हुआ दृष्टिगोचर होता है । भौतिक एजिन में इस सकल्प शक्ति का सबथा अभाव है । एजिन में यह कभी नष्ट पाया जाता कि वह स्वरूप कर कि म आज चलूंगा त्रिश्राम करूंगा आदि । एजिन के सदृश किसी भी भौतिक पदार्थ में यह सकल्प शक्ति नहीं पाई जाती । इस स्वरूप शक्ति पर प्रकृति का कोई भी नियम लागू नहीं होता । यह सकल्प शक्ति इस बात की ओर है कि इसका धारक कोई मूलतत्त्व मनुष्य के अन्तर अवश्य है, जिसका स्वरूप भौतिक पदार्थ से सबथा भिन्न है ।

(६) मनुष्य में काम क्रोध आदि भावनायें हैं

मनुष्य की अष्टा व एजिन की त्रियाद्या को देखन से जाना जाता है कि एन और विषय में भा इन दोनों में बड़ी विभिन्नता है । मनुष्य कभी श्रेय कभी शत्रु के साथ ही सम्बन्ध रखता है, कभी शत्रु के शत्रुमित्र

हुआ अनक प्रकार का पाप एवं सामग्रियां एवं चित्र बनना हुआ दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार मनुष्य में अनक प्रकार का भावनाएं पाई जाती हैं। एजिप्ट में इस प्रकार की भावनाओं के अस्तित्व का सबूत प्रभाव है। मनुष्य की इन अनक प्रकार की भावनाओं पर प्रवृत्ति का बोध भी नियम लागू रहा होता। यदि य काम प्रोष आदि भावनाओं मनुष्य के भौतिक अस्तित्व आदि किसी धर्म से उत्पन्न होतीं तो इन भावनाओं पर भौतिक पन्थ सम्बन्धी नियम लागू हान। यह नहीं होता कि मनुष्य में विद्यमान भावनाओं प्राकृतिक नियमों का सबूत उल्लंघन करतीं। प्राकृतिक नियमों से सरया स्वतंत्र अनक प्रकार की रागद्वेष आदि भावनाओं के अस्तित्व से प्रमाणित होता है कि इन भावनाओं का धारक पन्थ मनुष्य में अवश्य है जो पुद्गल से सबूत भिन्न हैं।

(७) ज्ञान, सकल्प-शक्ति, रागद्वेषादि भावनाओं आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध करती हैं

उपरोक्त बर्णन से स्पष्ट है कि मनुष्य में धर्म सुनने पन्थ देखने, अति अहित पहिचानन पहिली बातों के स्मरण रखने के गुण सकल्प शक्ति एवं रागद्वेष आदि भावनाओं भौतिक पदाय से उत्पन्न नहीं होतीं। गुण (attributes) कभी भी विना आधार किसी वस्तु के स्वतंत्र रूप से नहीं पाये जाते हैं साथ किसी न किसी वस्तु में रहते हैं। ऐसा लिखनाई नहीं देता कि गुण विद्यमान है किन्तु उनकी धारक वस्तु विद्यमान न हो। उष्णता एक गुण है जो अग्नि आदि पन्थों में पाया जाता है। उष्णता गुण विना किसी वस्तु के आधार स्वतंत्र रूपसे कभी अनुभव नहीं किया जाता। उष्णता गुण सदैव किसी न किसी वस्तु के आधार पर रहता है। यही बात धर्म गुणों के सम्बन्ध में है। लाल रंग को ही लीजिये। वह किसी न किसी वस्तु का रंग होता है। यह नहीं हो सकता कि विना आधार किसी वस्तु के रंग वण स्वतंत्र रूप से विद्यमान

हो। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि प्रत्येक गुण के लिये आवश्यक है कि उस गुण का धारण करने वाला कोई गुणी पदार्थ हो। यह ता ही सक्ता है कि गुणों की धारक वस्तु नत्र आदि इन्द्रियों के गोचर न हो अदृश्य हो।

मनुष्य में शब्द सुनने पदार्थ देखने, पहिली बातों के स्मरण रखन सक्थ करन एव रागद्वेष आदि भावनामा की जा विषयताय विद्यमान हय समस्त गुण है। कोई भी गुण किसी गुणी पदार्थ के आधार बिना विद्यमान नहीं रह सकता है इसलिये उपरोक्त गुणों के धारण करने वाल एक या अधिक गुणी पदार्थ अवश्य होने चाहिये। अब यह जानना शय रह जाता है कि उपरोक्त समस्त गुणों का धारण करने वाला एक ही पदार्थ है या एक से अधिक।

प्रत्येक वस्तु में अनक गुण होते हैं जा उसमें एक ही साथ एक ही समय में पाये जाते हैं। दृष्टान्त के तौर पर गुलाब के फूल को लीजिये। यह स्पष्ट करने में कोमल देखने में गुलाबी वण का प्रतीत होता है। उसम सुगन्ध व एक प्रकार का विशय स्वादु होता है। शीतलता स्वास्थ्य बधक्ता, हृदय-आहृतता रचक्ता आदि अनक गुण इस पुष्प में एक ही साथ एक ही समय में पाये जाते हैं। इन समस्त गुणों के एक ही पदार्थ में एक ही साथ रहने में कोई आपत्ति नहीं आती। केवन व गुण—जो परस्पर विरोधी होने हैं—किसी वस्तु में एक साथ एक समय में नहीं रह सकते हैं। गुलाब के पुष्प में सुगन्ध के साथ दुग्न्ध कोमलता के साथ शयता गुलाबी वण के साथ हरित पीन आग्नि वण उसके विशय स्वादु के साथ अय स्वादु, स्वास्थ्य-बधक्ता के साथ हानि प्रदायिव हृदय आहृतता के साथ घणास्पन्ता रचक्ता के साथ मन निरोधत्व आदि विरोधी गुण एक साथ एक समय में विद्यमान नहीं रह सकते। अग्नि का स्वभाव उष्णता है उसम शीतलता का गुण वास्त नहीं कर सकता। यदि अग्नि में शीतलता प्रवेश कर जाय तो वह अग्नि अग्नि ही नहीं रहगी उष्णता के नष्ट होने के साथ-साथ अग्नि का भी नाश हो जावगा।

विचारन से ज्ञात होता है कि गद्य सुनने, पदार्थ देखने, हित अहित पहिचानन पूर्व काल की बातों के स्मरण रखन में ज्ञान गुण से ही काम लिया जाता है। किन्तु वस्तु को नत्र, कण आदि इन्द्रियों के द्वारा पहिले जाना जाता है फिर उस वस्तु पर विचार किया जाता है कि यह लाभदायक है या हानिकारक। फिर उस वस्तु के स्मरण रखन की आवश्यकता होती है। उपरोक्त मानसिक चट्टाओं में ज्ञान गुण ही प्रयोग में आया जाता है। इन ज्ञान चट्टाओं में इन्द्रिया के द्वारा किसी वस्तु का जानना ज्ञान की प्रथम अवस्था है उस वस्तु के हित अहित पर विचारना ज्ञान की द्वितीय अवस्था है विचारन के पञ्चानु स्मृति में रखना उसी ज्ञान की तृतीय अवस्था है। इस प्रकार गद्य सुनन, पदार्थ देखन हित अहित पहिचानन पहिली बातों के स्मरण रखन आदि का—ज्ञान गुण की भिन्न भिन्न अवस्थायें होने के कारण—ज्ञान गुण में ही समावेश हो जाता है।

ज्ञान गुण सकल्प शक्ति एवं रागद्वेषादि भावनाओं में परस्पर विरोध विचार करने से ज्ञान नहीं होता। ऐसा प्रतीत नहीं होता कि यदि किसी पदार्थ का स्वभाव ज्ञानमयी है तो उस स्वभाव के साथ-साथ अन्य दोना गुण—सकल्प शक्ति व रागद्वेषादि भावना—विद्यमान न रह सकते हैं। वरन् निम्नलिखित बातों से प्रकट होता है कि इन तीनों गुणों का आघार एक ही वस्तु है।

मानव समाज का अन्वीक्षण करने से ज्ञात होता है कि इस संसार में ऐसा कोई व्यक्ति दृष्टिगोचर नहीं होता कि जिसमें ये तीनों गुण एक साथ न पाये जाते हैं। ऐसा कोई व्यक्ति शिवाई नहीं देता है कि जिसमें एक या दो गुण हों और ग्य गुण न हों। इन तीनों गुणों के एक ही साथ पाये जाने से अनुमान होता है कि इन तीनों गुणों का आघार एक ही पदार्थ है। इसके अतिरिक्त यह युक्तिमग्न भी है कि जब इन तीनों गुणों के आघार के सम्बन्ध में एक ही पदार्थ के मान लेने से काम

चल जाता है तो एक में अधिक पन्थाय मानने की आवश्यकता ही क्या है ?

इन गुणों पर गहन दृष्टि से विचारण से पान होता है कि इन तीनों गुणों के अन्तर्गत, "अनुभव गुण" (Realization) महसूस करना किसी न किसी दशा में पाया जाता है। मनुष्य जब किसी वस्तु का ज्ञान प्राप्त करता है तो उसका चित्र उसके अस्तिष्क के अन्दर स्थित होता है। उस समय उस वस्तु का अनुभव उसको होता है। इसी भाँति मनुष्य जब किसी काय करने का संकल्प करता है और उसका समस्त शरीर उस संकल्प के अनुसार काय करने में प्रवृत्त होता है उस (संकल्प) समय उस मनुष्य को अपनी शक्ति का अनुभव होता है। इसी प्रकार मनुष्य जब क्रोध, आभय, आदि किसी भावना के वशीभूत होता है उस समय उसको उस भावना के अन्तर्गत सुख या दुःख का अनुभव होता है। इस प्रकार उपरोक्त तीनों गुणों के अन्तर्गत 'अनुभूति' गुण किसी न किसी दशा में अवश्य पाया जाता है। इससे यही प्रमाणित होता है कि मनुष्य में भौतिक शरीर के अतिरिक्त केवल एक ही पन्थाय है जिसके ज्ञान संकल्प शक्ति एवं रागद्वेष आदि भावना चिह्न हैं। इस पन्थाय (न्य) को आत्मा या जीव कह सकते हैं।^१

^१ दार्शनिकों ने ज्ञानधारी पदार्थ को आत्मा व जीव कहा है, इसलिये यही नाम रखने उचित प्रतीत होते हैं।

३—विज्ञान आत्मा के सम्बन्ध में क्या कहता है ?

(१) विज्ञान का प्रारम्भिक काल

पश्चात्त्य धार्मिकता में आत्मा के अस्तित्व के सम्बन्ध में बड़ा मत भेद है । प्रारम्भिक काल में विज्ञान भौतिक पदार्थों के गुण स्वभाव आदि बातों के ज्ञान तथा प्रकाश विद्युत् आदि प्राकृतिक शक्तियों के अनुसंधान में लगा रहा । मनुष्य के जीवा एव आत्म स्वभाव ज्ञान रागद्वेष आदि भावना आदि प्रश्नों की ओर उमरा ध्यान न था । इन प्रश्नों को न केवल उपज्ञा की दृष्टि से प्रत्युत घृणा के विरोध की दृष्टि से देखता था ।

विज्ञान की दृष्टि में उस समय आत्मा सम्बन्धी प्रश्न बर्बर समय को नष्ट करने वाले एव मानव समाज को अंधकार में डालने वाले थे । उसका विश्वास था कि आत्मा सम्बन्धी प्रश्नों की व्याख्या करने वाले धर्मों से ससार का दण्ड आदि हुआ है । इन धर्मों ही के कारण मानव समाज में अधिर की शक्तियाँ बनीं हैं । इन धर्मों ने ही उसको प्राचीन काल में अज्ञान से रोका था । ईसाई धर्मविश्लेषियों ने तो विज्ञान पर उमके दारुण काल में ओर अत्याचार किये थे । गलिलियो (Galileo) आदि आविष्कारकों को जेल भृत्यदंड आदि अनेक यातनायें दीं हैं तथा उसके समूची मूलन के सब ही उपाय प्रयाग में नाश किये हैं । ऐसे सङ्घर्षपूर्ण माग तथा विकट परिस्थितियों में से होकर विज्ञान को अज्ञान से उतारा पडा है । विज्ञान ने आधुनिक मानव समाज में वलमान उच्च पद अर्पण पुजारी धार्मिकों के अज्ञान उत्साह के त्याग के कारण ही प्राप्त किया है । ऐसी दशा में विज्ञान का धर्म के प्रति उपज्ञा के विरोध का होना स्वभाविक ही

या ज्या-ज्यो समय व्यतीत होता गया विज्ञान का विरोध घम के प्रति धीर धीर कम होता गया अन्त में विरोध उपक्षा के भाव में परिवर्तित हो गया । कुछ समय से यह उपक्ष का भाव भी कम होत लगा ह और वैज्ञानिकों का ध्यान जायन सम्बन्धी प्रश्नों की ओर जान लगा ह ।

गत ७० वर्षों में अनेक वैज्ञानिकों ने विचार कर मनावज्ञानिकों (Psychologists) ने इस प्रश्न पर विचार किया ह । प्राचीन वैज्ञानिकों ने अधिकतर ज्ञान का भौतिक अस्तित्व से उत्पन्न हुआ मानत थे । उनका विचार न आत्मा पुद्गल से पर्यक कोई वस्तु न थी । ज्ञान स्मृति रागद्वेष आदि अनेक प्रकार की मानसिक चण्णाओं का सतत्प्रद उत्तर उनकी उपरोक्त धारणा से नहीं मिलता था इसलिये अर्वाचीन समय में कितने ही मनावज्ञानिक आत्मा क अस्तित्व का भौतिक पदार्थ से भिन्न मानत लग ह । कुछ वैज्ञानिकों के मत यह उद्धृत किया जान ह —

(२) वैज्ञानिकों के मत

(क) श्री वेगसन का मत

प्रसिद्ध वैज्ञानिक श्री वेगसन लिखत ह^१ —

‘ Two points are equally striking in an organ like the eye, the complexity of its structure and the simplicity of its function The eye is composed of distinct parts such as the Sclerotic the Cornea, the Retina the Crystalline lens etc In each of these

^१ Creative Evolution (उत्पादक विकास) नामी पुस्तक पृ० ६३ पर लिखते ह ।

parts the detail is infinite. The mechanism of the eye is in short, composed of an infinity of mechanisms all of extreme complexity. Yet Vision is one simple fact. As soon as the eye opens the visual act is affected. Thus because the act is simple the slightest negligence on the part of nature in the building of the infinitely complex machine would have made vision impossible. This contrast between the complexity of the organ and the unity of the function is what gives us pause. A mechanistic theory is one which means to show us the gradual building up of the machine under the influence of the external circumstances supposing it avails at all to explain the details of the parts it throws no light on their correlations. This contrast between the infinite complexity of the organ and the extreme simplicity of the function is what should open our eyes.

जिसका अनुवाक हिन्दी भाषा में निम्न प्रकार होता है —

नत्र सन्श इन्द्रिय में दो विगपतायें प्रतीत होनी हैं उससे बनावट की पचीन्गी एव उससे काय की सरलता। नत्र पुतली निल काला सफ़द प्रयेग बोया भादि भागों का बना हुआ है। प्रत्येक भाग का विवरण भसीम है। नत्र का यत्र छोट-छोट घसरयात पचीदे यत्रो का बना हुआ है। तिसपर भी दगन काय बडा सरल है। जैसे ही नत्र सुलता है बाह्य पदार्थों का दगन कार्य आरम्भ है। जाना है। यदि प्रकृति नत्र से पचीन्गी यत्र की बनावट में तनिव सी

भी अभावधानी करती तो दान कार्य असम्भव हो जाता। इस मग क बनावट की पचींगी तथा इनके कार्य की एक्यता विचारन के लिय आध्य करती है। यात्रिक सिद्धान्त (Mechanic theory) बनावता है कि यत्र जसे कि नत्र, बाह्य परिस्थिति से प्रभास्ति हाकर धीर धीर कसे बनना है। यदि इस सिद्धान्त क द्वारा इस यत्र के भागा का विवरण भी ज्ञात हो जाव परन्तु इस सिद्धान्त से यह ज्ञात नहीं होता है कि दान काय का सम्बन्ध नत्र-यत्र से क्या है। नत्र क बनावट की असीम पेचींगी एव उसके दान काय की सरता की तुलना हमका विस्मय में डाल देती है।

(ग) पादरी बटलर व आचाय टेंडल का मत

विख्यात बलफास्ट के व्याख्यान में जो तब पादरी बटलर (Bishop Butler) न इस सम्बन्ध में किया है उसका खडन भाग तक नहीं किया जा सका। इस तर के सम्बन्ध में स्वर्गीय अज्ञानिक आचाय टेंडल (Tyndall) न कहा था कि यह तब अलटनाय है। इस तब के गन् विम्न प्रचार है —

Take your dead hydrogen atoms, your dead oxygen atoms your dead carbon atoms your dead nitrogen atoms your dead phosphorous atoms and all other atoms dead as grains of shot of which the brain is formed Imagine them separate and senseless observe them running together and forming all imaginable combinations This, as a

का डिपार्टमेंटल वेतकुलम निकल सकता है ? आप मनुष्य की जिज्ञासा का—परमाणुओं के परस्पर सम्मिश्रण की यांत्रिक क्रिया से ज्ञान की उत्पत्ति कैसे हो गई—सतोपप्रद उत्तर नहीं दे सकते ।

वटलर महोदय की इस प्रश्न मुक्ति से वचन के लिए आचार्य टंडल ने पुद्गल शब्द की व्याख्या ही बदल दी । आचार्य टंडल ने कहा है कि यदि पुद्गल शब्द का वही अर्थ लें जो विज्ञान की पुस्तक में दिया हुआ है तो यह विचार में नहीं आ सकता कि ज्ञान मय जीवन भौतिक पदार्थ से कैसे उत्पन्न हो गया । पादरी वटलर के युक्तिमगत तर्क से पुराना विचार—ज्ञान व आत्मा भौतिक पदार्थ से ही उत्पन्न होता है—खंडित हो जाता है । आचार्य महोदय कहते हैं कि जिन्होंने पुद्गल शब्द की व्याख्या की है उन्होंने पुद्गल को सब दृष्टिकोणों से नहीं देखा था वे गणित या धनात्मिक या उनका विज्ञान यांत्रिक विधान तक सीमित था । वे जीवन व मनोविज्ञान के ज्ञान न थे अतः जीवन विज्ञान का अध्ययन नहीं किया था । इसलिये आचार्य महोदय पुद्गल की व्याख्या में ज्ञान व भावना का भी सम्मिलन करते हैं क्योंकि आत्मा शरीर से पृथक् नहीं पाया जाता ।

आचार्य महोदय का पुद्गल की व्याख्या में ज्ञान व भावना युक्त आत्मा का सम्मिलन कर लेना उचित नहीं है । पुद्गल चतनता रहित ज्ञानरूपी जड़ पदार्थ है और आत्मा चतनरूपी ज्ञानमयी द्रव्य है । इन दोनों पदार्थों के गुणों में परस्पर घोर विरोध, पूरा वपरीत्य है । यह अशक्य है कि एक ही पदार्थ का स्वभाव जड़ व अचतन हो और साथ-साथ उसका स्वभाव ज्ञानमयी व चतन भी हो । यह पहिले ही निर्णय किया जा चुका है कि किसी वस्तु में दो परस्पर विरोधी गुण एक साथ एक ही समय में विद्यमान नहीं रह सकते हैं । इसलिये अचतन जड़ गुण व चतन ज्ञान गुण—इन दो प्रतिपक्षी गुणों—के धारण करने वाले दो भिन्न भिन्न पदार्थ मानने होंगे जिनको कि पुद्गल व आत्मा कहते हैं ।

मनुष्य-भौतिक शरीर व ज्ञानमयी आत्मा—दो भिन्न भिन्न पदार्थों का समुदाय प्राणी है।

(ग) श्री मेकडूगल का मत

विख्यात मनोवैज्ञानिक श्री मेकडूगल^१ लिखत है कि —

“We are compelled to admit that the so-called Psychological elements are not independent entities but are partial effections of a single substance or being and since this is not any part of brain is not a material substance but differs from all material substances in that while it is unitary, it is yet present can act or be acted upon at many points in space simultaneously (namely the various parts of the brain in which Psycho physical processes are at any moment occurring) We must regard it as an immaterial substance or being And this being thus necessarily postulated as the ground of the unity of individual consciousness we may call it the *Soul* of the individual

जिसका हिन्दी अनुवाद निम्नलिखित है —

हम इस बात को मानने के लिय बाध्य हैं कि कथित मानसिक घटनाओं का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है बल्कि यह एक ही पदार्थ या मूल

^१ देखो उनकी पुस्तक (Physiological Psychology) किंबियालाजिबल साइकोलाजी अर्थात् शारीरिक मनोविज्ञान।

तत्त्व की अवस्थायें विनाद ह । यह मूल तत्त्व मस्तिष्क का भाग नहीं है इसलिए यह भौतिक पन्थाय नहा हो सकता । भौतिक पन्थायों में इस बात में विभिन्नता है कि यह एक अलग मूल तत्त्व है जो आकाश व अग्नि की भाँटों में (मस्तिष्क के भिन्न भिन्न भागों में जहाँ कि मानसिक भौतिक चेतनाएँ होना रहती हैं) एक ही साथ कार्य कर सकता है या इस पर कार्य किया जा सकता है । हमारा यह पन्थार्थ पुद्गल से पृथक् मानना होगा । क्योंकि यही पदार्थ मनुष्य के सम्पूर्ण ज्ञान का आधार है इसलिए इस पन्थाय को मनुष्य का आत्मा कह सकते हैं ।

४—मनोविज्ञान अनुसंधान समिति के अनुभव

पाश्चात्य देशों में स्थापित 'मनोविज्ञान अनुसंधान समिति' (Psychical Research Society) के अनुसंधानों से निश्चय हो गया है कि मनुष्य में आत्मा है और यह आत्मा मृत्यु के पश्चात् भी जीवित रहता है। मनोवैज्ञानिक श्री एफ० डब्ल्यू० मेयर (Mr F W H Meyers) ने—जा उल्लेखित समिति के स्थापना में से है और जिनके प्रयत्न व अनुसंधान से मनोविज्ञान सम्बन्धी विषय का प्राथमिक वैज्ञानिक युग में उचित स्थान मिला है— अपनी पुस्तक 'मानुषिक व्यक्तित्व एवं मृत्यु के पश्चात् उसका अस्तित्व' (The Human Personality and its Survival of bodily death) में बहुत से अनुसंधानों के विवरणों के अध्ययन से आत्मा के अस्तित्व व उसकी मानसिक शक्तियों के सम्बन्ध में बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इन अनुसंधानों में से कुछ अनुसंधान यहां उद्धृत किये जाते हैं।

(१) व्यक्तित्व में परिवर्तन

एक ही व्यक्ति में भिन्न भिन्न समयों पर ऐसी भिन्न भिन्न अवस्थाएँ दिखलाई देती हैं कि जिससे उसमें भिन्न भिन्न व्यक्तित्व प्रतीत होने हैं जब कि उस व्यक्ति के शरीर की बनावट में कोई विनाश अन्तर निललाई नहीं देना है।

(क) स्मृति का अकस्मात् नष्ट हो जाना

पहिली दशा स्मृति के अकस्मात् नष्ट हो जाना भी है। ऐसे कई उदाहरण उपस्थित हैं कि जिनमें मनुष्य की स्मृति कुछ समय के लिये

कल नष्ट हो गई थी। स्मृति के नष्ट होने पर जहाँ तक कि वह कृतित्व की भाँति काम करने लगा वह वह जहाँ तक कि वह नष्ट नहीं था। भाई तो उसकी स्थिति पूर्ववत् थी। एतद्वाक्य का अर्थ तृतीय अवस्था का—जब उसका स्मृति नष्ट हो गया—हृदय का कार्य ही रहा। मेयरसु ने अपनी पत्नी के हृदय का तन्त्रालय बना जो उद्घुत किया जाता है—

अमेरिका के भ्रन्तगत वरारना के डॉक्टर ड्रेवरी (Mr. Dreyer) जून १९२६ के मेडिकल (Medico-legal Journal) में निम्नलिखित बात का उल्लेख है—
 दो के० एक व्यापारी था जिसका उम्र ३० वर्ष का था। त्रिंशत् वर्ष की उम्र में यह सुगठित था जो शान्तिपूर्ण रूप से जीवित परिवार से सन्तुष्ट था। परन्तु उसके अन्तर्गत व्यापार नियम सामान्य मूल्य के निरस्य। इसका शक्तिपूर्वक व्यवहार ही व्यापार किया मित्राणि के निरस्य काल के अन्तर्गत महाज पर बंध गया। जहाँ पर जब शक्तिपूर्वक व्यवहार ही था तो वह वहाँ पर नहीं पाया गया था। यह व्यवहार नहीं बना। दो मास पश्चात् अकस्मात् का शक्तिपूर्वक व्यवहार २२० पाँड से घट कर १५० पाँड रह गया था। यह व्यवहार और कुछ विशेषता था। पहिल के ही वस्त्र पहिले ही थे। शक्तिपूर्वक के अन्तर्गत ही उसकी अवस्था थी। जब उसकी उम्र ३० वर्ष की अवस्था में ही एक सड़क पर फलों की गाड़ी हाँकता था। उसका तन्त्रालय नहीं था कि वह वहाँ कस कब और काँट काँट ही वह क्या करता है। इन सब प्रश्नों का समझना ही शक्तिपूर्वक व्यवहार ही है।

'The Human Psychology and its connection with bodily death परा २२५

वहा स चलकर वह अपन घर घा गया । उसको जहाज के कमर में प्रयोग करवा का स्मरण था परन्तु उसके पचात् के ६ मास की तनिक भी स्मृति न थी कि वह कहा-कहा गया और कहा-कहा रहा ।

(ख) एक ही समय मे भिन्न २ व्यक्तित्व

कुछ ऐसे व्यक्ति देख गये हैं कि जिनमें दो या तीन व्यक्तित्व पाये गये हैं । निम्नलिखित वृत्तान्त १८६५ की अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन की पत्रिका (American Medical Association Journal) में दिया है —

एल्मा जड (Alma Z) एक अत्यन्त स्वस्थ बुद्धिमती बालिका थी । प्रति परिश्रम के कारण उसका स्वास्थ्य विगड़ गया । दो वर्ष तक रोग रहने पर उसमें अकस्मात् दूसरे व्यक्तित्व का प्रादुर्भाव हुआ । उसने अमेरिका के अदि निवासियों के बालिकाओं की भाँति एक अनेकी भाषा में अपना नाम टुम्पाई बतलाया और प्रगट किया कि वह पहिल व्यक्तित्व की सहायता के लिये आई है । टुम्पाई पूर्णतः प्रसन्न चित्त अनेकी, हास्ययुक्त बात बगन वाली लड़की थी । जब एल्मा जड के शरीर पर टुम्पाई का प्रभुत्व होता था तो वह भलाभाति भोजन करती थी और कहती थी कि पहिल व्यक्तित्व (एल्मा जड) के लाभ के लिये वह भोजन कर रही है । टुम्पाई के रहने की दशा में शारीरिक अवस्था में कितनी ही उत्प्रेरित प्रतीत होती थी । एल्मा जड (पहिल व्यक्तित्व) को टुम्पाई के रहने के समय की कोई भी बात ज्ञात नही होती थी । इस प्रकार एक ही शरीर में दो भिन्न भिन्न व्यक्तित्व रहने थे । भौतिक मस्तिष्क से

^१ उपरोक्त The Human Personality and its Survival of bodily death परा २२५

लेखक ने स्वयं एक शरीर में दो भिन्न भिन्न व्यक्तित्व को देखा है ।

एक ही परिस्थिति में दो भिन्न भिन्न व्यक्ति कत उल्पन्न हा सकते ह ?

(२) श्रद्धुत ज्ञान चमत्कार

चित्तन ही मनष्या के एस उदाहरण ह जा विस्मय में डालन वाला मानसिक शक्तियो का परिचय देते ह । इन उदाहरणों में अधिकतर एस बातका के ह जो गणित सम्बन्धी कठिन प्रश्नों का उत्तर एकदम दे देते ह जिनका समाधान मनुष्य कागज पेंसिल द्वारा चित्तन ही समय में कर पात ह । मेयरस महोदय ने अपनी उपरोक्त पुस्तक में एस १३ उदाहरण दिय ह जिनमें प्रसिद्ध गणितज्ञ गास (Gauss) व एम्पयर (Ampere) के नाम भी ह । उनमें स एक उदाहरण उद्धृत किया जाता ह ।

(क) युद्धि चमत्कार

स्वित्जरलैंड में एडिनबरा नगर के इजिनियर थ्या ब्लिन्ड (Blind) न, जब कि वह ६ वर्ष का बालक था अपन पिता स अपन जन्म का समय

एक महिला के शरीर में दूसरी मत महिला का व्यक्तित्व प्रयत्न करके उस पर अपना प्रभुत्व जमा लेता था दूसरी महिला का व्यक्तित्व के प्रभुत्व होने पर उसके धर्तव्य, रहने व खोलने के ढंग, स्वभाव में बड़ा अंतर हो जाता था । दूसरी महिला का व्यक्तित्व पहिली महिला के शरीर में कभी कई-कई दिन तक रहता था भोजन आदि कार्य भी करता था, जब दूसरी महिला का व्यक्तित्व शरीर में से निकल जाता था तब पहिली महिला का व्यक्तित्व प्रगट हो जाता था । पहिली महिला को उस समय को—जब कि उसके शरीर में दूसरी महिला के व्यक्तित्व का प्रभुत्व होता था—किसी बात या कार्य का शुद्ध भी ज्ञान न होता था ।

पूछा। पिता के दिन व घण्टा बनलाने पर बालक न एकदम बहा तब पिता जी मरी आयु इतन मिक्कड़ की ह, इस पर सिक्कों की गणना की गई और बालक व उत्तर में १७२८०० सिक्का वा अन्तर पाया गया। बालक न कहा कि आप गणना में दा लौद (leap) के वर्षों को भूल गये हैं लौद के वर्षों को गणना में सम्मिलित कर लने पर बालक का उत्तर ठीक निकला। यह आश्चर्यकारी ज्ञान आयु के अधिन हान पर प्रायः इन अद्भुत व्यक्तियों में से लुप्त हो जाता ह। य अद्भुत व्यक्ति अपनी गणना की उस क्षती के बतलान में असमर्थ रहे जिससे ये अपने मन में इन प्रश्नों का हल कर लते थे।

एसी अद्भुत ज्ञानांकित कितन ही बालक व मनुष्या के भीतर विभिन्न कलाओं में भारतवर्ष में भी देखी जाती ह। श्रीमद् राजचन्द्र गतावधानी थे। जो भी वाक्य चाह कितन ही उम्ब व किसी अज्ञात भाषा में ही क्या न हो जब उनका सामन कह जाते थे व उनको उगी तमसे दोहरा त्त थे। दो उदाहरण सगीतकला व भी वतमान काल में देख गये हैं। मास्टर मनहर बरव व मास्टर भन्त^१ दो बालका न—जब कि व ५ वर्ष के ही थे और उनका शब्दा का उच्चारण कठिनता से ही स्पष्ट हो पाया था—

^१ ज्योतिष शास्त्र के आचार्य स्ट्रिफोर्ड (Strifford) १० वय की आयु में ३६ अक्षरों की गुणा १ मिनट में कर लेते थे। इसी प्रकार पादरी व्हाटले (Bishop Whatley) ६ वय से ६ वय की आयु के भीतर बड़े-बड़े गणित के प्रश्नों को हल कर लते थे।

^२ महात्मा गांधी ने स्वयं १८९१ में श्रीमद् राजचन्द्र की परीक्षा की थी जो उन्होंने श्रीमद् राजचन्द्र पुस्तक की प्रस्तावना में लिखी ह।

^३ लखन ने मास्टर भन्त का भयर गान सन १९१२ में प्रयाग में और मास्टर बरवे का सुरीला गान १९२१ में मुंबादाबाद में सुना था। गाना सुनने के समय इनमें से प्रत्येक की आयु ६ वय की थी।

गाना प्रारम्भ किया। संगीतज्ञाना में इनका भाग्यता असाधारण था। इनका गान रागिनी से युक्त नाना प्रकार के बाजों के साथ, इनका सुरावा मधुर गान ध्यानाग्रों के हृदय को माहित व गानकला विगारण के लिये वा धुर करता था। यह शानाक्ति इन व्यक्तियों में बड़ा स घाट ' बिना पूर्व जन्म के स्वीकार किया इनका समाधान नहीं हो सकता।

(३) भविष्यत का ज्ञान

बन्नी-बन्नी काई व्यक्ति मूड बाल में घटित घटना का—जिना वह मथया अरिपिण है—य भविष्य में होना वाला घटना का स्पष्ट रूप बना है। भविष्य में होना वाला एक एनी घटना अपना पत्रों में प्रकाशित हुई है जो उद्धृत की जाती है—

स्वदन देव के स्थावकाम नगर में हम अन्दर लामा अन्तर १९४० के जनवरी मास में अपने शीपी मजिल वान कमर में गिटनी के पास बठा हुआ काटिक सागर की नीतल वायु का सुवन कर रहा था। सामन वाम गह की शीपी मजिल के कमर पर उसकी दृष्टि पड़ी। उतन एक परम सुन्दर युवता को पुस्तक पढ़न देगा। वह उनकी धार देखन लगा ताकि उमका ध्यान अपनी धार भावपित कर स।

परम्माए एष अभिनय निरताई पडा। उमने उस कमर में एक अर्धवन्दक मनुष्य को प्रवण करन देना। उस देवकर युवता मधर्मित हुई और चिन्तापर सुम्नक पेंक दी। एक मिनट के पश्चात् एक सम्बन्ध वाक हवा में बसत निगार पडा। उम मनुष्य ने उम युवता की हवा कर वाली धार यह महिना गिनाती हुई गिर पडा।

^१ यह घटना स्टारकोम के डेनर नहर (Da an Ninter) पत्रसे उद्धृत करके हिन्दुस्तान टाइम्स नामी अग्रणी दैनिक पत्र के १६ मई १९४१ साल धर में प्रकाशित हुई है।

यह घटना इतनी शीघ्रता से हुई कि हंस अञ्जल सहायता के लिये चिल्ला भी नहीं सका। तनिक देर बाद अपने कमरे से निकला। खीन से दौड़ते हुए उतरा। सबके पार करके उस भवन में पहुँचा। गृहरक्षक को सन घटना सुनाई। पहिने तो वह गृहरक्षक विस्मित हुआ फिर उपहास करने लगा। उसने समझा कि अञ्जल पागल हो गया है क्योंकि वह कमरा जिसमें हत्या वाली घटना घनलाई गई थी कई सप्ताह से बंद था कई मनुष्य उसमें नहीं रहता था।

हंस अञ्जल की सान्त्वना के लिये उसको चौथी मजिल के कमरे में ले जाया गया। वह बिल्कुल खाली था। वहाँ से उसका कमरा स्पष्ट दिनाई जाता था। गृहरक्षक ने पुलिस मन को बुसाया और अञ्जल वाली घटना का बणन किया। कान्सटबल ने अञ्जल को पागल समझकर फान द्वारा रोगा की गाडी (Ambulance) भगाई और उभको पागलखान में भज लिया।

एक सप्ताह पश्चान् एक दम्पति उस भवन की चौथी मजिल के कमरे को किराये पर लेने के लिये आया। पुष्प व युवती का डूलिया व युवती के वस्त्र पागल अञ्जल के कठिन बणन से मिलने थे। उम दम्पति ने वह कमरा किराये पर ले लिया। तीन मास पश्चान् गृहरक्षक से अथ किरायेदारों ने कहा कि चौथा मजिल वाल कमरा स—जिसमें वह दम्पति रहता था—खीनन की आवाज आई है। गृहरक्षक किरायेदारों के साथ उस कमरे में गया और उनकी सहायता से कमरा खाला। युवती मृत पड़ी थी और वह पुष्प स्तम्भित दगा में खड़ा था। उसको पुलिस के मुपुद कर दिया गया।

उस व्यक्ति ने स्वीकार किया कि ईर्ष्यावश उमने अपनी पत्नी की हत्या कर डानी है। हत्या का विवरण बिल्कुल वही था जसा कि अञ्जल ने पहिल देखा था।

अब डाक्टरों की एक समिति अञ्जल का पागलखाने से छुडान का प्रयत्न

कर रही है ताकि उसकी मानसिक चट्टानों का अनुवीक्षण किया जावे। यदि मनुष्य में भविष्यत् जानने की शक्ति नहीं है तो यह कहा में आ गई ?

(३) स्वप्न

स्वप्न में प्रायः वे बातें स्मरण आया करती हैं जिनका हम भूल गए हो या जिनपर जागृत अवस्था में हमारा ध्यान न गया हो। मयरम् मट्टो दय ने अपनी उपरोक्त पुस्तक में ऐसी कितनी ही घटनाओं का वर्णन किया है जिनमें से निम्नलिखित घटनाएँ उदात्त की जाती हैं —

अमेरिका देश में पनमिलेवनिथा विश्वविद्यालय के आचार्य लम्बर्टन (Prof Lambertson) एक समस्या का हल बिना निश्चय हुए मौखिक तौर पर करना चाहते थे समाधान करने में असफल होकर उन्होंने उम प्रश्न को छोड़ दिया। एक सप्ताह पश्चात् उन्होंने स्वप्न में उस समस्या का हल यामित्रा के ढग पर दीवाल पर अंकित देखा।

श्री ब्वायन (Boyle) ने—जो गिमला में अफसर थे—स्वप्न में अपने स्वप्न का—जिनके स्वास्थ्य सम्बन्ध में उन्हें को चिन्ता न थी—गरलोक गमन इंग्लैंड के ब्राइटन (Brighton) नगर में गत देखा। स्वप्न सय निकता। मृत्यु का समय बिल्कुल मिलता था।

मृत्यु के सम्बन्ध में हम में से कितने ही मनुष्यों का अनुभव है कि उन्होंने स्वप्न में दूर देश स्थित अपने प्रिय जनो की—जिनके स्वास्थ्य, या मृत्यु के सम्बन्ध में उन्हें किसी प्रकार की भी चिन्ता न थी—मृत्यु हात देखा। वास्तव में गत हुआ कि उनके प्रिय जन की मृत्यु ठीक उसी स्थान समय व ढग पर हुई है जसा कि उन्होंने स्वप्न में देखा था।

य अनुभव जो जागृत अवस्था में विद्यमान न थे, भौतिक मस्तिष्क से कैसे उत्पन्न हो गए ?

(४) हिप्नोटिज़्म (Hypnotism)

यह एसी धमकारिख मानसिक क्रिया ह जिसको बवल भौतिक प्रयास वा मानन वाला व्यक्ति समझन न असमथ ह । आरम्भ में इसक प्रयाग वा— धाय वा बहानिया यहकर—उपहास व तिरस्कार किया गया था । परन्तु अब हिप्नाटिज़्म व उसक प्रयाग में किसी को सन्त नना रहा । अब यह स्वातृन विषय बन गया ह ।

मबस प्रथम फामासी डाक्टर मसमर (Mesmer) महान्य न इस वान वा पता लगाया कि मनुष्य अपन मानसिक प्रभाव वा दूसर व्यक्ति पर डाव सकता ह और इमके द्वारा मिर दन आनि अनक रागो वा उपचार किया जा सकता ह । इमक पश्चात् डाक्टर एसडन^१ (Esdaile) न कनकता नगर क अस्पताल में सकडो रोगिया को अपन मानसिक प्रभाव स अचन करके उनपर आपरणन (चीर फाड़) निय ।

हिप्नोटिज़्म द्वारा बालको वा शिक्षित किया जा सकता ह । उनकी बुराइ व दोष दूर किय जा सकन हैं । एक बालक की यह कटव पठ गई थी कि बिना उगुलिया क पूस हुए उसका नीद नहीं आती थी । उसकी यन् कूटव हिप्नाटिज़्म के प्रयोग द्वारा नष्ट हो गई । जब किसी व्यक्ति पर हिप्नोटिज़्म क प्रयोग किय जात ह तो उस व्यक्ति की पानाकित बिसरित हो जाता ह । आखो पर पट्टी बाधकर हाथ स टटोल कर वः व्यक्ति रगा को पहचान सकता ह । एसी दगा म उस व्यक्ति स जो बछ कहा जाता ह उसी के अनुसार वह कार्य करन लगता ह ।

मनुष्यमें ज्ञान के कई स्तर (तह L. yers) कह जा सकत ह जिनमें से कुछ स्तर सुषुप्ति दगा में पड रहत ह । जब किसी व्यक्ति पर हिप्ना

^१ उपरोक्त परतक The human personality and its Survival of bodily death का पना ५०७

टिज़म के प्रयोग किये जाने हें ता उसक पान के सुपुष्ट स्तर प्रकाश में आ जाने हें और ऊपर वाले जागत स्तर गान्त सुपुष्ट दशा को पहुँच जात हें । उस व्यक्ति के सुपुष्ट पान स्तरा बं जागत हान के कारण ही यह हिप्नोटिज़म करने वाले मनुष्य के प्रभाव को ग्रहण कर लता हें उसकी शिक्षा व आदेश को मानता हें । इसी कारण उसकी पृवृत्तिया सदा के लिये नष्ट हो जाती हें एवं उससे रोग दूर हो जाते हें । ये मानसिक शक्तियाँ भौतिक मस्तिष्क से कैसे उत्पन्न हो सकनी हें ?

(५) चमकीले पदार्थ पर दृष्टि जमाना

विनाय पान प्राप्त करने के लिये किसी चमकते हुए पदार्थ पर टफटकी लगाकर देखने की प्रथा ससार के भिन्न भिन्न प्रदेशों में बहुत काल से चली आ रही हें । इस कार्य के लिये बिल्लौर दण, पालिश किया हुआ लौहा जल से भरा हुआ बर्तन या किसी और चमकने हुए पदार्थ का प्रयोग किया जा सकता हें । यह कहा जाता हें कि कोई व्यक्ति विनायकर घालक, यदि किसी चमकते हुए पदार्थ पर टफटकी लगाकर ध्यानपूर्वक देखे, तो उसके समक्ष भूत एवं भविष्यत घटनाओं के दृश्य आन लगते हें । इन घटनाओं की परीक्षा बानानिक ढंग से की गई हें ।

एक बार एक एस ही चमकते पदार्थ के दशक न सर जोसेफ बानबी^१ (Sir Joseph Barnby) से एक ऐसी ही घटना में देखी हुई महिला का वर्णन किया, जो विनाय प्रकार के वस्त्र पहिन हुए थी । वर्णन से बानबी महोदय ने उस महिला को अपनी पत्नी समझा परन्तु वह उस प्रकार बं धामूपण नहीं पहिनती थी इसलिये उसको उस कथा पर विश्वास नहा हुआ । घर लौटने पर यह देखकर आश्चर्याचिन्त हो गया

^१ उपरोक्त पुस्तक से उद्धृत ।

कि श्रीमती वानवी व्यक्ति विनाय प्रवार व ही वस्त्र पहिने हुई थी । य वस्त्र उसन इन बीच में मान ल निय थ । विल्लोर के दाव ने १८ मास पश्चात भीड़ म श्रीमती वानवी को य ही वस्त्र पहिने हुए देखा और तत्काल ही पहिचान लिया कि यह वही महिला ह जिमको उसन विल्लोर में देखा था ।^१ दाव न जब यह दुःख पहिने नहीं देखा था ता उसके मस्तिष्क न वहा से उत्पन्न कर दिया ।

(६) विचार प्रेषण (Telepathy)

प्राचान काल से कहावत चली आनी ह कि दूरस्थित उच्च आत्माओं तब हम अपनी भावनायें विना किसी वाह्य मध्यमा के पहुँचा सकते ह जसा कि प्रायना में । यदि यह बात सत्य ह ता यह मानना असंगत न होगा कि एक ही स्थिति वाली दूरस्थित दो आत्मायें भी परस्पर विचारों का परिवहन कर सकें । इन घटनाओं की सत्यता का निश्चय अनुसंधान द्वारा वर्तमान काल में किया गया ह ।

श्री गरना (Gurney) न लिवर पूल के न्यायाधीन श्री गठरी (Mr Guthrie J P of Liverpool) व बहुत से अनुसंधानों^१ को लखबद्ध किया ह । गठरी महोदय इन बातों में पहिल विश्वास नहीं करते थ । इन अनुसंधानों में रंग रखागणित की

^१ उपरोक्त पुस्तक में निम्नलिखित घटना भी दी हुई ह —मिस ए० गुडरिच फ्रियर (Miss A Goodrich Freer) को एक बार विल्लोर पर टफटफी लगाकर देखने से बाढ़ पर लगी हुई बहुत लम्बी मोठी मटर का दुःख दिखलाई दिया । कुछ समय के पश्चात् पड़ोसी के बाण में जाने पर—जिसमें यह पहले कभी नहीं गई थी—घड़ी लम्बी मटर घाती बाढ़ सामने दिखलाई पड़ी ।

^१ उपरोक्त पुस्तक के पर ६३० व ६६८

शकलें तास व अय पदार्थों की भावनाओं को दूर प्रेषित किया गया था। निश्चित समय पर श्री गठरी न एक स्थान पर स्थिर हाकर एक अपन मन को एकाग्र करके पूण सकल शक्ति के द्वारा इन वस्तुओं की भावनाओं का दूसरे स्थान पर स्थित मनुष्य तक प्रेषण करना प्रारम्भ किया। इस दूसरे व्यक्ति न विना अपनी बुद्धि को प्रयाग में साथ हुए यत्र की भाति चित्र च्वाचना प्रारम्भ किया। य चित्र श्री गठरी की प्रेषित वस्तुओं की भावनाओं से मिलते जुलते थे। लगभग १५० अनुसंधान एक मास में गठरी महोदय न किय थ। उन्हान उन चित्रा को समाल कर रखा ह। इनमें से कुछ चित्र मरस् महोदय की उपरोक्त पुस्तक में मुद्रित हैं। इन चित्रा के देखन से गत होता ह कि य अटकन या अतस्मात् नही बने ह।

इनके पश्चात् सर ओलावर लॉज (Sir Oliver Lodge) न श्री गठरी के साथ मिलकर पुन स्वतंत्र अनुसंधान किय और उपरोक्त घटनाओं को सत्य पाया।

उपरोक्त भावनाओं के प्रेषित करन के धार्मिक कुछ ऐसा घटनायें हैं जिनमें मनुष्य का भौतिक शरीर उसी स्थान पर रहत हुए भी उसका व्यक्तित्व दूसरे स्थान तक चला जाता ह परन्तु उस व्यक्ति को इसका पता भी नहा लगता ह। मित्र दंग के काहारा (Cairo) नगर के होटल में दो अग्रणी महिलायें एक रात्रि का सा रही था। जय व जागत अस्थायी में थीं उहाने एक अग्रज मित्र को—जो उस समय इंग्लैंड में विद्यमान था—देया। पता लगान पर पान हुआ कि उनका मित्र उस गिन बड़ा ही चिन्तित था और अग्नि के पास बसा हुआ कुछ परामर्श करन के लिये उनसे एक महिला से मित्रन के लिय बड़ा उत्सुक था।

पान्नी गॉडफ्रे (Rev Godfrey) न दिवार प्रपण (Telepathy) की बातों से प्रभावित होकर स्वयं अनुसंधान करने का सवत्प किया। एक रात्रि को गध्या पर स्थित होकर मन को एकाग्र करके, उहान एक दूर स्थित मित्र महिला के सम्मिलन पर अपने ध्यान को पूरा मकल्प के साथ लगाया। कुछ मिनट तक ध्यान लगाए पर उनकी नींद धा गई। प्रातःकाल जागन पर उन् प्रतीत हुआ कि ये अपनी मित्र महिला मे मिल जिय ह। इस अनुसंधान का तनिज सा भी सवेत उन्होने अपनी मित्र महिला से पहिले नहा किया था। दूसर दिन पना लगन पर यह सुनकर स्तम्भित रह गये कि उनकी मित्र महिला न उसी रात्रि को उहें खीन पर खग हुआ प्रत्यक्ष देखा था मोमवत्ती स्थिताने पर व एकत्रम अदृश्य हो गय। उहान यह अनुसंधान द्वारा भी किया और उसमें भी सफल हुए। इससे स्पष्ट है कि न केवल भावनायें ही बरन मनुष्य का व्यक्तित्व भी उसके भौतिक शरीर के वहीँ रहते हुए दूसर स्थान तक प्रचित किया जा सकता ह।

इन भिन्न भिन्न घटनाओं को बड़ी कुशलता के साथ श्री मेयरस् व अन्य विज्ञान ने अनुसंधान करके पुस्तकों में संगृहीत किये ह जिनकी सभना में किसी को भी सन्देह ननी होना चाहिय। इन घटनाओं का सन्तोषप्रद उत्तर बज्ञानिक अपने भौतिक विज्ञान के आधार पर देन में असमथ हैं। इनका उत्तर अण्यत्रम सत्व के आधार पर ही लिया जा सकता ह।

(७) क्या शारीरिक मृत्यु होने पर मनुष्य का व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है ?

इस विषय में बज्ञानिक श्री मेयरस (Meyers) सर विलियम क्रूक (Sir William Crooks) सर आथर कानन डायल (Sir Conan Doyle) एक प्रसिद्ध बज्ञानिक सर आनीवर साज

(Sir Oliver Lodge)—जो रायल सोसाइटी का अध्यक्ष भी रहें—न बहुत से अनुसंधान किए हैं। इन अनुसंधानों से आत्मा का पारि-
रिक मृत्यु के पश्चात् भी जावित रहना प्रमाणित होना है। ये अनुसंधान दो प्रकार के हैं —

(क) जिनमें मनुष्य की आत्मा मृत्यु के पश्चात् फिर मनुष्य जन्म
धारण करता है।

(ख) जिनमें मनुष्य की आत्मा मृत्यु के पश्चात् प्रत योनि में जन्म
लता है।

(क) मनुष्य योनि में जन्म

पुनर्जन्म के बहुत से उदाहरण पाश्चात्य विद्वानों ने समूहित
किये हैं। भारतवर्ष में मृत्यु के पश्चात् पुनः मनुष्य योनि में जन्म लेने की
वित्तनी ही घटनायें होती रहती हैं। अभी सन् १९२६ की बात है कि
युक्तप्रान्त के बरली नगर में श्री वेक्यनन्दन वकील के एक पुत्र उत्पन्न
हुआ।^१ जब यह बालक ५ वर्ष का हुआ और बोलना सीख गया तो
वह अपने पुनर्जन्म की बातें कहने लगा कि पूरे जन्म में मैं बनारस निवासी
बबुआ पाठ का पुत्र था। उस बालक के पिता श्री वेक्यनन्दन बड़े मित्रों
के नाम उस बालक को बनारस ले गये और बालक के बतलाये हुए स्थान
पर पहुँचे। उस समय बनारस का जिलाधीश श्री वा० एन० मेहता
(Mr V N Mehta) भी उपस्थित थे। बालक बबुआ महाराज
थया उस माहल में एकत्रित सज्जनों को उनका नाम ले-ले कर पुकारने
लगा और उनमें मिलने की उत्सुकता प्रकट करने लगा। अपने पूरे जन्म

^१ इसाहाबाद के प्रसिद्ध दैनिक पत्र लीडर (Leader) में ये समा-
चार छपे थे और लेखक ने स्वयं बरली जाकर इसकी सत्यता का निश्चय
किया था।

वे गह तथा बन्त की वस्तुओं को पहिचान लिया और अनक प्रदन पूछन लगा कि अमुक-अमक वस्तुयें क्या-कहा ह और कमी ह । उस बालक का लाया हुआ पूव का म वा रामरन वस्तान्त बिल्कल सय निवला । यह अ अय भी जावित ह परन्तु पूव जम की अक उसपी स्मति नाट हो गी

(ख) प्रेतयोनि में जम

मनुष्य की आत्मा का मत्यु क पश्चान् प्रत यानि म जाकर । सम्बधा एक मित्रा को निवस्तार्क देन व यार्तालाप करने व सम्ब श्री मेयरम व थी गरनी न बहुत स अनुसधान किय ह जो उपरोक्त पुस्तक में अकित हैं । एमी बहुत सी घटनायें भारतवष में भी हाती रहती ह और उनमें स अनक समाचार पत्रो में भी मन्ति हुई ह परन्तु उनकी सत्यता नानिव अनुसधान की बसोटी पर नहीं जावी गई । इसनिय उनका विवरण नहीं दिया जाना ह । कुछ घटनायें उपरोक्त पुस्तक से उदघत की जाती ह —

१ प्रतयोनि में उत्पन होकर दिखलाई देना

केप्टन कोल्ट (Captain Colt) का एक भाई सना में था जो सेवसटोपल स्थान पर यद्ध कर रही थी । उनमें प्राय पत्र अश्वहार हुआ करता था । एक बार जब उसका भाई उदास था तो केप्टन कोल्ट न उसको लिखा कि तुम प्रमन्न रहो उगागी को पास मत आन दो यदि कोई विशय बात हो तो स्काटलड में आकर मुभसे मिलो । कुछ त्रिवो व पश्चान् एक रात्रि का केप्टन सहसा जाग उठा और अपन भाई की छाया को देखा । उसके चारो ओर पीना कोहरा सा था । वह पनग के पास घुटन टक रहा था । वह छाया केप्टन के तिर के चारों ओर घूमी और

^१ उपरान्त पुस्तक का पृ ७०५ (ग)

उसकी ओर प्रेम भरी चिन्तित दृष्टि से देखती रही। केप्टन न उसकी दाहिनी कनपटी पर एक घाव देखा, जिससे रक्तधारा बह रही थी। एक पत्र बाट केप्टन को सचना मिली कि उसके भाई की मृत्यु हो गई है, उसका घाव घुटन टकती हुई भ्रवस्या में पाया गया था, उसकी कनपटी पर गोली का घाव था और उसकी जब में केप्टन का उपराक्त पत्र था।

२ प्रेत यानि में उत्पन्न होने के कितने ही समय पश्चात् दिखलाई देना

केप्टन टाउन' (Captain Towns) की मृत्यु क पश्चात् एक रात्रि को उनकी पुत्री न अपनी महिला मित्र के साथ दायनगृह में प्रवृत्त किया जिसमें गस का प्रकाश हो रहा था। वह दक्षकर वह स्तम्भित रह गई कि मृत पिता का प्रतिबिम्ब तोणखाने की चमकती हुई दीवाल पर पड रहा है। उस कमर में उनका कोई चित्र न था इसलिय यह प्रतिबिम्ब किसी चित्र का नहीं हो सकता था। चार सेवकों को बुलाया गया उहान भी प्रतिबिम्ब को देखकर अपने मठ स्वामी को पहिचान लिया। अन्त में श्रीमती टाउन को भी बुलाया गया। उहाने भी प्रतिबिम्ब को स्पष्ट तौर पर देखा और उसको स्पर्श करने के लिये आग बडी तो वह प्रतिबिम्ब धीरे धीरे लुप्त हो गया।

३ प्रेत बोलते भी है

दयागृह की अधिष्ठात्री बहिा बरथा' (Sister Bertha Superior of the House of Mercy) क सम्बन्ध में एक

^१ उपरोक्त पुस्तक का पृ. ७४१

^२ उपरोक्त पुस्तक का पृ. ७४३ (घ)

घटना अक्षित का गई है। उन्होंने यह वाक्य सुना कि मैं आपके पास हूँ। स्वर में उन्होंने महिचाना कि यह रात अनन्ती मित्र व गिप्या मिस लुसी (Miss Lucy) के है। किसी को न देखकर बहिन बरखा ने पूछा कि आप कौन हैं ? उत्तर मिला कि 'आपको अभी ज्ञात नहीं होना चाहिये। दूसरे दिन उन्हें ज्ञात हुआ कि मिस लुसी की मृत्यु उसकी छाया आने के १२ घण्टे पूर्व हो चुकी थी।

४ प्रेतों का गहवास

एक श्रीमती एम' (M) थी। उनको यह ज्ञात न था कि उनके नवीन गृह में प्रता का वास है। एक रात्रि को सोते हुए उसने सिसवन की ध्वनि सुनी। सिसवन की ध्वनि लगातार होत रहने पर उसने खिडकी खाली। उसको बाहर घास पर एक परम सुन्दरी युवती लिखलाई का जो पीली वस्त्रों से युक्त एक सनाध्यक्ष के सामने घुटने टक रही थी। यह दृश्य देखकर श्रीमती एम ज़ीन से नीचे गइ और युवती से कहा कि मेरे पास आकर अपने दुःख की कहानी बहा। इतने में वह मूर्तिया अदृश्य हो गई। कुछ समय के पश्चात् ज्ञात हुआ कि वह गृह एक प्राचीन स्वाभिमानी परिवार का था। उस गहवामिनी एक युवती की हत्या की गई थी। हत्यारा सनाध्यक्ष उसका पिता था। उसने उस युवती न क्षमा-याचना की थी परन्तु वह अस्वीकृत की गई थी। कुछ महीनों के पश्चात् श्रीमती एम ने उस सनाध्यक्ष का चित्र देखा। चित्र देखते ही पहिचान लिया कि यह उसी पुरुष का चित्र है जिसको उसने उस रात्रि की घटना में देखा था।

^१ उपरोक्त पुस्तक का पृ. ७४५ (आ)

५. प्रेतयोनि में शरीर मनुष्य के शरीर सदृश मूर्ति नहीं होता

निम्नलिखित घटना^१ बड़ी महत्वपूर्ण है, इसकी सत्यता भलीभांति जांच की गई है —मिस माटन (Miss Morton) ने गृह में वात करने वाली प्रेत महिला को कई बार देखा था। यह परीक्षा करने के लिये कि क्या प्रेत वा मनुष्य के सदृश भौतिक शरीर होता है उसने जीन की सीढ़ियाँ पर कुछ उत्तम लकड़गार तार इस भाँति लगा लिये कि यदि उनपर होकर कोई जावे तो वे तत्काल ही गिर पड़ परन्तु कश्चिदलाई न दें। प्रेत महिला उन तारों पर होकर आई परन्तु उन तारों में से किसी भी तार में टमक नहीं लगी। मिस माटन ने उस प्रेत की शय्या को स्पष्ट करने के कई बार प्रयत्न किये, परन्तु सावधानीपूर्वक प्रयत्न करने पर भी वह सफल न हो सकी। उसने यह भी प्रयत्न किया कि उस प्रेत की शय्या को रोके ले परन्तु वह प्रेत खुन या बलु द्वारा में से बड़ी सरलता के साथ यकायक निकलकर भाग्य हुआ जाना था।

उपरोक्त घटनाओं के अनिश्चित भेज के ऊपर उठने वाले हीन तथा बिना किसी बाहरी सहायता के स्वयं लिखने आदि के बहुत से अनुसंधान मर आनीवर लाज आदि कितने ही बतानिका न किये हैं जिनके द्वारा मनुष्य मृत आत्माओं से बातचीत कर सकता है। सम्भव है इस सम्बन्ध में कुछ धोखा भा लिया गया हो। परन्तु इन घटनाओं की सत्यता की परीक्षा भलीभांति की जा चुकी है।

६. मृत आत्मा से बातचीत करना

प्रसिद्ध बतानिक सर आलीवर लाज का पुत्र रेमंड (Reymond) मृत यूरोपीय महासमर के सितंबर सन १९१५ में फ्लैंडर्स (Flanders)

^१ उपरोक्त पुस्तक का पृष्ठ ७५१ (अ)

प्रश्न में मारा गया था। मृत्यु के समय रमड की आयु २६ वर्ष की थी। सर आरुवर लाज न मत आत्माया स विगप कर, अपन पुत्र रमड की मूल आत्मा से बातचीत करने के बहुत से अनुसंधान किए, जिनको उन्होंने रमड मथ्यून' (Reymond Methuen), 'विज्ञान व मानव उन्नति (Science and Human Progress) एवं 'मैं क्या आत्मा के अमरत्व में विश्वास करता हूँ (Why I believe in Personal Immortality) नामक तीन पुस्तका में प्रकित किया है। इन अनुसंधानों से उनकी विश्वास हो गया था कि शारीरिक मृत्यु के पश्चात् भी आत्मा जीवित रहता है।

मेयरल सर आरुवर लाज वानन डायल के अतिरिक्त रस्किन (Ruskin) एल्फ्रेड रसन वानस (Alfred Russel Wallace) सर विलियम क्रूक्स (Sir William Crooks) सर एडवर्ड मार्शल हॉल (Sir Edward Marshal Hall) आदि अन्य प्रसिद्ध विद्वानों ने भी इन विषयों पर अनेक अनुसंधान किये हैं। अनाविज्ञान समिति के उपरोक्त भिन्न भिन्न अनुसंधानों से भी स्पष्ट है कि मनुष्य में भौतिक शरीर के अतिरिक्त एक अन्य सूक्ष्म पदार्थ है जिसको आत्मा कहते हैं। यह आत्मा ज्ञान की अमूर्त शक्तियों से सरपूर है और शारीरिक मृत्यु के पश्चात् भी जीवित रहता है।

५—आत्मा का वास्तविक स्वरूप

यह निणय हो जान पर कि मनुष्य पशु, पक्षी भाति समस्त प्राणी को पत्थाय पुद्गल व आत्मा के बन हुए ह इन प्राणियों का दश्य बाह्य भाग शरीर हाड मांस भादि भौतिक पत्थों का बना ह और इन प्राणियों का अन्तरग भाग—जिसमें पत्थों के देखने जानन, हित-अहित विचारन पूव काल की बातों व स्मरण रखन सकल्प शक्ति व अनक प्रचार की रागद्वेषाति भावनायें ह—आत्मा (जीव) ह यह प्रश्न स्वभाविक हा उठता ह कि आत्मा का वास्तविक स्वरूप क्या ह जो वतमान अवस्था में देखन जानन रूप ज्ञान गुण, सकल्प शक्ति व अनक प्रचार की काम श्रेय भादि भावनाया के रूप में प्रतिभासित हाता ह। जीव के वास्तविक स्वरूप का निणय हा जान पर आत्मा सम्बन्धी अय गूढ प्रश्ना का समाधान सरलता पूवक हा मवगा ।

(१) ज्ञान स्वरूप

यह निर्धारित किया जा चुका ह कि मनुष्य में पत्थाय देखन जानन हित अहित पहिचानन, विचार करन अनीत की बातें स्मरण रखन का ज्ञान गुण ह ।

पदाय का ज्ञान मनुष्य को ध्यानपूवक देखन, विचारन गुरु या अय जानी पुरुष के उपदेश या पुस्तक के अध्ययन से प्राप्त होना ह । यह जानना आवयक ह कि मनुष्य में यह ज्ञान कहा मे आता ह ? क्या यह ज्ञान पदाय या पुस्तक में से निकल कर मनुष्य में प्रवण कर जाता ह ? क्या इस ज्ञान का गुरु जी अपने ज्ञान में से पुयक करके गिष्य का प्रदान कर देत ह ? वस्तु या पुस्तक स्वयं जाननूय ह और भौतिक पत्थाय की बनी हुई ह इस

लिय ज्ञान हमको मानव से निकल कर नहीं आ सकता । गुरु जी यदि अपना ज्ञान में से कुछ भग्न प्रथक करके शिष्य का द देने ह, तो गुरु जी के ज्ञान में कुछ कमता आ जानी चाहिये । अनुभव यतलाता ह कि ज्यो-ज्यो आचार्य महोदय शिष्य को ज्ञान प्रदान करत ह त्यों-स्या आचार्य व शिष्य दोनों के ज्ञान में वृद्धि होती ह । इसलिय यह मानना पडता ह कि यह ज्ञान गुरु जी के ज्ञान में से प्रथक हाकर शिष्य में नहीं आता ह । गुरु पुस्तक या अन्य बाह्य पदार्थ में से ज्ञान के न निकलन एव मनुष्य में न प्रवेश करन से इस परिणाम पर पहुँचन के लिये बाध्य होना पडता ह कि यह ज्ञान मनुष्य के भीतर स्वयं अध्यक्त दशा में विद्यमान ह और वस्तु के ध्यानपूर्वक देखन विचारन गुरु उपदेश या पुस्तक के अध्ययन से मनुष्य का यह अध्यक्त ज्ञान विकसित होकर व्यक्त दशा का प्राप्त हो जाता ह ।

मानव समाज को ध्यानपूर्वक देखन से ज्ञात होता ह कि यह ज्ञान गुण प्रत्येक मनुष्य में एक सी मात्रा में नहीं पाया जाता । किसी की वृद्धि तीव्र होती ह और किसी की मन्द । किसी की स्मरणशक्ति प्रबल ह और किसी की निम्न । कोई विद्वान ह और कोई ठठ गवार । यदि एक मनुष्य गणित का पंडित ह तो दूसरा विज्ञान का वक्ता तीसरा दान शास्त्र का आचार्य चतुर्थ धार्मिक धर्मशास्त्र इतिहास राजनीति आदि के विद्वान ह । कोई व्यक्ति एक भाषा जानता ह और कोई दूसरी भाषा । इस प्रकार ज्ञान गुण मानव समाज के भिन्न भिन्न व्यक्तियों में भिन्न भिन्न दशा अवस्था व मात्रा में पाया जाता ह । कोई भा ऐसे दो व्यक्ति दृष्टि गोचर नहीं होते कि जिनमें ज्ञान गुण एकसी अवस्था व मात्रा में पाया जाव । ज्ञान की मात्रा प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न भिन्न पाई जाती ह ।

यह देखा जाता ह कि एक व्यक्ति जो पहिले किसी विषय से सबधा अनभिज्ञ ह प्रयत्न करन पर थोडा समय में ही उस विषय का पारगामी हो जाता ह । एक भारतीय—जो अंग्रेजी भाषा से सबधा अपरिचित होता ह—कुछ समय तक प्रयत्न करने पर उस भाषा (अंग्रेजी) का विद्वान

बन जाता है और अंग्रेजी भाषा में अपने विचारों को अंग्रेजी की भाँति प्रगट करन लगता है। यदि कोई मनुष्य इतिहास में अनभिज्ञ है और वह इतिहास में बनना चाहता है तो प्रयत्न करने पर धीरे धीरे इतिहास के प्रथा का अध्ययन करता हुआ इतिहासवत् बन जाता है। इसी प्रकार एक व्यक्ति—जो किसी विषय में सवथा अनभिज्ञ है—प्रयत्न करने पर उस विषय का पटित हो जाता है।

इस बात से कि कोई भी विषय—जो किसी मनुष्य में ज्ञानाकार है—प्रयत्न किये जान पर दूसरे मनुष्य में ज्ञानगम्य हो सकता है प्रतीत होता है कि समस्त वस्तुओं में समस्त विषय—जो किसी भी व्यक्ति के ज्ञानाकार है—ठीक प्रकार प्रयत्न किये जान पर दूसरे व्यक्ति में भी ज्ञानगम्य हो सकता है। इस विवेचन से इस सिद्धान्त पर पहुँचा जाता है कि इन दोनों व्यक्तियों में ज्ञानाकार बराबर है परन्तु इस ज्ञानाकार का विकास इन दोनों में भिन्न भिन्न है। जिस व्यक्ति में ज्ञान की मात्रा कम है वह व्यक्ति अपनी ज्ञानाकार को उचित साधन द्वारा विकसित करके, दूसरे व्यक्ति की ज्ञानाकार के विकास में बराबर कर सकता है। जो सिद्धान्त इन दो व्यक्तियों के लिये स्थिर होता है वही सिद्धान्त उपरोक्त युक्ति द्वारा मानव समाज के समस्त व्यक्तियों के लिये स्थिर होगा। इस विवेचन से यह सिद्धान्त निश्चित होता है कि मानव समाज के प्रत्येक व्यक्ति में ज्ञानाकार बराबर है परन्तु इस ज्ञानाकार का विकास भिन्न भिन्न व्यक्तियों में भिन्न भिन्न है। जिन व्यक्तियों में ज्ञानाकार का विकास कम है प्रयत्न करने पर उनकी ज्ञानाकार के विकास में वृद्धि हो सकती है।

मानव समाज में समस्त व्यक्तियों में ज्ञानाकार एकनी होने से स्पष्ट है कि एक मनुष्य यदि उसके माँग में व्याधि रोग मृत्यु आदि घात स्थिति उपस्थित न हो और उचित साधन उसको प्राप्त होने रहें तो वह मनुष्य उन समस्त विषय एवं पदार्थों का ज्ञान प्राप्त कर सकता है, जो किसी दूसरे व्यक्ति को प्राप्त है, पूर्व काल में प्राप्त था या भविष्य में प्राप्त होगा।

एमी बाई वस्तु हो नहा सयती जो निती भा व्यक्ति के ज्ञानगोचर न ह। यत्नि कहा जान कि एस अज्ञात पदार्थ विद्यमान ह जो किसी भी व्यक्ति के ज्ञानगोचर न थ न ह और न हाग तो उस कहने वाल व्यक्ति से (प्रत्युत्तर में) पछा जा सकता है कि ऐसे अज्ञात पदार्थों का—जो किसी भी व्यक्ति के ज्ञानगम्य नहा ह—सत्ता का प्रमाण ही क्या ह ? यत्नि सत्ता का प्रमाण ह ता थ पदार्थ अन्वय की शक्ती से निकल कर ज्ञय की शक्ती में आ जात ह और उनका ज्ञान मनुष्य का हो सकता ह । यत्नि इनकी सत्ता का कोई प्रमाण नहीं ह तो यही मानना पडता ह कि य पदार्थ कल्पित ह इनका कोई अस्तित्व वास्तव में नहीं ह ।

इन बातों से—कि मनुष्य उचित प्रयत्न करन पर समस्त पदार्थ व विषयों का ज्ञान हो सकता ह और यह ज्ञानशक्ति मनुष्य में अव्यक्त दशा में पहिल ही से विद्यमान ह—स्पष्ट ह कि मनुष्य में स्वभाव से ही सम्पूर्ण पदार्थों के ज्ञान की शक्ति अव्यक्त दशा में विद्यमान ह । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता ह कि मनुष्य में सवगता का गुण शक्ति रूप से अव्यक्त दशा में विद्यमान रहता ह । इस अव्यक्त ज्ञानशक्ति के न्यून या अधिक विकसित होन के कारण ही भिन्न भिन्न मनुष्यों के ज्ञान में इतना अधिक अन्तर पाया जाता ह । इस अव्यक्त ज्ञानशक्ति के पूण विकसित होन पर मनुष्य सम्पूर्ण पदार्थों का ज्ञान अर्थात् सवग हो सकता ह ।

हस्ति आदि बड़-बड़ पशुओं में भी वस्तु दत्तन विचारने हित अहित पहिचानन व स्मरण रखन की शक्ति पाइ जाती ह । परन्तु यह ज्ञान शक्ति मनुष्य की अपक्षा पशुओं में न्यून मात्रा में ह जिससे ज्ञान होना ह कि पशुविव जीवन में ज्ञान का विकास बहुत कम ह । पक्षी जन्तु की शक्ति पतंग आदि छोटे छोटे जन्तुओं में तो इस ज्ञानशक्ति का विकास और भा कम ह । जो अव्यक्त ज्ञानशक्ति युक्ति से मनुष्य में सिद्ध होती ह वही ज्ञानशक्ति अव्यक्त दशा में पशु पक्षी आदि जीवों में भी माननी

होगी। इसलिये प्रत्येक जीव में सबज्ञता का गुण अव्यक्त दशा में स्वभाव से ही मानना होगा।

जिम प्रकार सामारिक मनुष्य में विविध विषयों का ज्ञान एक ही साथ एक ही समय में विद्यमान रहता है उनी प्रकार सबज्ञ में भी समस्त पदार्थ व विषयों का ज्ञान एक साथ एक ही समय विद्यमान रहता हुआ मानना होगा।

अन्य प्रकार विचारन से भी उपरोक्त परिणाम पर पहुँचा जाता है। सांसारिक दशा में आत्मा बाह्य पदार्थों का ज्ञान नेत्र आदि इन्द्रिय एवं मस्तिष्क की सहायता से प्राप्त करता है। जब यह आत्मा उचित प्रयत्न करने पर पूर्ण विकसित व शुद्ध हो जावेगा और उसकी बाह्य इन्द्रिय व मस्तिष्क की आवश्यकता नहीं रहेगी, उस समय यह आत्मा बिना बाह्य इन्द्रिय व मन की सहायता के अपने दिव्य ज्ञान से ससार के समस्त पदार्थों को जान भवेगा। सांसारिक दशा में इन्द्रिय द्वारा प्राप्त ज्ञान सीमित है। नेत्र आदि इन्द्रिया की पहुँच कुछ दाय व दायमान काल तक परिमित है अधिक दूरी एवं अविद्यमान वस्तु का ज्ञान इनकी शक्ति से बाहर है। मन अनुमान द्वारा भूत व भविष्यत की ज्ञान का ज्ञान प्राप्त करता है परन्तु यह ज्ञान पूर्णतया निमल स्वच्छ या निस्संशय नहीं होता, भ्रम होने की भाँवा रहती है। ज्ञान दिव्य शक्ति अतीन्द्रिय हो जाता है, इन्द्रिय सहायता की आवश्यकता नहीं रहेगी एवं उनके प्रयोग को छोड़ देता है उस समय ज्ञान असीमित व अनन्त हो जाता है। उस ज्ञान को सीमित करने वाली कोई वस्तु या र्बाध नहीं रहती। उस दिव्य ज्ञान की दृष्टि में भूत अनागत एवं दूरवासी पदार्थ उसी प्रकार प्रतिभासित होते हैं जैसे कि यन्मान काल सम्बन्धी समीपवर्ती वस्तु। इस प्रकार यह अपने दिव्यज्ञान से भूत भविष्यत, यन्मान काल सम्बन्धी त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों को जान सकेगा। इस दृष्टि से भी आत्मा में सबज्ञता का गुण अव्यक्त रूप से निहित होता है।

कोई व्यक्ति अपने बल धन एवम आदि से गर्वोन्वित होता है उस समय उसमें नम्रता के भाव नहीं पाये जाते । मनुष्य जब गीक से व्याकुल माय से कम्पित होता है उस समय उसमें प्रसन्नता के भाव विद्यमान नहीं होते । जब किसी व्यक्ति के हृदय में किसी रोगा दुखी अवस्था की पराजय अवस्था देखकर दया के भावों का संचार होता है उस समय उसके हृदय में से निश्चयना, कठोरता के भाव लुप्त हो जाते हैं । जब किसी मनुष्य का हृदय किसी सुन्दर समाचार के सुनने पर हृय से प्रफुल्लित हो उठता है उस समय उसके हृदय से दुःख गाम भय आदि भावनाएँ लूच कर जाती हैं । यही ल्या धन्य भावनाओं के सम्बन्ध में है । इन प्रकार काम शोध आदि समस्त वासना व भावनाएँ एक साथ एक ही समय में किसी भी व्यक्ति में नहीं देखी जाती हैं । यह अवश्य है कि मनुष्य में कान् न कोई एक या अधिक भावनाएँ प्रत्येक समय विद्यमान रहती हैं ।

इन भावनाओं की परिणति में मदक परिवर्तन होता रहता है । कोई भी भावना स्थिर नहीं रहती है । यदि कोई मनुष्य एक समय प्रकृत होता है तो कुछ दर पश्चात् उसका प्राय गान्त हो जाता है । उसके हृदय में पश्चात्ताप आत्मग्लानि आदि के भाव उत्पन्न हो जाते हैं । इन परिवर्तनशील भावनाओं की आत्मा का स्वरूप या स्वभाव नहीं कहा जा सकता । स्वभाव वस्तु का वह गुण है जो उस वस्तु में सदैव विद्यमान रहे, किन्तु न किसी धन में अवश्य पाया जावे उस (वस्तु) से किसी अवस्था में भी पथक न हो । इसलिये इन परिवर्तनशील भावनाओं का आत्मा का विभाव (आत्मा के स्वरूप का विकृत रूप) मानना होगा । इस दृष्टि में यह प्रश्न स्वभाविक ही उठता है कि आत्मा का वह क्या स्वरूप है जो काम, शोध आदि अनेक प्रकार के विभावों द्वारा प्रदर्शित हो रहा है ।

इन काम शोध आदि भावनाओं के अन्तगत दुःख या सुख की भावना

पाइ जाती है। इस सम्बन्ध के लिये एक वृत्तहरण लेना उचित होगा। एक व्यक्ति के पास एक सुन्दर चित्र है जो उसको अत्यन्त प्रिय है। यदि उस चित्र पर वास्तु दूसरा व्यक्ति मुग्ध होकर, उसकी प्राप्ति के लिये उद्यत हो तो वह तब समझा उपस्थित हो जानी है। प्रथम व्यक्ति सशक्त रहकर उसकी रक्षा करता है। यदि दूसरा व्यक्ति उस वस्तुवस्तु अपने अधिकार में करने का प्रयत्न करे तो प्रथम व्यक्ति—यदि वह सबल है—क्रोध में भर कर दूसरे व्यक्ति को मारने के लिये तत्पर हो जाता है। परन्तु यदि वह निबल है तो दूसरे व्यक्ति से डर कर फागन लगता है, उसकी सहायता करता है जिसमें वह प्रसन्न होकर चित्र को न छीने। जिस चित्र पर प्रथम व्यक्ति मुग्ध है यदि वह दूसरे व्यक्ति के अधिकार में है तो उसके प्राप्त करने के लिये वह व्यक्ति अनक प्रकार क प्रयत्न रचता है, चरान बनवक छीनने आदि के अनक उपाय प्रयोग में लाने के लिये उद्यत होता है। संप्रति होकर रक्षा आदि उपरोक्त समस्त वृत्तियों के अन्तगत व्याकुलता के भाव विद्यमान है। यह व्याकुलता प्रिय चित्र के धियोग की प्राप्ति या प्राप्ति का उत्कण्ठ इच्छा से उत्पन्न हुई है। यह व्याकुलता दुःख रूप है। इस भाति उपरोक्त समस्त भावना व वृत्तियों के अन्तगत दुःख की भावना विद्यमान है। यदि उस प्रिय चित्र की रक्षा या प्राप्ति में अन्य तीसरा व्यक्ति प्रथम व्यक्ति की सहायता करे तो उसके हृदय में तीसरे व्यक्ति के प्रति प्रेम व मित्रता के भाव उत्पन्न होत है। इन प्रेम व मित्रता के भावों के अन्तगत प्रसन्नता का भाव विद्यमान है।

इसी प्रकार किसी मनप्य को अपने यहाँ की बात सुनकर प्रसन्नता होती है जो कोई व्यक्ति उसकी यहाँ वृद्धि में सहायता करता है उसमें प्रेम करने लगता है क्योंकि उस व्यक्ति ने उसके सुख के कारण यहाँ वृद्धि में सहायता की। यदि दूसरा व्यक्ति उसके यहाँ में बाधा डाले या अपयज्ञ फलदा तो वह उस व्यक्ति से दूर करने लगता है क्योंकि उसने सुख देने वाले यहाँ में विघ्न डालकर दुःख पहुँचाया। इस प्रकार इन समस्त राग

इस प्राप्ति भावना एक वस्तुता के अन्तर्गत व्याकुलता या प्रसन्नता की भावना पाई जाती है। यह व्याकुलता या प्रसन्नता की भावना दुःख या सुख की भावना के रूपांतर ही है। इस प्रकार काम प्रायः दया प्रम प्राप्ति सनस्त भावनायें दुःख या सुख की भावना से रजित पाई जाती हैं।

सुख व दुःख का भावनाय परस्पर विराधी है। जब मनुष्य सुख अनुभव करता है उस समय दुःख की भावना प्रतीत नहीं होता। इसी प्रकार जब मनुष्य की परिणति दुःख रूप होती है उस समय सुख की भावना विलुप्त हो जाती है। इन दोनों भावनाओं में से केवल एक ही भावना (सुख या दुःख की) किसी एक समय में पाई जाती है। परस्पर विरोधी होने के कारण सुख व दुःख की दोनों भावनायें आत्मा के स्वभाव रूप नहीं हो सकती। इन दोनों भावनाओं में से एक ही भावना आत्मा का स्वरूप हो सकती है।

प्रत्यक्ष जीव में सुख का कामना पाई जाती है सुख प्राप्ति के लिये ही उसका प्रत्यक्ष वाय होता है। कोई भी व्यक्ति किसी भी दशा में सुख को नहीं चाहता प्रत्युत दुःख से वचन के लिये सत्त्व प्रयत्न करना है। सुख का कामना एक दुःख से वचन की भावना यही बनलाता है कि सुख आत्म स्वरूप के अनुकूल है और दुःख प्रतिकूल। सुख की आत्म-स्वरूप के साथ अनुकूलता होने से यही परिणाम निकलता है कि सुख आत्मा का स्वरूप है दुःख उस (आत्मा) का स्वरूप नहीं है।

इसके अतिरिक्त जब मनुष्य आनन्द में मग्न होता है उसकी आत्मा प्रकटित हो उठती है अत्रिणास्ति वेग से बहने लगती है मग्न आत्मिक गतियाँ विषयित हो जाता है। आत्मिक गतियाँ के स्फुरित होने से शरीर की आकृति में भी परिवर्तन हो जाता है सुख में चतनता व सजीवता उपकृत लगती है शरीर रामाचित्र हो जाता है। इसके विपरीत मनुष्य के दुःखित होने पर उसकी आत्मा मकुचित हो जाती है आत्मिक गतियाँ निश्चित पड़ जाती है शरीर पर उदासीनता हो जाता है जड़ता

के लक्षण दिखलाई पड़न लगते हैं । दुःखित मनुष्य को इन लक्षणों से स्पष्ट है कि दुःख की भावना आत्मा का चतनता के विरुद्ध जड़ता का घोर लक्षण जाती है । यह अन्तः भौतिक पन्थ का गुण है और आत्मा के ज्ञान स्वरूप का घातक है इसलिये दुःख की भावना आत्मा का स्वरूप कदापि नष्ट हो सकती है । आनन्द की भावना का—जिसके हान से आत्मा प्रफुल्लित आत्मिक शक्ति का विकसित होता है—आत्म स्वरूप के साथ आत्मीयता है । आत्म स्वभाव के साथ आनन्द की आत्मीयता से स्पष्ट है कि आनन्द आत्मा का स्वभाव ही है ।

आनन्द भावना के स्वरूप को एक अर्थ दृष्टि से विचारने पर भी यही निष्कर्ष निकलता है । प्रत्येक मनुष्य सुख की कामना एवं उमकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न करता है । भिन्न भिन्न अवस्थाओं में भिन्न भिन्न वस्तुओं में सुख अनुभव करता है । उसके सुख का केन्द्र कभी एक वस्तु बनती है और कभी दूसरी । आनन्द का स्वरूप समझने के लिये मानव जीवन की भिन्न भिन्न अवस्थाओं की परीक्षा करना अनुचित न होगा ।

शान्त काल में शिशु माता की गोदी में लटा स्नान करता हुआ आनन्द में मग्न होता है । उसे किसी प्रकार की चिन्ता नहीं रहती । माता को स्नान से बचाने करता हुआ असीम आनन्द का अनुभव करता है । कुछ समय पश्चात् वह शिशु वाक्य अवस्था का प्राप्त होता है । वाक्य अवस्था में आने ही उसके आनन्द का केन्द्र माता की गोदी व स्नान से हटकर खिलौने में जा पहुँचता है । अनेक प्रकार के खिलौने में उसको आनन्द आता है समवयस्क बालिका के साथ खेलने में मुग्ध हो जाता है उसको न भोजन की सुख रहती है और न किसी अन्य वस्तु की ।

क्रमशः बालक बड़ा होता है । विशिष्ट जीवन में पर खलता है । पाठशाला में प्रवेश करता है । अन्य साथी छात्रों से पठन में होना लगाता है । परीक्षा में अल्प अंक से उत्तीर्ण होने पर पारितोषिक पाकर एसा

त होना है कि मानो उसको बहर का सिद्धांत ही है। वह जैसा उमकी पुस्तक के अध्ययन में प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार प्रवण करन पर उम बालक के अंतर्गत रहने से वह बह तब में स्थिर हो जाता है। जिस प्रकार वह दर ठंडके व्यवसाय चिन्ता होनी है सर्वांगी नौका के अंतर्गत से प्राप्त है। विविध तार के पदा को अपनात का विचार करता है। यह उम सुनाए कि जीवन में पदापण करत हा उम अंतर्गत से हटकर व्यवसाय की सफलता बन जाता है। इस प्रकार व्यवसाय में स्थिर कर प्रसन्न होता है। स्वयं उमार्ति इन उम सुन हा जाता है।

व्यवसाय में स्थिर होने ही व्यवसाय का श्रीर आकर्षित होता है। गह गहिणी बिना धूम्र प्राप्त होता है। उसका हृदय किमी उदर युवती से मिलन के लिये तैयार होता है। माता पिता उमय वधू साज कर धूम धाम से उत्सव करता है। नववधू के साथ आमोद प्रमोद में मगन रह कर म्हा का व्यवसाय करता है। इस प्रकार उस व्यक्ति का आनन्द के अंतर्गत से हट कर नव वधू में केंद्रित हो जाता है। कुछ दिनों में नववधू व सहवास व सम्पर्क में रहने के पश्चात् उसका अपना तन्त्र विच्छेदना गुण्य मालूम होता है। मन ही मन में ईश्वर व परा हट करने से पुत्र प्राप्ति के लिये प्रार्थना करता है। युवती के अंतर्गत ही पर वह पुत्र के जन्म त्वित की वडी उत्सुकता से प्रतीक्षा करता है। पर उमार्ति होने ही आनन्द में फूला नहीं समाता है। प्रसन्न होकर गुण का मुख चुम्बन करता हुआ स्वर्गीय आनन्द का व्यवसाय करता है। इस प्रकार नवविवाहित युवती ने हट कर उसके मुख का रंगि बन जाता है।

कुछ समय के पश्चात् उसे उम का केंद्र फिर बन जाता है। गृह स्त्री पुत्र धन प्राप्ति करने का आनन्द नहीं पाता है। जब उमका हृदय समाज में उम अंतर्गत करन के लिये तैयार होता है।

उठता है। उसका प्रभाव होता है कि सुख उच्च पद प्राप्त करने में हा
है। उच्च पद प्राप्त करने की इच्छा से सभा सासायटी में सम्मिलित
होता है म्यन्सिपल वाड कौंसिल आदि की मेम्बरी के लिये खड़ा होता
है, क्लब्स व मिनिटर से मिलता है ढाली देता है। कौंसिल आदि
का मेम्बर बनकर सर्कार द्वारा रायबहादुरी आदि का पद प्राप्त करके
फना नहीं समाता है। अपने को साधारण जनता से ऊँचा समझ कर
मन ही मन में प्रसन्न होता है। कितना ही समय तक यग की वृद्धि करने
वानी मेम्बरा सर्कारी पद आदि के उक्तर में पड़ा रहता है वृद्ध होने पर
मृत्यु का दृश्य नश्री के सामने आन गता है अब उसका हृदय सासायिक
विषी पण्य में नहीं लगता है भविष्य की चिन्ता आकर धरन लगती है।

उपरोक्ता अवस्थाओं पर दृष्टि डालने में प्रतीत होता है कि उम
व्यक्ति के सुख का केन्द्र सदैव बदलता रहता है। शालक काल में माता
की गाना व वायु अवस्था में खिलौने में छात्र अवस्था में पुस्तका में
यौवन अवस्था में धन सचय व पत्नी के सहवास में गृहस्थ अवस्था में
पुत्र उत्पत्ति व यग प्राप्ति में रहता है। इस प्रकार उम व्यक्ति के सुख
का केन्द्र कभी एक वस्तु में कभी दूसरी वस्तु में बदलता रहता है। इस
विषय में स्पष्ट है कि सुख न माता की गाने में है न खन खिलौना में
और न ही श्रय वस्तुओं में। य समस्त पण्य भौतिक है स्वयं सुख व
आनन्द से रहित है फिर कसे दुःखों का सुख दे सकता है। यह सुख की
भावना तो स्वयं मनुष्य में विद्यमान है। वह भ्रम से सुख कभा माता
की गाने में मानता व कभी खल खिलौना में और कभा श्रय वस्तुओं में।

मनुष्य भ्रम व मोह वृद्धि से कभी एक वस्तु को सुखदायक समझता
है और फिर उभी वस्तु का दुःखदायक मानने प्रगता है कभी एक ही वस्तु
का एक ही समय में दुःख और दुःखरे समय में सुखद अनुभव करता है।
सन् १९२२ में पहिले भारत के नागरिक विदेशी धारिक घटनीय भद
कील वस्था पर माहित व स्वदेशी वस्त्र एवं म्दर को धृणा की दृष्टि से

दबलत था। शिक्षित महिलायें चर्वा चलाने की जगली व गवारपन समझती थीं। महात्मा गांधी के भारतीय राजनतिक क्षत्र में अवनीण होत ही भारत की उच्च सम्य कोटि की जनता खद्दर को आदर की दृष्टि में देखन लगी, विदेगी सुन्दर बाराक वस्त्रो को बबल अपने शरीर म उतार कर ही नहीं फेंक दिया वरन् उनको अग्नि में भस्म कर डाला। श्रुतीन शिक्षित महिलायें चर्वा चलाने में अहोभाग्य समझने लगी। यह सब भद मनुष्य की दृष्टिकोण का ह। मुग न दार्शनिक विदेगी वस्त्र में ह और न स्वदेगी खद्दर में। यह मुग आनन्द तो स्वय मनुष्य की आत्मा में ह।

यह हृदय में अलाभाति प्रकित हो जान पर कि आनन्द वास्तु विसा वस्तु म नहा ह यह (आनन्द) ता स्वय उमरी अन्तस्थित आत्मा में विद्यमान ह, उस व्यक्ति का दृष्टिवाण विलुप्त वल्ल जाता ह। उसको सामारिक पदार्थों में सुख या दुख प्रनात नहीं होता ह मोह क्षीण हा जाता ह अम बुद्धि नष्ट हा जाती ह वास्तु पदार्थों को सम भाव से देखन लगता ह स्थितप्रज्ञ का अवस्था को प्राप्त हो जाता ह। पहिल दान वात में उसको शोक घाता था। अपन का उच्च समझ कर दूसरो का तिरस्कार करता था। दूसर व्यक्तिया का धन सम्पदा एव एश्वम देखकर उसके हृदय में ईर्ष्या का भाव उत्पन्न होता था। सुन्दर रमणियो क अवलाकन स काम लक्षणा जागत हा उठनी थी। व्यापार में प्रतिवागिता हान क कारण अन्ध व्यापारियों व प्रति द्वेषानि भडक उठनी थी। इस भाति धनक प्रकार की कुवृत्तिया लगातार अपना काय करती रहनी थी। दृष्टि काण में परिवर्तन हो जान पर साम्य भाव का साम्राज्य स्थापित हो जाता ह कुवृत्तिया नष्ट हा जाती ह उनके स्थान पर दया, क्षमा नम्रता, प्रम आन्तिशुभ प्रवृत्तिया उत्पन्न हो जाता ह। दुखित जीवा के दुख दूर करन में उसको आनन्द आन लगता ह। उसे प्राणी मात्र से प्रम हा जाता ह। प्रम का प्रवाह चारा आर वग म बहन लगता ह। उसका गह प्रम-बुटी बन जाता ह।

ज्या-ज्या उसकी कुवतिया नष्ट होती जाती है और उनके स्थान पर गम भावनाय व वृत्तिया अपना आधिपत्य स्थापित करती जाती है त्या-त्यो वह व्यक्ति अधिकाधिक आनन्द अनुभव करता है । जब वह व्यक्ति समाधि लगाकर अपने ज्ञान व आनन्द स्वरूप में मग्न होता है उस समय वह अनुपम अतीविक आनन्द का रसास्वादन करता है, उसकी आत्मिक जीवन शक्ति का बग के साथ संचार होता है । अन्त में एक ऐसी अनुपम अवस्था को प्राप्त होता है, जो दिव्य ज्ञान से आलोकित व दिव्य आनन्द से आनन्दित है । उपरोक्त विवचन में स्पष्ट है कि आनन्द आत्मा का स्वरूप है और आत्मा का यह आनन्द स्वरूप कथ्य अज्ञात कारणों से वन्दित व विद्वृत होकर आत्मा में सुख की कामना के रूप में प्रकटित होता है और यह सुख की कामना काम शोध आदि अनेक प्रकार के विभावों से रचित हुई निम्नलाई देनी है ।

(३) अनन्त शक्ति

मनुष्य के स्वरूप का विवचन करते हुए निश्चित किया जा चुका है कि मनुष्य के भीतर सकल्प शक्ति है । यह सकल्प शक्ति मनुष्य के भीतर लाइनमन के मदरा काय करती रहती है । जैसे लाइनमन के बन्द दवान ही विद्युत बग से तार पर दीडने लगती है मनीं जो अब तक बन्द पडी थी, चलन लगती है अनेक प्रकार का सामान तय्यार होन लगता है विद्युत का प्रकाश चारों ओर फल जाता है एवं चतुर्दिक फल हुए आश्चर्य का नाग हो जाता है । यही काय मनुष्य के अन्तगत सकल्प शक्ति का है । इस शक्ति के कमशील होने पर मनुष्य में जीवन का संचार होता है उसकी ज्ञान व कर्मशिया कम जगत में उद्यमशील होती है उसके हस्त पाद आदि अंग एवं समस्त शरीर सकल्प के अनुसार काय करन लगत है । इसी शक्ति के कारण मनुष्य अनेक वस्तुओं का भोग व उपभोग ग्रहण या त्याग करता है । इस सकल्प शक्ति के

अशक्त होने पर नेत्र आदि ज्ञानद्रिया अपना व्यापार कार्य बन्द कर देती हैं, हस्तपाद आदि अंगों में शिथिल होकर मृतवत् हो जाती हैं। एव मनुष्य निर्जीव सा प्रतीत होने लगता है। इस सकल्प शक्ति के पुन जागृत होने पर मनुष्य अनेक प्रकार के कार्य फिर करने लगता है। ससार में जितने महान पुरुष हुए हैं उनमें यह सकल्प शक्ति अधिक मात्रा में पाई जाती है। इस शक्ति के अधिक दृढ़ होने पर मनुष्य अनेक आपत्ति व बाधाओं को जीत कर महान पद को प्राप्त होता है।

इस सकल्प शक्ति के साथ-साथ मनुष्य में अन्य प्रकार की शक्तियाँ भी प्रतीत होती हैं। मनुष्य में साहस व पीरुष है जिसके कारण ही मनुष्य पुरुष कहलाता है और अनेक प्रकार के कठिन से कठिन कार्य कर डालता है। जिस मनुष्य में साहस व पीरुष की कमी है वह मनुष्य नहीं बरन् मनुषक है मर्द्दी के सदृश मत है। इस साहस व पीरुष के बल पर ही मनुष्य दिग्विजयी होता है ससार में अनेक प्रकार के महान कार्य करता है। सकल्प शक्ति व साहस के अत्यन्त दृढ़ होने पर मनुष्य काम क्रोध आदि अनुभवावस्था कुवृत्ति एव इन्द्रियो को दमन करके जितन्द्रिय वन सवर्ण व परमानन्द अवस्था को प्राप्त कर सकता है। इनसे ज्ञान होता है कि आत्मा में अनेक प्रकार की शक्तियाँ विद्यमान हैं।

जिस प्रकार सतत प्रयत्न करने पर ज्ञान का पूर्ण विकास व परमानन्द अवस्था की प्राप्ति होती है उसी प्रकार सतत प्रयत्न करने पर मनुष्य के अन्तर्गत शक्ति का भी पूर्ण विकास हो सकता है। इसलिये आत्मा की अनन्त शक्ति धुक्ने भी मानना होगा।

(४) आत्मा सचिदानन्द है

उपरोक्त अनुसंधान से यह निष्कर्ष निकलता है कि यह आत्मा स्वभाव रूप से ज्ञाता दृष्टा आनन्दमयी एव अनन्त शक्ति युक्त है।

दूसरे गणों में इस आत्मा के स्वभाव को सच्चिदानन्द स्वरूप कह सकते हैं^१। बुद्ध कारणों से (जिनका अनसंधान प्राण किया जावगा) आत्मा वा यह अनंत ज्ञान दान भ्रानन्^२ व वीर्य स्वरूप प्रावत हो रहा है।

^१ सच्चिदानन्द शब्द सत्+चित्+भ्रानन्द तीन शब्दों से मिलकर बना है। सत् का अर्थ सत्ता या अस्तित्व है। सत्ता आत्मा की वीर्य शक्ति का स्रोतक है। चित् का अर्थ चत^३ है, जिसमें आत्मा का ज्ञान दर्शन स्वरूप निहित है। इस प्रकार सच्चिदानन्द शब्द से आत्मा के पूरा स्वरूप का बोध होता है।

६—आत्मा का निवास स्थान

(१) तात्त्विक विवेचन

आत्मा का स्वरूप निगम हो जान के परवर्तुत् स्वरूप का दर्शन साधा होनी है कि आत्मा शरीर के किस भाग विषय में स्थित है ? आत्मा का क्या आकार है ? इस सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रकार के विचार हो सकने हैं —

(१) आत्मा एक अखण्ड अमूर्तिका पदार्थ है, जो शरीर के हृत्, मस्तिष्क आदि किसी भाग विषय में स्थित है और इन्हीं आकार में स्थान विषय के आकार जसा है या नष्ट हो जायेगा मुझे छाना कथन प्रमाण मात्र है जसा स्थिर रहकर यह आत्मा अन्तर्गत रहता प्राणिक पद रमता है एवं उससे अनेक प्रकार के कथन होते हैं ।

(२) आत्मा एक अखण्ड अमूर्तिका पदार्थ है, जो शरीर के सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त हो रहा है । इस आत्मा का आकार शरीर के आकार जसा है । जस मनुष्य का शरीर बाह्य आकार में अनेक दोषों के अन्तर्गत पर्यन्त बढ़ि करता जाता है उन्हीं आकार में आत्मा भी विस्तारित होता जाता है और उन्हीं आकार में आत्मा शरीर के निहित होने के कारण शरीर में स्थित होता जाता है उन्हीं प्रकार के आकार में व्याप्त आत्मा का अन्तर्गत होता जाता है ।

(३) आत्मा एक अखण्ड अमूर्तिका पदार्थ है, जो मनुष्य के सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त हो रहा है और शरीर के अन्तर्गत ही स्थित है । शरीर के बाहर ? तो क्या यह आत्मा बाह्य में स्थित है या अन्तर्गत ? समस्त ब्रह्मांड में व्याप्त है ।

आत्मा क रहन का स्थान बिनाप जानन क लिय मनुष्य के कार्यो का ध्यानपक्व दमना एव अन्वाक्षण करना होगा । जब कार्म व्यक्ति अपन किसी प्रिय जन की मूय सम्पत्ति बिनाग आत्मा किसी दुखद घटना का समाचार सुनता ह उम समय उस व्यक्ति को अत्यन्त मानसिक कष्ट पट्टुघता ह निगक काष्ण उसका मुख उन्मत्त हो जाना ह शरीर का लावण्य ब नज नष्ट हो जाता ह अगा म गिधिलता आ जाती ह शरार पीला पन जाता ह । यह व्यक्ति ऐसा लिखनाई देन लगता ह कि अस कई मास से रोग म पीडित हो । मानसिक दुख हान मे उसकी आत्मिक शक्तियाँ भी गिधिल पड जाती ह किनी भी काय करन क लिय उसका मन उत्साहित नहा होता उसकी दशा जन्वन हा जाती ह । उस व्यक्ति के दुखित होन का प्रभाव उसकी समस्त आत्मिक शक्ति मानसिक चष्टा एव शरीर के सम्पण अगा पर पडता ह ।

इमा प्रकार जब कोई व्यक्ति पत्र जन्म विपुल धन प्राप्ति आदि कोई सुखद समाचार सुनता ह उस समय वह अत्यन्त हर्षित हाता ह उसका मुखमडन प्रफलित हो उठता ह शरीर रोमाचित हो जाता ह हृदय में उत्साह बड़ जाता ह । आत्मिक शक्तियाँ विकसित हो जाती ह समस्त वायुमडल उसको आनन्दमय प्रदान हान लगता ह । इस भाति उम व्यक्ति के आनन्तित होन का प्रभाव उसके सम्पण शरीर के अगों पर पडता ह ।

इम प्रकार मुख या दुख देन वाग काय का प्रभाव आत्मा की प्रत्यक् शक्ति मानसिक चष्टा एव शरीर के प्रत्यक् भाग पर पडता ह । एसा प्रनीत नणी हाता कि इन कार्यो का प्रभाव केवल मस्तिष्क हृदय या अय किनी निश्चित स्थान पर ही पडता हो और अय स्थान प्रभावित न होने हा । उम घटना से—शरीर का प्रत्यक् भाग प्रभावित होता ह—प्रमाण होता ह कि आत्मा शरार के प्रत्यक् भाग में विद्यमान ह । सुखद या दुखद घटना का प्रभाव मस्तिष्क द्वारा आत्मा पर पडता ह जिसमे

शरीर के समस्त अंग प्रभावित होते हैं। शरीर रामाचित, मुख प्रफुल्लित, दय उत्साहित, आत्मिक शक्तिया विकसित या शरीर काचितहान मख लीन, हृदय निरसाहित, आत्मिक शक्तिया सकुचित होती है।

शरीर में पीडा हान के अनुभव से भी हमी परिणाम पर पहुँचा जाता कि आत्मा सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है। जब किसी व्यक्ति के किसी अंग में पीडा होती है फाड के पवन विच्छू आदि किसी विषय जंतु के टटन, शस्त्र आपात हान हनी आदि टूटन की तीव्र बदना हानी है तब तब ही उसका उस पीडा के कष्ट का अनुभव हान लगता है उसका माकुल हो उठता है। यदि किसी दूसरे व्यक्ति के शरीर में पीडा होती है और उससे व्यथित होकर रत्न भी करता हो तो उस पाडा का ज्ञान हान पर भी उसका विनाय प्रभाव प्रथम व्यक्ति पर नहा पडता है। यदि दूसरा व्यक्ति पुत्र आदि प्रिय जन है तो उसकी बदना का ज्ञान हान स प्रथम व्यक्ति के हृदय में दुःख अवश्य हाता है। परन्तु यह दुःख उस कष्ट के अनुभव से जो अपने शरीर में पीडा होने से होता है सवथा भिन्न प्रकार का है। अपने शरीर में पीडा हान से एक प्रकार के दुःख की सनसनी पीडा के स्थान विनाय पर हाती है। कभी कभी यह पीडा निवट जाती है अथवा अंग और कभी कभी सम्पूर्ण शरीर में हान लगती है। यह जानना भी कठिन हो जाता है कि शरीर के किस स्थान विनाय पर यह पाडा हा रही है।^१ जब अथ समीपवर्ती प्रिय व्यक्ति के शरीर में पीडा हान की सूचना प्रथम व्यक्ति का मिलती है उस समय उस दुःख समाचार से उसके (प्रथम व्यक्ति के) हृदय में मानसिक कष्ट अवश्य हाता है परन्तु उस प्रिय व्यक्ति के दुःख का सनसनी का कुछ भा अनुभव उसको नहीं होता है। शरीर के किसी भी भाग में पीडा हान से दुःख की सनसनी का विनाय प्रकार का अनुभव बनलाना है कि उम पीडित भाग में आत्मा

^१ इस प्रकार के अनुभव से प्रायः प्रत्येक व्यक्ति परिचित है।

विद्यमान ह । यह अनुभव शरीर के प्रत्येक भाग में हाता ह इसलिय कहना पड़ता ह कि आत्मा शरीर के प्रत्येक भाग में विद्यमान ह ।

यदि यह कहा जाव कि शरीर व उस पीडित स्थान में आत्मा का अस्तित्व नहीं ह आत्मा हृदय मस्तिष्क या अन्य किसी स्थान विशेष पर स्थित ह पीडा का ज्ञान शरीर के उस भाग में विद्यमान सूक्ष्म तन्तुओं द्वारा मस्तिष्क तक पहुचता ह और वहाँ से यह ज्ञान अत्य सूक्ष्म तन्तुओं द्वारा हृदय आदि आत्मा के रहने के स्थान विशेष तक पहुच जाता ह, जिससे आत्मा का दुख का मान होता ह आत्मा के दुखित होने से शरीर सबुचित व उदासीन हा जाता ह । एसी दशा में अपने शरीर में उत्पन्न पीडा का दुख उम मानसिक दुख के समान जाना चाहिये जा उसका उस समय होता ह जब वह अपने नती व सामने अपने प्रिय पुत्र के शरीर में शस्त्र के आघात से गहरा घाव देखता ह जिसकी वजह से पुत्र रुदन करता ह । प्रिय पुत्र के शस्त्र के आघात द्वारा अहम का चित्र एक वदना से रुदन के शरीर, उस व्यक्ति के मस्तिष्क आदि आत्मा के रहने के स्थान विशेष तक नत्र कण आदि इन्द्रिय एवं सत्यम्बन्धी सूक्ष्म तन्तुओं द्वारा पहुच जाते ह । एसी दशा में दोना प्रकार के दुख—अपने शरीर में उत्पन्न हुई पीडा का दुख व अपने प्रिय पुत्र की पीडा के ज्ञान से उत्पन्न हुआ मानसिक कष्ट—सबथा एक दूसरे के समान होने चाहिये । इनमें किसी प्रकार का अन्तर नहा हा सकता क्योंकि इन दोना दशाओं में निर्जीव स्थान की—प्रथम दशा में अपने निर्जीव शरीर का दूसरी दशा में अपने शरीर में पथक पुत्र शरीर की—पाडा का ज्ञान सूक्ष्म तन्तुओं (Nerves) द्वारा आत्मा को होता ह ।

अनुभव बतलाता ह कि इन दोना दशाओं का दुख एकसा नहीं ह । प्रथम दशा में अपने शरीर में पीडा होने से दुख की सवमानी का जा विशेष प्रकार का अनुभव हाता ह वह उम मानसिक कष्ट से—जो उसका दूसरी दशा में अपने प्रिय पुत्र की पाडा के ज्ञान से होता ह—सबथा भिन्न ह ।

अपने शरीर के किसी भी भाग में पीड़ा होने में उत्पन्न हुए विषय प्रकाश के दुःख की मनसनी के अनुभव से स्पष्ट है कि शरीर के उस भाग में कल्पित विद्यमान है। शरीर के किसी भी भाग में पीड़ा होने से इसी विषय प्रकाश के दुःख का मनसनी होती है। इसलिये यह मानना पड़ता है कि मनुष्य के मन में आत्मा व्याप्त है। इस अनुसंधान से प्रगट है कि आत्मा शरीर के मस्तिष्क हृदय या किमा अथवा विषय स्थान के अन्दर निहित नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है।

किसी व्यक्ति को अथवा प्रिय जन के शारीरिक कष्ट से केवल शारीरिक कष्ट होता है। यह मानसिक कष्ट उसी श्रेणी का कष्ट है, जो कि किसी व्यक्ति को अकस्मान्त अखिल धन सम्पत्ति के विनाश या किसी अन्य दुःख हासि से होता है। प्रिय जन की पीड़ा धन सम्पत्ति के विनाश से उस व्यक्ति को मानसिक कष्ट इस कारण होता है कि वह अपने कष्ट को उसको अपनी समझता है। यदि उन पणायों में सम्पत्ति का विनाश होता है तो इन बातों से उनको भी मानसिक कष्ट उत्पन्न न होता जसा कि किसी अपरिचित मनुष्य का कष्ट उत्पन्न होता है। इस सिद्धांत से स्पष्ट है कि मानसिक कष्ट का होना उस व्यक्ति की भावनाओं से होता है। भावनाओं का अस्तित्व भौतिक पणायों के अस्तित्व से उत्पन्न होता है। य भावनाओं केवल कार्यात्मक है। इस कारण से किसी व्यक्ति को अपरिचित मनुष्य की शारीरिक पीड़ा से किन्हीं कष्ट उत्पन्न नहीं होता है—प्रगट है कि प्रथम व्यक्ति की भावनाओं के अस्तित्व के अस्तित्व में विद्यमान नहीं है। इससे स्पष्ट होता है कि किसी व्यक्ति का कष्ट उसके शरीर से बाहर व्याप्त नहीं है।

इस अनुसंधान से यह निष्कर्ष निकलता है कि आत्मा एक अमूर्त धर्मिक पणाय है जो न मनुष्य शरीर में रहता है और न शरीर के किसी विशेष भाग में निहित है। यह आत्मा मनुष्य के सम्पूर्ण

में व्याप्त है उसका आकार भी मनुष्य शरीर के आकार मात्र है। जैसे शरीर की आकृति में बाल्य अवस्था से यौवन अवस्था पर्यन्त वृद्धि और यौवन अवस्था से मृत्यु पर्यन्त सकोच होता रहता है उसी प्रकार शरीर में व्याप्त आत्मा भी शरीर की वृद्धि के साथ-साथ विस्तारित एवं शरीर के सकोच के साथ सङ्कुचित होता रहता है।

(२) वैज्ञानिकों के मत

आत्मा के आकार व रङ्ग के स्थान विषय के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों ने बहुत ही अनुसंधान किया है, जिनमें से श्री मेहर (Maher) की सम्मति उद्धृत की जाती है। श्री मेहर अपनी मनोविज्ञान सम्बन्धी पुस्तक में लिखते हैं —

There has been much discussion among philosophers ancient and modern regarding the precise part of the body to be assigned as the 'Seat of the Soul'. Some located it in the heart others in the head others in various portions of the brain.

The hopeless conflicting state of opinion on the question would seem to be due to the erroneous but widely prevalent view that the simplicity of the Essence or Substance possessed by the soul is a special simplicity akin to that of a mathematical point. As a consequence fruitless efforts have continually been made to discover some general nerve centre some focus from which lines of communication radiate to all districts of the body. The indivisibility however of the soul, just as

that of intelligence and volition does not consist in the minuteness of the point. The soul is an immaterial energy. In scholastic phraseology it was described as present throughout the body, which it enlivens not circumscriptive but definitive.

The soul is present though in a non quantitative manner, throughout the whole body moreover it is so present everywhere in the entirety of its essence. In so far, as the material subject by the limits of which vital activity in general is defined and conditioned, increases or diminishes, the soul may be said in figurative language to experience virtual increase or diminution—an expansion or contraction—in the sphere and range of its forces but there is no real quantitative increase in the substance of the soul itself.

जिसका अनुवाद हिन्दी भाषा में निम्न प्रकार होता है —

“प्राचीन व वर्तमान काल के दार्शनिकों में इस विषय पर बड़ा बड़ा विवाद रहा है कि शरीर के किस भाग में आत्मा स्थित है। कुछ दार्शनिकों ने आत्मा के रहने का स्थान हृदय समझा था कुछ ने मस्तिष्क, कुछ ने मस्तिष्क के विभिन्न भाग। इस विषय में धारणा भेद का कारण यह प्रतीत होता है कि अधिकतर विद्वानों ने धर्म से यह समझ लिया था कि आत्म शक्ति की सरलता इस बात से है कि वह आकार में भी सूक्ष्म गणित के बिन्दु सदृश हो। इसका फल यह हुआ कि सतत निष्फल प्रयत्न इस बात के लिये किया गया कि शरीर के अन्दर एम किसी के स्थान का पता लगाया जावे, जिससे शरीर के भिन्न भिन्न भाग,

मक्षम तत्तुष्टा द्वारा सम्बन्धित हो। आत्मा की अचलता ज्ञान व सर्वव्यक्ति की अचलता व सत्ता आकार की सूक्ष्मता में नहीं है। आत्मा एक प्रभौतिक शक्ति है। विज्ञान व शब्दा में कहा जाता है कि आत्मा जिसमें शरीर में स्थित आती है सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है। यह शरीर को आकृत क्रिये हुए नहीं है वरन् शरीर में सीमित है। आत्मा सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है परन्तु मुख की दृष्टि में नहीं। शरीर के प्रत्येक भाग में वण शक्ति की धारण क्रिये हुए यह आत्मा विद्यमान है। यन् शरीर—जिसमें मनुष्य की शक्ति का प्रयोग सीमित है—वृद्धि या ह्रास होता है तो अनकारिक भाषा में कहा जा सकता है कि आत्मा में वृद्धि या ह्रास—उसके आकार व धारण क्षेत्र में विस्तार या संकोच—होता है। परन्तु वास्तव में आत्म रहस्य की भाषा में गुरुत्व की दृष्टि से कोई परिवर्तन नहीं होता।^१

^१ यह अल्लखनीय है कि आत्मा के आकार सम्बन्ध में प्राचीन यूनान व रोमवासियों का भी यही मत था कि आत्मा शरीर के आकार मात्र है और शरीर का वृद्धि व संकोच के साथ-साथ आत्मा का आकार भी विस्तारित या संकुचित होता रहता है। श्री जे० ड्रैपल (J W Draper) ने अपनी पुस्तक "दी कन्फ्लिक्ट बिटवीन रिलीजियन एंड साइन्स" (The Conflict between Religion and Science) में लिखा है 'The Pagan Greeks and Romans believed that the Spirit of man resembles his bodily form varying its appearance with his variations and growing with his growth' जिसका हिन्दी अनुवाद निम्न प्रकार होता है —

ईसाई धर्म की नै मानने वाले यूनान व रोमवासियों का यह विश्वास था कि मनुष्य की आत्मा का आकार शरीर के आकार मात्र है, शरीर में

शरीर में व्याप्त आत्मा का बोर्ड जग्युक्त दृष्टान्त इस प्राकृतिक जगत् में दिखाई नहीं देता है। इसका कारण यह है कि आत्मा सरल अल्प, अविभाजित, अमयुक्त पण्य है जब कि भौतिक पदार्थ समुक्त, विभाजित एवं इन्ध्रिय गम्य है। मानव समान वृद्धि व ह्रास से साधारणतः पदार्थ की मात्रा में वृद्धि व ह्रास की समभेदा है। आत्मा व आकार में वृद्धि या ह्रास से उसकी मात्रा में कोई अन्तर नहीं पड़ता है। उससे प्राण्य केवल आरण्य में विस्तरित या सङ्कुचित होने में है।

प्रकाश के दृष्टान्त से आत्मा के विस्तार व सङ्कोच को कुछ-कुछ समझा जा सकता है। जैसे कमरे में म्युक्त लम्प का प्रकाश उस कमरे में फैल कर कमरे के आकार मात्र ही जाता है। यदि वह लम्प किसी बड़े कमरे में रख दिया जाय तो उसका प्रकाश विस्तरित होकर बड़े कमरे के आकार मात्र ही जाता है और यदि वही लम्प किसी छोटे कमरे में रख लिया जावे तो उसका प्रकाश सङ्कुचित होकर छोटे कमरे के आकार मात्र रह जाता है। इसी प्रकार आत्मा उस शरीर में जन्म धारण करता है, उसी के आकार मात्र ही जाता है। यदि शरीर बड़ा होता है तो विस्तरित हो जाता है और यदि छोटा होता है, तो सङ्कुचित हो जाता है।

परिवर्तन व वृद्धि होने के साथ-साथ आत्मा के आकार में भी परिवर्तन व वृद्धि होता रहती है।

७—आत्मा का श्रमरत्व

(१) विज्ञानानुसार

आत्मा का स्वरूप निम्नलिखित प्रश्नों के पश्चात् यह जानना आवश्यक है कि जीव क्या है ? क्या किसी नश्वर को बनाया है ? शारीरिक मृत्यु के पश्चात् क्या आत्मा का विनाश हो जाता है ? क्या यह आत्मा श्रमर अविनाशी एवं अनन्त है ?

इन प्रश्नों का निम्नलिखित प्रश्नों के लिये श्रमर घटनाओं का अन्वेषण एवं परीक्षण करना होगा। इस अंग में जितने द्रव्य दत्त जाते हैं उनकी अवस्थाओं में सन्तुष्ट परिवर्तन होता रहता है परन्तु उन द्रव्यों के मूलतत्त्व का नाश कभी नहीं होता। स्वर्ण कभी लोह, कभी मुद्रिका कभी हार, कभी किसी अन्य सुन्दर वस्त्र के रूप में दृष्टिगोचर होता है कभी धातुओं सावजन आदि मिश्रण बनकर बाजार में धूमता है कभी तावा, लोहा आदि धातु व मृत्तिका आदि पदार्थों से मिश्रित हुआ भूगर्भ से निकलता है। इस प्रकार स्वर्ण पदार्थ की अवस्था में सन्तुष्ट परिवर्तन होता हुआ देखलाई देता है परन्तु इन अवस्थाओं में परिवर्तन होते हुए भी स्वर्ण अपने मूलतत्त्व स्वर्णत्व की वदोपि नहीं त्यागता है। यही दशा हाइड्रोजन (Hydrogen) आक्सीजन (Oxygen) गता की है। जब इन दोनों गता का परस्पर संयोग होकर समुक्त पदार्थ बनता है उस समय य जल का रूप धारण कर लेते हैं। ठंड के लगन पर यह जल जमकर बर्फ के रूप में परिणत हो जाता है। यही जल अग्नि आदि उष्ण पदार्थ की उष्णता पाकर वाष्प बन जाता है। यह भाप ठंड पाकर मघ के रूप में आवात में विचरती हुई निखलाई देती है। यही जल कार्बन (Car

bon) नाइट्रोजन (Nitrogen) आदि तत्वा के साथ मयुक्त होकर फलो के मधुर रस में परिवर्तित हो जाता है। य फल माप जाने पर मनुष्य के शरीर में प्रवाह करके रक्त, मज्जा आदि सप्त घातुओं में परिणत हो जाते हैं जिनसे शरीर की पुष्टि होती है। इस प्रकार यह हाइड्रोजन आक्सीजन आदि वायु अनेक रूप धारण करता है एवं अनेक वस्तुओं के रूप में दिखालाई देती है परन्तु नाना प्रकार के पदार्थों का रूप धारण करने हुए भी ये अपने मूलतत्त्व के स्वरूप को कदापि नहीं त्यागती है।

यही दशा जगत के अन्य पदार्थों की है प्रत्येक पदार्थ का अस्तित्व में सत्त्व परिवर्तन होता रहता है परन्तु किसी पदार्थ के मूलतत्त्व का विनाश कभी नहीं होता। पदार्थों की अस्तित्वों में निरन्तर परिवर्तन तथा उनके मूलतत्त्वों की अविनाशिता देखकर वैज्ञानिकों ने निम्नलिखित दो सिद्धान्त^१ स्थिर किए हैं —

(१) ससार में न किमी वस्तु का विनाश होता है न कोई वस्तु शून्य से उत्पन्न होती है।

(२) यद्यपि द्रव्य की अस्तित्व में सत्त्व परिवर्तन होता रहता है, तो भी उसके मूलतत्त्व का विनाश कभी नहीं होता।

आत्मा अमर सरल मूलतत्त्व है जिसकी पहिल निश्चित किया जा चुका है। यह मिश्रित या मयुक्त पदार्थ नहीं है न यह विभाजित किया जा सकता है। यदि उपरोक्त वैज्ञानिक सिद्धान्त आत्मतत्त्व पर लगाये

^१ ये सिद्धान्त अंग्रेजी भाषा में निम्न प्रकार हैं —

(1) Nothing is destructible, nor anything can be created out of nothing

(2) Though outer forms change, yet substance remains the same

जावें तो यह कहना पड़ता है कि आत्मा न कभी उत्पन्न हुआ है और न कभी उसका विनाश होगा। केवल इसकी धरमस्या में परिवर्तन होता रहेगा। इसमें शक्यता में यह कहा जा सकता है कि आत्मा धरमर अविनाशी मनतत्त्व है जिसका न अन्ति न अन्त।

(२) तात्त्विक विवेचन

जीव का बनान वाला कोई नहीं है

बैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार अन्वीक्षण करने से यही पता मिलता है कि हम आत्मा या बनान वाला कोई नहीं है। यह आत्मा स्वयं सिद्ध अन्ति वात से है और अन्त काल तक रहेगा। अन्त प्रकार से अन्तमान करने पर भी इसी परिणाम पर पहुँचा जाता है कि जीव का अन्त कोई नहीं है। यह आत्मा स्वयं सिद्ध अन्त अन्त है।

एक स्त्री के एक साथ दो पुत्र उत्पन्न होते हैं। ये दोनों बालक एक ही वातावरण में साथ-साथ रख जाते हैं। उनका पालन पोषण एकसा होता है। एकसा ही मन साथ-साथ खेलते हैं। माता पिता तथा अन्य अन्त का अन्त उनके साथ एकसा होता है। उनको एकसा ही शिक्षा दी जाती है। सांगणिक दो बालकों का पालन पोषण व शिक्षा आदि एकसा परिस्थिति में होती है। एक ही वातावरण में रहने व एकसा ही परिस्थिति में पालन किये जान पर भी इन दोनों बालकों के अन्त की अन्त चाल आग रूप रंग आदिमें अन्त पाया जाता है इनके अन्त भावना अन्त अन्त अन्त भी एकसा नहीं होता। एकसा परिस्थिति में पालन पोषण व शिक्षा किये जान पर भी इन बालकों में अन्त क्यों? इस अन्त का क्या कारण हो सकता है? बाह्य परिस्थिति एकसा होने से कोई बाह्य कारण इस अन्त का अन्तगोचर नहीं होता इसलिये इस अन्त का अन्त कोई अन्त गुप्त कारण मानना होगा। सदैम अन्त

स विचारने पर इस अन्तर के निम्नलिखित दो अत्यन्त कारण ही सके हैं —

(१) इन बान्वा के व्यक्तित्व का किसी बाह्य अदृश्य शक्ति या व्यक्ति न बनाया है और उसने बनाते हुए इन बान्वा के व्यक्तित्व में अन्तर कर दिया है। व्यक्तित्व में अन्तर होने से एतन्मा परिस्थिति में पोषित विय जान पर भी इतने गरीर के निमाण मानसिक चप्टा आदि में अन्तर हो जाता है। या

(२) इन बालका के गगर के अन्तस्थित जो आमायें हैं उनमें— एक सस्कार में विभिन्नतर हान के कारण एक ही बालावरण में पायित विय जान पर ना—गगर के निर्माण शक्ति मानसिक चप्टा आदि के विकास में अन्तर पड जाता है।

इन दो सम्भावित कारणों में से पहिल प्रथम कारण की समीक्षा करनी उचित होगा कि क्या किसी अदृश्य शक्ति या व्यक्ति न ही बान्वा का निर्माण किया है और निर्माण करते हुए इनके व्यक्तित्व में अन्तर कर दिया है ? प्राणियों का कर्ता किसी अदृश्य शक्ति को मान लेंगे तो कितनी ही बाधायें उपस्थित होती हैं जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं —

१ प्राणियों के बनाने में कर्ता या क्या प्रयाजन है ? बिना प्रयाजन के कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति किसी कार्य को नहीं करता है। तसा के अन्त प्राणियों का रचना का दुष्कर काय स्वल्प बुद्धि का काय नया हो सकता है। इसके विय अनन्त पान एक अनन्त सामध्य की आवश्यकता है। इसमें अतिरिक्त जब मनुष्य की आमा में सम्पूर्ण पत्तियों के जानने की शक्ति विद्यमान है ना इस आमा के बनाने वाल कर्ता में भा सम्पूर्ण पत्तियों के जानने की शक्ति अथवा सत्त्वा अत्यन्त होनी चाहिये। सबके कर्ता बिना काय को बिना विना प्रयाजन के कदापि नहीं करेगा। कोई उचित प्रयाजन सृष्टि या प्राण समाज की रचना का दक्षिणाकर नहीं होगा। निम्नलिखित दो प्रयाजन सृष्टि रचना के कह जा सकते हैं —

(क) सृष्टि रचना सबन कर्त्ता का स्वभाव है। यदि एसा माना जाय तो हममें केन्द्र भापत्तिया आता है। जो वस्तु उत्पन्न हात्री है उसका नाम भी अवश्य होता है। यह सिद्धान्त प्रष्ट है। इसकी सत्यता निर्विवादा सिद्ध है। समार के प्रत्येक पक्ष की अवस्था में परिवर्तन व प्रत्येक प्रटना इस सिद्धान्त की सत्यता को घोषित करती है। इसलिये हम सिद्धान्त की सत्यता के सम्बन्ध में अधिग्रहण करना व्यर्थ है। इस सिद्धान्त के अनुसार यह मानना होगा कि यदि उस सबन कर्त्ता का स्वभाव प्राणि समाज की रचना करना है तो उसका स्वभाव प्राणि-समाज का विनाश करना भी है अर्थात् उन सबन कर्त्ता का स्वभाव प्राणि-समाज का उत्पन्न व विनाश करना सिद्ध होता है।

समार में कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति किसी वस्तु का बनावट नष्ट नष्ट करता है। यदि बनाने के पश्चात् उस व्यक्ति को उस वस्तु के निर्माण में त्रुटि लिप्तनाई देना है तो वह उस त्रुटि को दूर करने के लिये उस वस्तु का तोड़ जानता है त्रुटि एक दूषण में मुक्त करके फिर उस वस्तु का निर्माण करता है। कर्त्ता की तुलना अज्ञानी मनुष्य के साथ इस विषय में नहीं की जा सकती। कर्त्ता सर्वज्ञ है सब वस्तुओं के स्वभाव व उनकी भिन्न भिन्न अवस्थाओं को पूर्णतया जानता है। ऐसे सबन कर्त्ता के कार्य में त्रुटि का हाना असम्भव है। किसी वस्तु का निर्माण करके फिर उसका नष्ट कर देना यह कार्य तो बालका की सीला के समान है। इस सीला में अज्ञानता की गंध आता है। सबन कर्त्ता का एसा स्वभाव नहीं हो सकता कि जिसमें अल्पज्ञता या अज्ञानता का सङ्काव हो। इसलिये प्राणि समाज की रचना सबन कर्त्ता का स्वभाव नहीं हो सकता।

(ख) दूसरा प्रयोजन सृष्टि रचना का यह कहा जा सकता है कि सबन कर्त्ता न मनुष्य पशु आदि प्राणि समाज की रचना अपना एवम् व सामर्थ्य दिखलाने के लिये की है। एसा मान लने में दो बाधाएँ उपस्थित होती हैं —

(घ) सबज कर्त्ता न अहंकार व अभिमान के दोष का आरापण होता ह । एक ऐसे व्यक्ति में—जो जगत के चर अचर समस्त पदार्थ अहंकार आदि समस्त भावनाओं के दोष व गुण का भलीभांति पूणतया जानता ह—अहंकार व अभिमान का दोष 'गोभा नहा नेता ।' इंगलिय मह प्रयोजन बुद्धि को अप्राप्त ह ।

(आ) अपना एतन्न व सामर्थ्य उस व्यक्ति का दिखलाया जाता ह कि जो इन विशपताओं (एतन्न व सामर्थ्य) का क्षमता में बराबरी या उच्चता का दावा करता ह । इस अवस्था में तो सधन कर्त्ता के अति रिक्त न कोई प्राणी ह (क्याकि प्राणिसमाज का उत्पन्न कर्त्ता का मान लेन में किसी प्राणी का अस्तित्व पहिले स स्थित नहीं रहता) न बराबरी न उच्चताका दावा करन वाला कोई व्यक्ति हा ह । एमी दशा में सामर्थ्य व ऐतन्न स्थिताना प्राणिसमाज के निमाण का प्रयोजन नहीं हा सनता । इसलिये कोई युक्तिमग्न हृदयग्राह्य प्रयोजन मष्टि रचन का प्रनीत नहीं हाता ।

२ दूसरा बाधा यह आती ह कि सवा कर्त्ता न प्राणिसमाज की रचना किस पदार्थ में की ह ? तय स अथवा अपन दिव्य शरीर स या किसी अय पदार्थ के अस्तित्व स जा पहिले स ही विद्यमान था ? यदि कहा जाने कि सब कर्त्ता न तय (पदार्थों के अभाव की दशा) स बनाया ता यह कथन बुद्धि असंगत ह । तय स किसी वस्तु का उत्पन्न होना विनाश के समस्त अनसंधान व विरुद्ध ह । विनाश के सिद्धान्त—'समार में किसी वस्तु का विनाश नहीं होना और न कोई वस्तु गुन्य से

'नोट—ऐसा मानने वाले प्रायः कर्त्ता व ईश्वर को अज्ञानरमयी भा मानते ह । अहंकारी व अभिमानी व्यक्ति अज्ञानरमयी नहीं हो सकता, अहंकार की भावना अज्ञान स्वल्प की घातक ह । इस हेतु से ईश्वर को जगतकर्त्ता मानने में उसके अज्ञान स्वरूप में भी बाधा पड़ती ह ।

उत्पन्न होती है — कि विवर्तन का स्पष्ट है कि शायद से कोई बन्तु उत्पन्न नहीं की जा सकती।

यदि कहा जावे कि उमर्त्ता न अपन दिव्य शरीर का शक्ति की रचना का है, तो इसका अर्थ यह होता है कि उस शक्ति का अपन दिव्य शरीर में से कुछ भाग को पथक करके मनुष्य प्राणी आदि प्राणियों के रूप में परिवर्तित कर दिया है। ऐसा मान लेने में बड़ी दूषण घाते हैं —

प्रथम दूषण यह आता है कि शक्ति ज्या-ज्या नये प्राणियों की रचना अपन दिव्य शरीर में से करता जावगा, त्या-त्या उसका दिव्य शरीर घटता जावगा। क्षीण ज्ञान होने तक तब तक आ जावगा कि उसके सम्पूर्ण दिव्य शरीर का ही विनाश हो जावगा। शरीर का विनाश होने ही उस शक्ति का विनाश तथा नवीन प्राणीगमाज की रचना का कार्य भी बन्द हो

ऐसा मानने वालों को उपराक्त विनाश से बचने के लिये यह कहना होगा कि जब मनुष्य आदि प्राणी मरते हैं, तो मरने के पश्चात् उनकी आत्मायें कर्त्ता के दिव्य आत्मिक शरीर में मिल जाती हैं, जिससे ब्रह्मा का दिव्य शरीर आसक्त बना रहता है। ऐसा मान लेने में कितनी ही बाधाएँ उपस्थित होना हैं। जिनमें से कुछ यह हैं —

जब उस सत्त्व-कर्त्ता न अपन दिव्य शरीर से अग पथक किये, तो इन अगधारी प्राणियों में अन्तर क्यों किया? क्या उनको अज्ञानी बनाया? मनुष्य आदि प्राणी जब मरकर वापिस आते हैं, तो क्या उनके कम संस्कार साथ लगे रहते हैं। यदि साथ लगे रहते हैं, तो मृत्यु के पश्चात् भाये हुए आत्मिक अग पथक-पथक रहेंगे सबका मिन नहीं जायेंगे। इस प्रकार उस दिव्य शरीरधारी कर्त्ता को ऐसे कम संस्कार यक्त भिन्न भिन्न अर्थों का समूह मानना होगा, उत्तरा शुद्ध स्वरूप नष्ट हो जावगा। यदि यह माना जावे कि मृत्यु के पश्चात् ये अग, कम संस्कारों से सबका मुक्त होकर एवं शब्द ब्रह्मा का प्राप्त होकर पहिल ही से विद्यमान शब्द दिव्य शरीर में मिन

जावगा । नये प्राणिया के उत्पन्न न हाने तथा पहिले प्राणियो के मृत्यु को प्राप्त हो जान से ससार प्राणीशय हो जावगा एव प्रलय सदब के लिय हो जावमी । यह परिणाम विद्यमान परिस्थिति क विरुद्ध होन स हृदय को अप्राप्त ह ।

तीतीय दूषण यह छाता ह कि एसा मान लन से उम कर्त्ता को भिन्न भिन्न अस्तित्व रखन वाल अनक प्रणैा का समूह मानना होगा । क्योकि किसी अम्वड द्रव्य का न भल किया जा सकता ह और न उसस पथक भाग । एसी र्णा में उम अनन्त गति अनन्त ज्ञान वाले कर्त्ता को भिन्न भिन्न स्वतंत्र अस्तित्व रखन वाल असख्यात कर्त्ताओ का समूह मानना होगा । दूसर शब्दा में यह कहा जा सकता ह कि अनन्त ज्ञान, अनन्त शक्ति युक्त कर्त्ता एक नहीं ह वरन एस अनन्त कर्त्ता ह । जितने कर्त्ता ह उतने ही प्राणी हो सकेंग । भिन्न भिन्न अस्तित्व रखने वाल अनन्त कर्त्ताओ क होने स उन सब का काय सदब एव ईसा नही होगा । उनके परस्पर कार्य में भेद क विराय होन के कारण कर्त्तत्व-काय ही बल हा जावेगा । इसके अनिम्बित एसी र्णा में कर्त्ता एव प्राणीसमाज में कोई अन्तर नहीं रहगा क्याकि प्रत्येक कर्त्ता ही प्राणी का रूप धारण कर लता है, इन कारणों से यह कथन—कर्त्ता अपन दिव्य गरीर में स प्राणीसमाज की रचना करता ह—मानन के अयोग्य ह ।

यदि यह कहा जावे कि उम अनन्त सामर्थ्य क अनन्त ज्ञान युक्त कर्त्ता का प्रतिबिम्ब कुछ विनाप भौतिक पदार्थों पर पडता ह या उससे कुछ विनाप पुद्गल परमाणु के पुज प्रभावित हो जान ह । जिस प्रकार सुय

जाते ह, तो प्रश्न उठता ह कि ये कम सस्कार नष्ट क्यों हो जाते ह ? उन प्राणियों को अपने कर्मों का फल क्यों नहीं मिलता ?

इस प्रकार अनेक वाधायें उठती ह, जिनका अधिक विवेचन करना असगत ह ।

अपन तेज व ज्योति से अय पदार्थों को तप्त व प्रकाशित करता है उसी प्रकार यह ब्रह्मा अपनी सामर्थ्य से बुद्ध चतन शक्ति भौतिक परमाणु या पदार्थों में प्रवेश करा देता है जिसके कारण इन भौतिक परमाणु या पदार्थों में चतनता आ जाती है और ये चतनता युक्त परमाणु या पदार्थ मनुष्य पक्षी आदि प्राणियों के रूप में दिखलाई देते हैं ।

यानिश्च शरीरों से प्रतीक्षण करने पर इस विवेचन के निम्नलिखित दो तात्पर्य हो सकते हैं —

(क) भौतिक पदार्थों में चतन शक्ति आ जाती है और ये चतन शक्ति युक्त पदार्थ मनुष्य पक्षी आदि प्राणीसमाज के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं । अथवा

(ख) भौतिक पदार्थों में चतनशक्ति तो वास्तव में नहीं आती है बसल उसका आभास पड़ता है । इस आभास के कारण ही हाड मांस आदि के बन हुए मनुष्य के शरीर में चतनता प्रतीत होती है । जब एक हाड मांस के बन हुए शरीरों पर उस दिव्य चतनमयी शक्ति का आभास पड़ता है तो यह आभास प्रत्यक्ष शरीर पर एकसा ही होना चाहिये फिर इन शरीरधारी मनुष्यों में इतना अन्तर क्यों ? इनमें भिन्न भिन्न प्रकार का ज्ञान एवं भावना क्यों ? इनके काम एक दूसरे से विभिन्न और कहीं-कहाँ विपरीत क्यों ? इन बातों का कोई सन्तोषप्रद उत्तर उपरोक्त बात मानने से नहीं मिलता है । इसके अतिरिक्त वास्तव में आभास का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है । इसका यह अर्थ होता है कि वास्तव में मनुष्य में ज्ञान ज्ञानद आदि कोई गुण नहीं है । ये गुण मनुष्य में बुद्धि अम के कारण ही दिखलाई देते हैं । यह परिणाम पूर्व में निश्चिन किया हुआ आभास स्वरूप के विलुप्त विपरीत है, इसलिये बुद्धि को अग्राह्य है ।

यदि पहिला तात्पर्य कहा जावे कि 'भौतिक पदार्थ में चतनशक्ति आ जाती है तो यह भी पूर्व निश्चिन सिद्धान्त— कोई वस्तु अपने स्वभाव

के विपरीत गुण को धारण नही कर सकती' —के विरुद्ध ह। जमे उष्ण स्वरूप अग्नि अपने स्वभाव के विपरीत गीनता का धारण नही कर सकती उसी प्रकार जड अचलन स्वरूप भौतिक पदार्थ ज्ञान आनन्दमय चतन्य स्वरूप के धारण करने में असमर्थ ह।

इसके अतिरिक्त उम सवन वर्ता के अलङ्कृत स्वरूप में से कोई अंग पथक नहीं हो सकता क्याकि चतन्यकि अलङ्कृत ह। यदि चतन्य शक्ति में से कुछ अंग का पथक होना मान लिया जावे, तो इसका परिणाम यह होगा कि उस सवन वर्ता की चतन्यशक्ति में से अंग धीर-धीर पथक होते जावेंगे और एक समय ऐसा आ जावगा कि स्वयं सवनवर्ता चतन्य शक्ति विहीन हो जावगा। इसलिये यह तात्पर्य भा बुद्धि को अप्राप्त ह। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट ह कि यह पदा सवनवर्ता का प्रतिद्वन्द्व कुछ पदार्थों पर पडता ह जिसे प्रभावित होकर व पदार्थ मनुष्य आदि प्राणियों का रूप धारण कर लेते हैं बुद्धि विरुद्ध और मानन के अयोग्य ह।

यदि यह कहा जाव कि एक दिव्य आत्मिक शक्ति का पुत्र सवनवर्ता से पथक पहिल ही से विद्यमान ह अनन्त सामर्थ्यवान वर्ता इस पुत्र में से प्राणीसमाज की रचना करता ह। एसी दशा में वर्ता के साथ-साथ प्रत्येक प्राणा का अस्तित्व पहिल ही से मान लिया जाना ह और यह वर्ता इन प्राणियों का बनाने वाला नहीं रहता ह वरन् उन सबके सामर्थ्यवान व्यक्ति का कार्य नियंत्रण व प्रवर्ध करन मात्र रह जाता ह।¹

इसके अतिरिक्त यह अंग स्वभाविक ही उठता ह कि दिव्य आत्मिक शक्ति का यह पुत्र अलङ्कृत दिव्य ह या बालु व परमाणु सदा पृथक-पृथक अणुओं का बना हुआ ह। यदि यह दिव्य आत्मिक शक्ति का पुत्र एक अलङ्कृत दिव्य ह, तो इसमें से कार्य भी अथ पथक नहीं किया जा सकता। बिना

¹ इस पर विचार क्या कोई कमफलदाता ह' शीघ्र अध्याय में किया जावगा।

किसी अंग के पृथक् हुए किसी भी प्राणी की रचना नहीं की जा सकती।

यदि त्रिभ्य आत्मिक शक्ति का यह पुत्र बालु सद्ग, पृथक्-पृथक् अंगों का बना हुआ है और एक एक अंग एक एक प्राणी का रूप धारण कर जाता है तो क्या ये सब अंग एकसं होंगे या हमें विभिन्नता होगी। यदि ये सब अंग एकसं हैं तो इनके धारण करने वाले प्राणी भी एक ही अंग हान चाहिये। यदि कर्त्ता ने बिना किसी कारण इन प्राणियों में अन्तर कर लिया है तो कर्त्ता में स्वच्छाचाग्नि अथाप अविवक अग्नि अनेक दोषों का आरोप होता है। ऐसे अनेक अवगुणों से युक्त व्यक्ति को सवन्वत्ता मानना बुद्धि के विरुद्ध है।

यदि ये अंग पहिल ही से विभिन्न हैं तो इस विभिन्नता का कारण क्या है? क्या यह विभिन्नता पूर्व सस्कारों के कारण है? यदि यह विभिन्नता पूर्व सस्कारों के कारण है तो इसका विचार उपरोक्त एक साथ उत्पन्न बालकों की परस्पर विभिन्नता के दूसरे सम्भावित कारण में किया जावेगा।

३ अदृश्य शक्ति का कर्त्ता मानने में तीसरी बाधा यह आती है कि कोई कर्त्ता इन्द्रियगोचर नहीं है अतएव उस कर्त्ता को अदृश्य एवं अमूर्तिक मानना होगा। यह जानने की उत्कण्ठा स्वयमेव उत्पन्न होती है कि अमूर्तिक कर्त्ता किस प्रकार प्राणीसमाज की रचना करता है? क्या वह कर्त्ता कारीगर की भाँति सृष्टिरचना का कार्य करता है? अथवा उसकी आशा या सत्कल्प के होते ही समस्त प्राणी समाज की रचना हो जाता है?

यदि यह कहा जावे कि वह कर्त्ता अपने अदृश्य हाथों से कारीगर की भाँति सत्कारों के प्राणियों की रचना करता है तो उस कर्त्ता का अपने आपको असदृश्य अदृश्य हस्ता में परिणत करना होगा क्योंकि यह जगत अनेक प्रकार के अगणित प्राणियों से भरा पड़ा है और इस जगत में प्रतिक्षण अमर्याद प्राणियों का उत्पन्न व विनाश होता रहता है। उस जगत कर्त्ता का अदृश्य अन्वय हो जाना हृदय की अप्राप्त प्रतीति होता है। दूसरी बात भी—कर्त्ता की आशा या सत्कल्प होते ही समस्त प्राणियों

का निर्माण हो जाना है और निःशक्ति अमर्याद जीवा की उत्पत्ति व विनाश के रूप में प्राणी समाज में परिवर्तन होता रहता है—ठीक नदीं मालम होती, क्योंकि कर्त्ता की शक्ति (या सत्त्व) व प्राणी समाज के निर्माण में कारण काय का श्रुतला का उचित हृदयग्राह्य सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता है ।

उपरोक्त वाधाधा के अतिरिक्त और भा कितना है वाधायें प्राणी समाज का रक्षयिता त्रिमी कर्त्ता का मानन में आती है । इन आपत्तियों के कारण, यही मानना पड़ता है कि प्राणी समाज का निर्मापक कोई कर्त्ता नहीं है । इसलिये उपरोक्त बालका म विभिन्नता का कारण दूसरा सम्भावित कारण ही मानना पड़गा अर्थात् इन बालका के शरीर के निर्माण, मनोवृत्ति आदि में विभिन्नता का कारण उनके विभिन्न पूर्व सस्कार हैं । इन इस दूसरे सम्भावित कारण—पूर्व विभिन्न सस्कार—की परीक्षा भा समुचित प्रकार करनी हागा ।

(३) पुनर्जन्म

यह पहिले ही निणय किया जा चुका है कि शक्तिरूप में मनस्त शीरो का स्वरूप एकमा ही है । अतएव यह मानना होगा कि इन बालका में विभिन्नता का कारण उनके पूर्व सस्कार अथवा कमफल की विभिन्नता ही है । पूर्व सस्कार (कमफल) म विभिन्नता उमी समय हा सकती है, जब कि इन दोनों बालका की आत्माय इस मनुष्य जन्म क्ष पद मनुष्य पाशु आदि किसी अन्य यानि में रही है और उस पूर्व यानि में भी भिन्न भिन्न प्रकार के कम किये हा । भिन्न-भिन्न प्रकार के कम किये बिना

‘किसी तीव्र द्वारा किये कम के फलस्वरूप जो प्रभाव उस जीव पर पडता है, उसको सस्कार कहा जाता है अतएव कमफल व सस्कार पर्यायवाची शब्द हैं ।

नहीं होना अतीत काल की अनादि भवस्या में जाकर लय हो जाता है।

इस अनुसंधान से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि जीव अनादि काल से है, इसका निर्माण कभी किसी कर्ता के द्वारा नहीं हुआ है यह जीव मनुष्य पशु पक्षी जलचर, कीट, पतंग आदि छाट-छाट जन्तु वक्ष आदि वनस्पति आदि अनेक योनियों में शरीर धारण करता हुआ घूमता चला आ रहा है भिन्न भिन्न प्रकार के कार्य करने में भिन्न भिन्न सस्कार उसकी आत्मा पर पड़ते हैं, भिन्न भिन्न सस्कारों के कारण भिन्न भिन्न योनियों में आगामी जीवन में उसकी मिलनी है इन्हीं भिन्न भिन्न सस्कारों के कारण आगामी जीवन में जीव के पाप विनाश भावना प्रवृत्ति शरीर निर्माण कायगुण आदि में अन्तर पड़ जाता है।

इस पुस्तक के मनोविज्ञान अनुसंधान समिति के अनुभव गायक अध्याय में क्या शारीरिक मृत्यु है जान पर मनुष्य का व्यक्ति चमत्कार

प्रसिद्ध वैज्ञानिक श्री जगदीशचन्द्र बसु (J C Bose) के अनुसंधानों से, यह सिद्ध हो गया है कि पशुओं के शरीर की भाँति, वक्षों में भी, सूक्ष्म तन्तु (Nerves System) होते हैं। इन्हीं के द्वारा, वे भोजन के रस को एक भाग से दूसरे भाग को पहुँचाते हैं। अन्य प्राणियों के समान वक्ष भी निद्रा लते हैं। जैसे किसी शस्त्र आघात से, पशु विह्वल हो जाता है, उसी प्रकार आघात से, वक्ष के सूक्ष्म तन्तुओं में क्षोभ (घबलता) उत्पन्न हो जाता है। जैसे मनुष्य शरीर में, विष के प्रवेश होने पर उसकी शारीरिक मृत्यु हो जाती है, उसी प्रकार वक्ष के सूक्ष्म तन्तुओं के भीतर, विष पहुँचा देने पर, वह वक्ष सूख जाता है, अर्थात् उसकी मृत्यु हो जाती है। वक्ष के सूक्ष्म तन्तुओं का, पशु शरीर में विद्यमान सूक्ष्म तन्तुओं के साथ सादृश्यता, इस बात को प्रमाणित करता है कि पशु में भी, पशु समाज के समान, जीव है। इसके अतिरिक्त, भारत के समस्त धर्म, पशुओं की भाँति, वक्षों में भी, जीव मानते हैं।

जाता है लघुगीपक में कितनी ही घटनाओं को—जिनकी सत्यता ब्रह्मज्ञानिक पद्धति से भलीभांति सिद्ध हो चुकी है—उत्पन्न किया गया है। इन घटनाओं की सत्यता से स्पष्ट है कि शारीरिक नाश होने पर आत्मा का नाश नहीं होता है बल्कि जीव अन्तर्गत यानि में जन्म ले लेता है।

जब जीव अनादि काल से है और मनुष्य, पशु आदि अनेक योनियों में अनादि काल से ही भ्रमण कर रहा है तो यह प्रतीत होता है कि इस जीव का विनाश आगामी काल में भी नहीं होगा किन्तु न किसी यानि या दगा में अवश्य विद्यमान रहेगा क्योंकि जीव की सत्ता का विनाश कर्ण बनाता कार्य हेतु दिखलाई नहीं देता है। इससे अतिरिक्त विज्ञान का नियम है एक मसार में भी प्रत्यक्ष देखा जाता है कि जो उत्पन्न होता है उसका नाश भी अवश्य होता है जिसका नाश होता है वह उत्पन्न भी अवश्य हुआ है। इसी प्रकार जो उत्पन्न नहीं हुआ है उसका नाश भी नहीं होगा। यह नियम अटल है इसकी सत्यता मसार का प्रत्यक्ष घटना में पाई जाती है। इसकी सत्यता जिस वस्तु पर चाहा घटित करके देख लो। उपरोक्त कथन से प्रमाणित होता है कि जीव अनेक योनियों के रूप में आवागमन करता हुआ अनादि काल से विद्यमान है और अनन्त काल तक रहेगा एक अनादि काल से ही कम सत्कारों में भ्रमण चला आता है।

—कर्म सिद्धान्त

(१) क्या कोई कर्म फलदाता है ?

जीव के सम्बन्ध में उपरोक्त ज्ञान हा जान पर यह जानन की स्वानावित उत्कटा गती ह कि प्राणा जा कम करना ह और जिनके अनुसार उस प्राणी में कुछ संस्कार पड जात हें इन संस्कारो का क्या स्वरूप हें ? य संस्कार कहा पर रहत ह ? किस प्रकार पडते ह ? इनके अनुसार जीव, एक यानि स दूसरी योनि में कस जाता ह ? जीव को उनके पूव कर्मों का फल कस मिलता ह ? इन प्रन्ना के उत्तर निम्न दो प्रकार से दिय जा सके ह —

(क) उन कुम्हार मिट्टी स घड का बनाना ह या घनी का निर्माता भिन्न भिन्न पुञ्जों को एकत्रित करके, उपयुक्त स्थानो में जाकर घनी का तय्यार कर देता ह उसी प्रकार एक विनोप चतन शक्ति (शिव) मनुष्य को उसके पूव कर्मनुसार फल देती ह एक योनि स दूसरी योनि में ले जाती ह माता क गम स लगाकर यौवनावस्था पयन्त पोषण करके, शरीर का निर्माण करती ह विविध प्रकार क एवय की सामग्री जुटाती ह या भाजन वस्त्र विहीन दशा में रखती हें जान क विकास क भावना स विभिन्नता उत्पन्न करती ह । साराण में मनुष्य जावन में जो अनक प्रकार के सुख दुख की घटनायें होनी रहनी ह उन समस्त घटना क कार्यों को उनके पूव कर्मों के फलानुसार वह विनोप चतन शक्ति करता रहती ह ।

(ख) मनुष्य जो कम करता ह उन कर्मों का फल तैव जाना, एक यानि स दूसरी यानि में ले जान वाली कर्त्त सन्य विनोप चतन शक्ति

(ईश्वर) नही है। ससार के अनन्त प्राणियों की अवस्थाओं में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है परन्तु उन अवस्थाओं में परिवर्तन करने वाला कोई चतन व्यक्ति नहीं होता उनमें परिवर्तन, स्वयं ही प्राकृतिक नियमों के अनुसार होता रहता है। जैसे जल का, घूप की उष्णता पाकर भाप बनकर आकाश में उड़ जाना, भाप का आकाश के शीत भाग में पहुँच कर झट-झट जलबिन्दुओं के रूप में परिवर्तित होकर मेघ के रूप में निश्चलता दिना फिर मेघ के भारी होना पर वर्षा के रूप में, पृथ्वी पर गिरना विजरी का धमकना गडगडाहट का घोर शब्द होना आदि अनन्त बातें हैं जिनका सचावर कोई चतन व्यक्ति नहीं है। यह सब घटनाओं का परिवर्तन प्राकृतिक नियमों के अनुसार स्वतः होता रहता है। हमी प्रचार मनुष्य को उसके पूर्व कृत कर्मों का फल देना वाला एक योनि से दूसरा योनि में जा जाने वाला माना के गभ्र में भ्रूण अवस्था से उगाकर जीवन अवस्था पयन्त शरीर की वृद्धि व निणय करन वाला एक जावन की श्रम का निश्चित करन वाला कोई श्रम विनाय चतन व्यक्ति नियन्ता नहीं है वरन् यह सब काम कुछ गूढ़ नियमों के अनुसार स्वयं ही होता है।

उपरोक्त प्रथम सिद्धांत पर—नया मनुष्य का कमफलदाता का विशय चतन व्यक्ति है—पहिल विचार करना उचित होगा। प्राणियों को उनके किय हुए कर्मों का अनुभार फल देने के बाय की तुलना म्याय धीन के काय से की जा सकती है। ससार में अनन्तानन्त प्राणी हैं। उन सब का उनके कमानुमार फल देने के लिय आवश्यक है कि यह समस्त प्राणी समाज के समस्त कार्यों की पूरी-पूरी सूचना एवं उन कार्यों के फल देने की पूरी-पूरी सामर्थ्य रखे। इसलिय कमफलदाता का सर्वज्ञ एवं अनन्त सामर्थ्यवान मानना होगा। किसी विनाय चतन व्यक्ति का सर्वज्ञ एवं अनन्त शक्ति युक्त कमफलदाता मानना में कितनी ही आपत्ति उपस्थित होती है जिनमें से कुछ नीचे दी जाती है —

(१) ऐसा विनाश चतन व्यक्ति दृष्टिगोचर नही होना इमलिय इम यक्ति को अदृश्य अमूर्तिक मानना होगा। यह बुद्धि में नही आता कि वह अमूर्तिक व्यक्ति किस प्रकार मनुष्य से मूर्तिक पदार्थ का बनाता होगा किस प्रकार माना क गर्भ में भ्रूण से उगाकर जीवन अवस्था पयन्त पोषित करता होगा धनधन्य भूषण आदि मूर्तिक पदार्थ का स्याग कराता होगा वस मनुष्य की भावना को गुम व अगुम प्रवृत्ति का शोर प्ररित करता होगा, वसे मनुष्य की ज्ञान शक्ति का विकास करता होगा आदि—

(२) उस विनाश चतन व्यक्ति का काय न्यायाधीश तुय बतलाया जाना ह। यह देखना = कि मनुष्य के दनिक कार्यों पर उस चतन व्यक्ति, कर्मफलाना के यायकाय की बहा तक छाप ह। न्यायाधीश का कतव्य है कि अपराधी को उसके अपराध अनुसार उचित दड दे। दड दन के बितन ही अभिप्राय होने ह परन्तु उन सब अभिप्राया का समावग निम्नलिखित दो अभिप्राया में हो जाता ह —

(क) अपराधी को उसके अपराध का एसा कठोर दड दिया जावे कि जिससे वह तथा अय व्यक्ति डर जावे और फिर उस प्रकार के अपराध करन का भाहस न करे।

(ख) अपराधी को उसके अपराध का लड इम प्रकार दिया जावे कि जिससे वह अपराधी मुधर जावे, उसका मनोवृत्ति में एसा परिवान हो जावे कि वह फिर अपराध करन की ओर प्रवत न हा।

प्रथम अभिप्राय की समीक्षा निम्न प्रकार की जा सकता ह —

मनुष्या को उनके पूव कृत कर्मों का फल इस प्रकार मिलता ह या नही कि जिससे व स्वय तथा मानव समाज एसा भयभात हो जावे कि वह भविष्य में पाप कार्य न करे। जब कोई मनुष्य चारा करता ह तो उस पर राय की ओर से अभियाग लगाया जाता ह। यह प्रमाणित होन पर कि उस व्यक्ति न चारी की ह न्यायाधीश उसको कारागार,

जुर्माना छानि का उपयुक्त दंड देता है। वह अपराधी व्यक्ति तथा अथ मनष्य यह जान जान है कि उस व्यक्ति न चोरी की थी, इसलिये उसको दंड मिला। चोरी का अपराध एक उसके फलस्वरूप दंड का ज्ञान होने में वह व्यक्ति एक माधारण जन समाज डर जाती है और चोरा करने का साहस नहीं करता है।

यदि किसी देश का शासक या न्यायाधीन किसी व्यक्ति को पकड़वा कर कारागार में डाल दे और उस पर न तो अभियोग लगाव न यत्नी प्रगट कर कि उसने क्या अपराध किया है। ऐसी दशा में जनता उस व्यक्ति का निर्दोष एवं उम्र शासन व न्यायाधीन का अत्याय स्वच्छा चारा समझगा। अपराध एवं उसके फलस्वरूप दंड का ज्ञान न होने में जनता कदापि उस अपराध के करने से नहीं डरगी। इसी प्रकार जब कोई व्यक्ति मनष्य यानि में जन्म लेता है और जन्म से ही नरहीन, अपराध शानि दूषित शरीर धारण करता है तो उस व्यक्ति उसके सम्बन्धी एवं उसके देशवासियों का यह ज्ञात नहा जाता है कि उस व्यक्ति के जीवन पूर्व जन्म में अमुक पाप कम किया था जिसके फलस्वरूप उसको इस जन्म में यह दूषित शरीर मिला है। इसी प्रकार जब किसी मनुष्य का शरीर में कुछ शानि रोग है तो उस व्यक्ति या अथ मनुष्य का यह ज्ञान नपा जाता है कि उसने अमुक अमुक पाप कम पव या इस जन्म में किया है जिनके फलस्वरूप उसके शरीर में कुछ शानि रोग हुआ है।

इस मानव समाज के किसी व्यक्ति को भी यह ज्ञान नहीं होता है कि इस मनुष्य यानि में अपहीनता आदि दोष जो जन्म से ही कितने मनष्यों में पाये जाते हैं या कुछ शानि रोग जो बाद में हो जाते हैं, उन दोषों का क्या सम्बन्ध उन मनुष्यों के पूर्व कृत कर्मों से है। इस सम्बन्ध का ज्ञान हुए बिना मानव समाज उन अज्ञान पाप कर्मों से किस प्रकार डर सकता है और वह उन पाप कर्मों को फिर क्या न करगा। हमसे स्पष्ट है कि यह देन का प्रथम अभिप्राय—मनुष्य को उसके पाप कम का ज्ञान कठोर

दंड दिया जावे कि जिससे वह स्वयं तथा मानव समाज ऐसा भयभीत हो जावे कि डरकर फिर उस पाप कम को न करे—मनुष्य के दैनिक कार्यों से नहीं पाया जाता है ।

इसके अतिरिक्त कभी-कभी यहाँ तक देखा जाता है कि धन मनुष्य, जो निबला पर अत्याचार व दूसरा की धन सम्पत्ति का अपहरण करत है स्वयं विपुल धन सम्पत्ति के स्वामी बन जाते हैं ससार में धनव प्रकार के सुख व एवयों को भोगत हैं, जाति से भी आदर पाते हैं । इतिहास के पृष्ठ ऐसे सक्डो पृष्ठों के जीवन चरित्र से रंग पड़ है जिनका प्रारम्भिक जीवन डाका डालन एवं दूसरा की धन सम्पत्ति को बलपूर्वक हरण करने में व्यतीत हुआ है, परन्तु अनुकूल परिस्थिति के प्राप्त होने ही बड़े-बड़े उच्च पद पर पहुँच गये हैं ।¹ इस विधान से स्पष्ट है कि प्राणियों का उावे पूव कृत कर्मों के फलस्वरूप दंड देने में उस विशेष चतन व्यक्ति कमपनदाता का डरान का उपरोक्त अभिप्राय कल्पि नहीं हो सकता ।

अब यह दवना है कि दंड देने के दूसरे अभिप्राय का—अपराध को दंड इस प्रकार दिया जावे कि जिससे उमकी मनावृत्ति एवम् उावे जावे कि वह पाप कम की ओर प्रवृत्त न हो—प्रभाय कहा तक उावे मानव समाज के व्यवहार में पाया जाता है । यदि मुधार करने का उावे है तो उस यायाधीन तुल्य विशय चतन व्यक्ति को कल्पि की एसी परिस्थिति, दंग गीनि जाति, परिवार म् के उत्पन्न कर कि जहा उत्पन्न होन से उसे उन्नति करने का

¹ इतिहास के बहुत से उदाहरणों में से एक उदाहरण देखा जाता है —

अमीरल्ला जो १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ में दिल्ली में (उत्तर-काम लूटना, डाका डालना या) का सर्दार था, उसे दंड देकर बन्धन बन गया और उसके शत्रु राज तक टोंट में मार दिया गया ।

मिल । बहुत स बान्धव एम देग जाति परिवार, तथा परिस्थिति में उत्पन्न होने ह कि जहां चोरी करना लूटना, डाका डानना मदिरा पीना मांस खाना आदि कतिमत काय अर्द्ध गमभ्र जान ह और उनका जीविका एस ही कार्यों पर निर्भर ह । भील भानू आदि वितनी ही जानियां हैं, जिनमें लूटना चोरी करना गिवार खानना आदि हीन कार्य अच्छे समझ जात ह । ये जातियां मनुष्य के प्राण ल लना भी बुरा नहीं समझती हैं । कुछ जानिया का नतिक अवस्था इतनी हीन ह कि उनमें चोरी करना आदि कतिमत काय बेचल प्रचलित ही नहीं, बरन् प्रशंसा की दृष्टि से देखे जाते ह । इन जानिया में कुमारा के विवाह उम्र समय तक नहीं होते हैं जब तक कि वे उपगवन अपराधो में जन की सजा पाट न पाये हो । गटीक, बसाई आदि वितनी ही जातिया ह जिनमें गाय बल, बकर आदि पशुओं की हत्या का व्यापार होता ह । कुछ देग इतन ठड य वप से ढके रहने ह कि वहा किंगी प्रकार की कृषि हा ही नहीं सकती ह । यहां के निवा मिया का मछली आदि जलचरा के गिवार पर ही निर्भर रहना पडता ह । बश्या आदि कुछ एमी बलिया ह कि जहा की परिस्थिति ब्यापार का व्यभिचार रूप ब्यावृत्ति के लिय विवग कर देती ह ।

कुछ देश जाति परिवार आदि की एमी परिस्थिति ह कि जहां नवजान गिशु धीर धीर अपन कुटुम्ब माता पिता भाई बहिन पडोसी व ग्राम वासियों के कार्यों को देखने-श्रवण तथा उनका अनुकरण करते-करत जाति के समस्त कुत्सित लस्कारो को ग्रहण कर लता ह । बडा होन पर सहज ही में जाति में प्रचलित मद्यपान चोरी आदि कतिमत कार्य को करन लगता ह । ये विचार कभी भी उत्पन्न नहीं होने ह कि धारी आदि काय अनुचित है । यह बद्धि में नहीं आता ह कि सबज कमफलदाता न इन भील, भानू आदि जाति, व परिवारो में उत्पन्न करके बालका का क्या सुधार किया । इन जातियो के कृतपित मातावरण में उत्पन्न होकर—जहां जन्म लन के कारण ही, इन बालका की प्रवृत्ति मद्यपान चोरी आदि पाप कार्यों में

होन लगता है—इनका अहित हुआ है। उस विनाश चतन व्यक्ति को एम देग, जाति, परिवार एव परिस्थिति में वातका को उत्पन्न करना चाहिये या कि जहा तम जन से, उन् अपनी आन्तरिक शक्तियों के विकास, ज्ञान उपाजन एव शुभ भावनाओं के प्रसार का पूरा-पूरा अवसर मिलना। इससे स्पष्ट है कि सवन कमफलदाता का दंड देने का अभिप्राय सुधारना कदापि नहा हा सकता।

इस प्रकार उस विशेष चतन व्यक्ति का काय यायाधीन तुल्य कदापि नहा है, क्योंकि दंड देने के दोना अभिप्रायो की—दंड को देखकर अपराधी एव जनता डर जाव, या दंड को पाकर अपराधी सुधर जाव—भलक मानव समाज के व्यवहार में तनिक भी दिखलाई नहा देती है।

(३) जो दंड देने की सामर्थ्य रखता है उसमें अपराध रोक्न की भी शक्ति हानी चाहिये। यदि किसी शासक में यह सामर्थ्य है कि डाकुओं के दल का उसके अपराध के दंड स्वरूप जल में बन्द अथवा प्राणदंड दे सकता है तो उस शासक में यह भी शक्ति होती है कि यदि उसको यह ज्ञान हो जाव कि डाकुओं का दल अमुक गह में अमुक समय पर डाका डालकर घन अपहरण एव गहवासियों की हत्या करगा तो डाका डालने से पहिल ही, उन डाकुओं के दल को पुलिस अथवा सना के द्वारा डाका डालन के पार अपराध करने से रोक् दे। कमफलदाता ईश्वर तो सबशक्तिमान दयालु सबज्ञ, अन्तर्यामी है। वह जानता है कि कौन अपराध करगा। उसे चाहिये कि अपराध करने वाल की भावना शूल दे अथवा उसके माग में एसी भडचनें उपस्थित कर दे कि जिससे वह अपराध करने में सफल न हो सके।

यदि वह अपराध करने वाले के इरादे को जानता है और अपराध रोक्न की सामर्थ्य भी रखता है परन्तु रोक्ता नही है अपराध करने देता है और फिर अपराध के फलस्वरूप दंड देता है तो उसका दयालु व न्यायी नही कहा जा सकता। उसको स्वच्छाचारी वतव्यविमुख कहना होगा।

(४) ससार में अनन्त जीव हैं। प्रत्येक जीव मन, वचन व शरीर द्वारा प्रति क्षण कष्ट व कष्ट काय करता रहता है। क्षण-क्षण की त्रिगुणों का इतिहास लिखना एक उतना फल देता यदि असम्भव नहीं तो अत्यन्त दुष्कर है। जब एक जीव के क्षण-क्षण के काय का व्यापार करना एक उतना फल देना इतना कठिन है, तो ससार के अनन्त जीवों का क्षण-क्षण त्रिगुणों का व्यापार करना एक उतना फल देना उस विषय चतुर व्यक्ति के नियम क्या सम्भव होगा? हमें अतिरिक्त ससार के अनन्त जीवों के क्षण-क्षण कर्मों के फल देने में लग रहने से उम विवेक चतुर व्यक्ति का चित्त कितना चिन्तित व व्यथित होगा और वह कम गान्धि आनन्द स्वर्ण म मन रत्न सुखेया? इन प्रश्नों का कोई सन्तोष प्रद उत्तर सम्भव नहीं आता।

उपरोक्त कारणों से उन सज्जनों को—जिनका यह धारणा है कि कोई विषय चतुर व्यक्ति कर्ता या ईश्वर जीवों का कम फल देता है—हम बात पर आना पड़ेगा कि उन विषय चतुर व्यक्ति न पहिल ही से कष्ट नियम इस जगत के लिए बना रखे हैं। उन नियमों के अनुसार प्रत्येक जीव को उसके किये हुए कर्मों का फल स्वतः मिलता रहता है। कमफल देने में वह सबसे चतुर व्यक्ति न अपना ज्ञान का प्रयोग में लाता है और न उसमें विचित्र भी चिन्तित व व्यथित होता है। वह तो ससार के समस्त पशु एवं उनको अवस्थाओं की पूणतया जानता हुआ सन्तुष्ट गान्धि व आनन्द म मन रत्न है।

यह पहिल ही निष्कर्ष हो चका है कि जीव अनादि काल से हैं और भिन्न भिन्न योनियों में कम करता हुआ भ्रमण कर रहा है। जब जीव एवं उसका कम करते रहना अनादि काल से चला आ रहा है तो उन नियमों का अस्तित्व—जिनके अनुसार जीवों का कम फल मिलता है—अनादि काल से ही मानना होगा। इस प्रकार इन नियमों का अस्तित्व अनादि काल से ही निश्चित होना है। एसा दृष्टा में इन नियमों के बनने का

न कोई समय ही निर्दिष्ट हो सकता है और न इनका बनाया वासा ही हो सकता है। यदि कोई सबल अनन्त सामर्थ्यवान् व्यक्ति है, तो वह कवन दृष्टा माता ही हो सकता है। कर्मफलना नहीं हो सकता। इन विवेचन से यही निर्दिष्ट होता है कि प्राणियों को उनके विषय हुए कर्मों का फल, वृद्ध गूढ़ नियमा के अनुसार म्वन मिल रहा है और इही गूढ़ नियमा के अनुसार प्राणी एक योनि द्वाडकर दूसरी योनि धारण करता है।

(२) सिद्धान्तिक विवेचन

(क) कर्म फल देने वाली शक्ति स्वयं प्राणी के भीतर सूक्ष्म शरीर के रूप में विद्यमान है

यह निराय है जान पर कि प्राणियों को उनके कर्मों का फल किसी अन्य विषय के तन गति, व्यक्ति नियन्ता या ईश्वर के द्वारा नहीं मिलता है वरन् वृद्ध गूढ़ नियमा के अनुसार स्वतः मिल रहा है, उन गूढ़ नियमा का पता लगाना अत्यन्त आवश्यक है। इनके नाश हो जा पर मगार का रहस्य एवं मानुषिक जीवन की अनर समस्याधा का समाधा विन ही प्राण में हो जावगा।

प्रायः मनुष्या का उनके कर्मों का फल उनकी इच्छानुसार ही प्रत्युत इच्छा के विरुद्ध ही मिलता है। जब कोई व्यक्ति श्राद इच्छा के वगीमत होकर अस्वाम्यकर भोजन करता है तो उसके शरीर में व्याधि उत्पन्न हो जाती है। वह व्यक्ति उस व्याधि का तनिक भी अच्युक्त नहीं है। उनके अच्युत ही है कि उसके शरीर में का व्याधि उत्पन्न न हो, परन्तु स्वाम्य विरुद्ध, अनर भोजन करत का फल व्याधि के रूप में, उसका शरीर इच्छा के विरुद्ध भाग्य ही पत्रा है। एडा प्रकार मनुष्य का शरीर कर्मों का फल अर, इच्छा के न जान हुए भा भाग्य ही पत्रा

ह। इससे प्रगट होता है कि कमफल देने वाले नियम एक प्रकार की शक्ति (Energy) के रूप में है, जो मनुष्य की इच्छा व मानुषिक (आत्मिक अथवा शारीरिक) शक्ति के विरुद्ध होते हुए भी, अपना काय करते रहते हैं। यदि यह कमफल देने वाले नियम शक्ति के रूप में न होता यह नियम मनुष्य की इच्छा एवं शक्ति के विरुद्ध होना पर, अपना काय के सम्पादन में कदापि समय नहीं हो सकता। इसलिये यही मानना पड़ता है कि यह कमफल देने वाले नियम शक्ति (Energy) के रूप में है। यह शक्ति न तो चतन है और न किसी चतन व्यक्ति में केन्द्रित होकर काय कर रही है जसा कि पहिले अध्याय में निश्चय किया जा चुका है। इसलिये इस शक्ति को अचेतन ही मानना पड़ेगा।

अब यह प्रश्न उठता है कि यह कमफल देने वाली शक्ति कहा रहती है? किस स्थान विषय पर केन्द्रित है? मनुष्य के भीतर केन्द्रित है या बाहर?

संसार में अनन्तानन्त जीव हैं, जो इस जगत के भिन्न भिन्न भागों में भिन्न भिन्न योनियों को धारण किये हुए भिन्न भिन्न प्रकार का काय करते रहते हैं। कमफल देने वाली शक्ति मनुष्य से बाहर किसी अन्य विषय चतन व्यक्ति नियन्ता या ईश्वर में केन्द्रित नहीं है (जसा कि अभी निश्चय किया जा चुका है)। यह ब्रह्म में नहीं आता है कि यह कमफल देने वाला अचेतन शक्ति (Energy) प्राणियों के शरीर से बाहर आकाश या जगत के किसी अन्य स्थान पर केन्द्रित होकर भिन्न भिन्न स्थानों के निवासी अनेक योनियों के धारक भिन्न भिन्न जीवों को भिन्न भिन्न कार्यों का भिन्न भिन्न फल देती हो। यह देखा जाता है कि प्राणियों व काय प्रायः भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं कोई व्यक्ति शुभ भावना से प्रेरित होकर परोपकार का काय कर रहा है उसी समय दूसरा व्यक्ति लोभकषाय के बन्धन में हुआ किसी अन्य मनुष्य के धन अपहरण के काय में लगा हुआ है। इस प्रकार एक ही समय में, भिन्न भिन्न व्यक्ति भिन्न

भिन्न प्रकार के कार्य कर रहे हैं। कभी-कभी तो कुछ व्यक्तियों के कार्य परस्पर एक दूसरे के पणतया विरोधी होते हैं, जैसे एक व्यक्ति किसी पशु के साथ क्रूरता का बर्तन करता है उसी समय दूसरा व्यक्ति उसी दयव्य ग्रन्थ पशु के साथ दया का बर्तन करता है। इन दोनों व्यक्तियों के कार्य परस्पर एक दूसरे से विरोधी हैं। असलिय इन दोनों व्यक्तियों से परस्पर विरोधी कार्य कराने वाली शक्ति भी एक दूसरे से भिन्न होनी चाहिए। ऐसी दशा में वह कमफल देने वाली अचतन शक्ति बिना एक दिग्गम स्थान पर केन्द्रित रहकर अपने परस्पर विरोध रूप कार्य करती है। इससे यही अनुमान होता है कि यह कमफल देने वाला शक्ति शक्ति शक्ति से बाहर किसी स्थान पर केन्द्रित नहीं है। वरन् प्रत्येक प्राणी के भीतर स्वयं विद्यमान है। जिस प्रकार जीव, शक्ति रूप से समान होने हुए भी भिन्न भिन्न हैं उसी प्रकार यह कमफल देने वाली शक्ति एक ही शक्ति हुए भी प्रत्येक प्राणी में भिन्न भिन्न है।

जाना की शरीर वृद्धि पर विचार करने में भी यही निश्चित होता है कि कमफल देने वाली शक्ति स्वयं मनुष्य के भीतर विद्यमान है। जो शक्तियाँ बाहर से कार्य करती हैं, वे विवास के रूप में वृद्धि नहीं कर सकती। वायु में गमन प्रिया होने से एक प्रकार की शक्ति है जो बालू को उठाकर उसका ढेर लगा देती है। यह वायु की शक्ति पहिले धाड़ी बालू का स्तर (सह) लगाती है फिर उसके ऊपर बालू का दूसरा स्तर रखती है। इस प्रकार बालू का स्तर एक के ऊपर दूसरा रखत रखत ढेर हो जाता है। जनप्रवाह के बग में एक प्रकार की शक्ति होती है। प्रायः देखा जाता है कि जन प्रवाह सन्धिका मृत्तिका का एक ऊँचा विस्तरित चौरम ढेर लगा देता है। जल प्रवाह मृत्तिका को बहाकर लाता है अपन प्रवाह के बग से एक क्षीर किनारे पर मृत्तिका का विस्तरित परन्तु पतला स्तर लगा देता है। उसी नदी का दूसरा प्रवाह उमा क्षीर किनारे पर पहिला मृत्तिका के स्तर के ऊपर मृत्तिका का दूसरा स्तर लगा देता है। धीरे

घर कितन ही एक ऊपर दूसरे स्तर मिलकर एक ऊँच विस्तारित चौरस ढर का रूप धारण कर लेता है। वायु गमन, जल प्रवाह वगैरे के मदद जितनी भी वास्तु शक्तियाँ शानी हैं यदि वे किसी वस्तु को बनाती हैं, तो पहिले उस वस्तु के घाट से धरा का एकत्रित करती हैं फिर धीरे धीरे उस वस्तु के अन्य धरा को उसी पहिले स्थान पर संचय करके उस वस्तु का निर्माण करती हैं।

इसी प्रकार राज जब मकान बनाता है तो उसको इतने एक व ऊपर दूसरा रखनी हाना है। कारीगर को किसी मशीन व बनाने में पुर्जे ऊपर नाच रखन होना है। इस प्रकार जितनी भी वास्तु शक्तन या श्रुतन शक्तियाँ कार्य करती हैं व बाहर से ऊपर नाच या वगैरे में रखकर वस्तु का निर्माण करती हैं व बाह्य शक्तियाँ अंदर से विकास रूप में वृद्धि करन हुये किमी वस्तु का निर्माण नहा करती हैं।

मनुष्य शरीर की वृद्धि पर विचार कीजिये। माता के गर्भाशय में पिता का बीज व माता का रज परस्पर सम्मिश्रण होनपर कलन (organism) की अवस्था में परिवर्तित हो जाता है यह कलन, वृद्धि करता करता ध्रुव दशा को प्राप्ति होता है। नवमास पश्चात् यह ध्रुव माता के गर्भ से निकल कर छाट से शिशु का रूप धारण कर लेता है। शिशु धीरे धीरे वृद्धि करता हुआ बीस पच्चीस वर्ष में नवयुवक बन जाता है। यह वृद्धि कलन के भीतर न होती है। कलन धार धीरे परन्तु उगतार अन्दर से धारा धोर को बढ़ता है ध्रुव की अवस्था धारण करके धीरे धीरे उमक भीतर से हस्त पात् शक्ति इन्द्रिया का विकास होता है। ध्रुव वृद्धि करता करता माता के गर्भ से निकलकर शिशु बन जाता है। विकास के रूप में शिशु का प्रत्येक ध्रुव सब धार का उचित ढंग से वृद्धि करता हुआ नवयुवक का रूप धारण कर लेता है। कलन व शिशु की विकास रूप में वृद्धि इस बात को बनाती है कि वृद्धि करन वाला शक्ति उसके भीतर विद्यमान है। यदि यह वृद्धि करन वाली शक्ति कलन से बाहर किमी स्थान पर वृद्धि

होगी, तो इस प्रकार विकास के रूप में वृद्धि कलक का नवयुवक अवस्था तक कदापि नहा पहुँचानी। इस अवीक्षण से इस परिणाम पर पहुँचा जाना है कि कर्मफल देनेवाली शक्ति प्रत्येक प्राणी के अन्दर स्वयं विद्यमान है, किसी बाह्य स्थान पर केन्द्रित नहीं है।

यह ज्ञात हो जाना पर कि कर्मफल देनेवाली शक्ति मनुष्य के भीतर रहती है यह जानना शय रह जाँता है कि यह शक्ति मनुष्य के अन्दर किस स्थान विशेष पर केन्द्रित रहती है? इसका आधार क्या है? यह शक्ति मनुष्य के भीतर उसकी आत्मा अथवा भौतिक स्थूल या सूक्ष्म शरीर में केन्द्रित है? कोई शक्ति बिना किसी आधार के विद्यमान नहीं रहती है। उष्णता विद्यत आकर्षण प्रकाश आदि जिनका शक्तियाँ (Energies) हैं उनके आधार प्राकृतिक स्थूल या सूक्ष्म पदार्थ होते हैं। उन्हीं के सहार ये शक्तियाँ एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँच जाती हैं। इसलिये इस कर्म फल देनेवाली शक्ति का भी कोई आधार, मनुष्य के भीतर अवश्य होना चाहिये।

इस कर्म फल देने वाला शक्ति का आधार मनुष्य के भीतर क्या आत्मा नहीं हो सकता क्योंकि आत्मा का स्वभाव ज्ञान व ज्ञानान्मया है और कर्म फल देनेवाली शक्ति का कार्य उस आत्मा के ज्ञान, ज्ञानद आदि गुणों को आच्छादित व विकृत करना है जिसके कारण ज्ञान स्वरूप आत्मा मनुष्य के भीतर अज्ञानी बन जाता है एवं उसका शान्ति आनन्दमय स्वरूप विकृत होकर रागद्वेष आदि अनेक प्रकार की भावनाओं के रूप में प्रदर्शित होता है। इस भाँति कर्म फल देनेवाली शक्ति का वाय आत्मा के ज्ञान ज्ञानदमयी स्वरूप को आच्छादित व विकृत करके अज्ञान व वासना युक्त बनाता है। अतः कर्म फल देनेवाली शक्ति का स्वभाव आत्मा के ज्ञान ज्ञानद स्वरूप के नितान्त विपरीत एवं विरोधी है। यह पूर्व ही निश्चित किया जा चुका है कि कोई भी वस्तु, शान्त उष्णता के समान परस्पर विरोधी गुणों को एक ही साथ धारण नहीं कर सकती है। इतना

इस विवरण से इस परिणाम पर पटुचा जाता है कि कम फल देने वाली शक्ति के आधार पुद्गल के सूक्ष्म परमाणु ह और ये सूक्ष्म परमाणु आत्मा के साथ, प्रत्येक दशा में रहते ह। आत्मा, शरीर के किसी भाग में वन्दित नहीं ह, वरन् सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त ह। इसलिये कमफल देने वाली शक्ति के आधार, सूक्ष्म परमाणुओं का भी आत्मा के साथ साथ उस प्राणी के सम्पूर्ण शरीर में ही, व्याप्त मानना होगा। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि कम फल देने की शक्ति धारक सूक्ष्म परमाणु सूक्ष्म शरीर के रूप में आत्मा के साथ साथ, रहते ह।

इसके अतिरिक्त उपरोक्त विषय पर जब विचार किया जाता है कि आत्मा सा अत्यन्त अमूर्तिक, सूक्ष्म पदार्थ किस प्रकार स्थूल भौतिक शरीर में बधित व सीमित ह तो हृदय से ध्वनि निकलती है कि आत्मा स अमूर्तिक पदार्थ को, शरीर से स्थूल भौतिक पदार्थ में सीमित रखने के लिए कोई न कोई सूक्ष्म शरीर सूक्ष्म भौतिक परमाणुओं का बना हुआ होना चाहिये। इस अनुमान से भी, उपरोक्त अनुसंधान से निश्चिन किये हुए परिणाम की पुष्टि होती ह।

सुगमता की दृष्टि से 'कम फल देनेवाली शक्ति' को 'कम शक्ति' कम फल देने वाली शक्ति के धारी परमाणुओं को 'कम परमाणु' या 'कर्म', कम फल देने की शक्तियुक्त परमाणुओं के समूह सक्षम शरीर को 'सूक्ष्म शरीर' या 'कार्माण शरीर' के नाम से लिखना उचित होगा।

(ग) कमफल किस प्रकार मिलता है ?

इस सूक्ष्म शरीर को प्राणी के द्वारा किये गये समस्त पूरे कर्मों के फल देने की शक्ति से युक्त सूक्ष्म पुद्गल परमाणुओं का पुत्र मानना होगा। इसी सूक्ष्म या कार्माण शरीर को एक योनि से दूसरी योनि में ले जाना वाला माता के गर्भ में कलल से भ्रूण भ्रूण से शिशु, युवक व वृद्ध करने वाला शरीर सम्बन्धी अन्य बातें निर्धारित करने वाला, आत्मा की पूर्ण

गान शक्ति जो आवत करके अज्ञानी एव अल्पज्ञ बनाने वाला, आत्मा व शुद्ध आनन्दस्वरूप का विद्वृत करके वाम त्रास आदि भावना में परिणत करने वाला आदि मानना होगा।

यह मानने से कि मनुष्य द्वारा विद्यमान समस्त पूव कमों के फल देने वाली शक्ति इस सूक्ष्म कार्माण शरीर में निहित है, यह निष्पत्ति निकलता है कि मनुष्य को जब उसके किसी पूव कम का फल मिल जाता है, तो उस कम से सम्बन्धित इस कार्माण शरीर के परमाणु कम फल देने की शक्ति से विह्वल हो जाते हैं। कम शक्ति न विहीन होकर इन कम परमाणुओं की दशा साधारण परमाणु सदृश हो जाती है। साधारण परमाणु सदृश हो जाने से इनका सम्बन्ध सूक्ष्म कार्माण शरीर से छूट जाता है एव उससे पृथक् हो जाते हैं। इसी प्रकार मनुष्य जब नवीन कम करता है तो उस कम के अनुसार फल देने वाली शक्ति, कुछ नवीन महम परमाणुओं में उत्पन्न हो जाती है और ये कम शक्ति युक्त परमाणु, उस मनुष्य के पूव से विद्यमान सूक्ष्म कार्माण शरीर में प्रवेश करके सम्मिलित व सम्बन्धित हो जाते हैं।

उपरोक्त बात को दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जब दो पदार्थों के परस्पर सघर्षण से उष्णता शक्ति उत्पन्न हो जाती है जो कुछ समय तक स्थिर रह कर आकाश में लुप्त हो जाती है, या जैसे सिर के कर्णों में सेलूलोयड (Celluloid) का कटा करके से कथ में आकर्षण शक्ति उत्पन्न हो जाती है जिसके कारण, वह कथा रुई के बारीक तंतुओं को आकर्षित करने लगता है। यह शक्ति कुछ समय तक उस कथ में रहती है और फिर नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार जब कोई व्यक्ति मन बचन या शरीर से कोई कार्य करता है तो उसके समापवर्ती चारों ओर के सूक्ष्म परमाणुओं में हलन चरण क्रिया उत्पन्न हो जाती है। य पर

विज्ञान के आविष्कार 'बतार के तार' (Wireless Telegraphy)

माणु आत्मा की ओर आकर्षित होत है, उनमें उस व्यक्ति क कर्मनुसार फल देने की शक्ति उत्पन्न हो जाता है। इन कर्म शक्ति युक्त परमाणुओं का, एक क्षत्रावगाह (एक क्षेत्र में रहने वाला) सम्बन्ध आत्मा के साथ हो जाता है एवं ये कर्मशक्तियुक्त परमाणु पूर्व से विद्यमान सूक्ष्म शरीर में सम्मिलित हो जाते हैं। बृद्ध समय पश्चात्, जब ये कर्म परमाणु बाधा विवृत होने हैं तो उनका प्रभाव उस व्यक्ति पर पतन लगता है, उसकी मनोवृत्ति में अन्तर पड़ जाता है, राग द्वेष काम शोक रूप भावना हो जाती है। पान दान के विकास में परिवर्तन हो जाता है उनके शरीर की गति स्थिर जाती है बाह्य पदार्थों के सदाग होना से वह सुख या दुःख अनुभव करने लगता है। इस प्रकार उन व्यक्ति को, अपने पूर्व कर्मों का फल मिलने लगता है। जब इन कर्म परमाणुओं की कर्म शक्ति काय भरत भरत समाप्त हो जाती है तो ये कर्म परमाणु कर्मशक्ति विहीन हो जाते हैं एवं इनका सम्बन्ध आत्मा तथा सूक्ष्म कार्माणु शरीर से छूट जाता है।

उपरोक्त बातें जान लन पर यह जानना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि प्राणियों के विचार वचन या शरीर द्वारा काय करण से कौन-सी विनायता है कि जिससे सूक्ष्म परमाणुओं में कर्मफल देने वाली शक्ति उत्पन्न हो जाती है और जिससे ये कर्म शक्ति युक्त परमाणु आत्मा के साथ सम्बन्धित हो जाते हैं। इस विनायता को जानने के नियम विचार, वचन या शरीर द्वारा किन्हीं द्वय काय का सूक्ष्म दृष्टि से अनुवीक्षण

रेडियो आदि के काय से निर्विवाद सिद्ध है, कि जब कोई काय करता है, तो उसके समीपवर्ती वायुमण्डल में हलन चलन क्रिया उत्पन्न हो जाती है और उससे उत्पन्न लहरें चारों ओर की दूरत दूर तक फल जाती हैं। इन्हीं लहरों के पहुँचने से शब्द, बिना तार के रेडियो द्वारा, एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँच जाता है।



(२) विचारना जानना, अनुभव करना—य सब ज्ञान के स्थांतर ह ज्ञान आत्मा का स्वरूप ह । यह पूरा ही सिद्ध किया जा चुका ह कि प्रत्येक व्यक्ति शक्ति रूप स सबज्ञ ह । आत्मा की यह पूरा ज्ञान शक्ति कर्म परमाणुओं के समूह मध्यमाणा शरीर से आच्छादित होकर वितन ही शरीर में अभ्यक्त हो गई ह जिसके कारण मनष्य शरीर एवम् अभ्यक्त शक्तित्वात् देना ह । आत्मस्वभाव ज्ञान के कारण ज्ञान स कोई भी काय आत्मस्वभाव के विपरीत सम्पादन नहीं हो सकता, न कोई शक्ति ही उभर विरुद्ध उत्पन्न हो सकती ह जैसे अग्नि का स्वभाव उष्ण ज्ञान के कारण उष्णता स अपन स्वरूप विरुद्ध शीतलता उत्पन्न नहीं हो सकती है । कर्म शक्ति का काय आत्मा की ज्ञान आनंद आदि शक्तियों का आच्छादन एव आघात करना ह, इसलिये कर्म शक्ति आत्म-स्वरूप ज्ञान से उत्पन्न नहीं हो सकती ।

इस प्रकार काय के तीन अंशों में से प्रथम दो अंश—हृत्-चक्षुः मान श्रिया एव विचारन मात्र श्रिया—से कर्म शक्ति उत्पन्न नहीं होती ह इसलिये काय के तृतीय अंश भावना का ही कर्म शक्ति का उत्पादक माना होगा । इस विवेचन से यह परिणाम निकलता ह कि मन, वचन या शरीर द्वारा काय करन के समय किसी व्यक्ति की रागद्वेष काम, शत्रु मत् लाभ परोपकार दया आदि भावनाओं म से जती भावना होती ह उसी भावना के अनुसार समीपवर्ती सूक्ष्म परमाणुओं में कर्म फल देन वाली शक्ति उत्पन्न हो जाती ह । भावनाएँ अनेक प्रकार की होती ह इसलिये कर्म परमाणुओं में भी विभिन्न प्रकार के कर्म फल देने वाली शक्ति इसी प्रकार उत्पन्न हो जाती ह जैसे गडियों द्वारा ब्राह्मणों के करन पर, शत्रु वितन प्रकार क होत ह उन्हीं के अनुसार वायुमंडल की संहार म विभिन्नता उत्पन्न हो जाती ह जिसके द्वारा शत्रु संहार मील तक उमा दशा में पहुँच जाते हैं ।

इन कर्म परमाणुओं का एक क्षत्रावगाह (एक ही स्थान में रहन

(५) माण—उस व्यक्ति की आत्मा कम परमाणुओं के समूह कार्मणि शरीर से बढ़ ह उन समस्त कम परमाणुओं के समूह सूक्ष्म कार्मणि शरीर से सबधा मुक्त हो जाना ।

इन कम परमाणुओं के समूह कार्मणि शरीर न ही मनुष्य की आत्मा को, बचन में कर रखा है । इही कम परमाणुओं ने जीव के वास्तविक स्वरूप अनन्त ज्ञान दान असीम आनन्द एव अनन्त शक्ति को प्रकट कर सत्ता आच्छादित कर रखा ह, जिसके कारण अनन्त ज्ञान दान व शक्ति मनुष्य आत्मा प्राणियों में आच्छादित होकर अल्प ज्ञान, दान व शक्ति के रूप में दिखाई देती ह तथा आत्मा वा मुख शान्ति स्वरूप विवृत होकर रागद्वेष आदि भावना के रूप में प्रदग्नि होता ह । मृत्यु हान पर इन्ही कम परमाणुओं वा सूक्ष्म कार्मणि शरीर मनुष्य की आत्मा को दूसरी यानि भ ल जाता ह । इन्ही कम परमाणुओं की शक्ति व कारण जीव नवीन शरीर धारण करता ह एव धीर धीर वृद्धि करता हुआ शिशु, बाल्य युवा व बद्ध अवस्था तक पहुंचता ह । यही कम शक्ति जीव की आयु निर्धारित करती ह एव उसकी आयु पर्यन्त स्थिर रखती ह । यनी कम शक्ति मनुष्य शरीर को सबन सुगठित स्वस्थ आत्मा सुन्दर अथवा निर्मल, रागी आदि कुरूप बनाती है । इसी कम शक्ति के कारण वाह्य पदार्थों का संयोग हाता ह, जिनके कारण, मनुष्य मुख, दुरा अनुभव करता ह । इस प्रकार इन कम शक्ति द्वारा, मनुष्य के जीवन सम्बन्धी अनव बातें निर्धारित होती ह ।

मनुष्य जब भोजन करता ह, तो वह भोजन आमाशय में जाकर पाचन क्रिया द्वारा रक्त मास, आदि सप्त धातुओं में परिवर्तित हो जाता ह और उगवा फालतु धातु मूत्र, मूत्र के रूप में, शरीर से बाहर निकल जाता है । उसी प्रकार जब मनुष्य मन बचन वा शरीर द्वारा कोई काय करता ह, तो उसकी भावना अनुसार समीपवर्ती सूक्ष्म परमाणुओं में, कम शक्ति अनव प्रकार की उत्पन्न हो जाती है । इन विभिन्न कम शक्ति युक्त

परमाणुओं का मुख्यतया निम्न लिखित आठ भन्ना में विभक्त किया जा सकता है —

(१) ज्ञानावरणीयकम^१—कम शक्तियुक्त परमाणुओं में से वरमाण जिन्होंने आत्मा के समस्त पदार्थ के पूणतया ज्ञान की शक्ति का इन प्रकार आच्छादित कर दिया है जिस प्रकार मेघ पटल सूर्य प्रकाश को आच्छादित कर देता है। जितना जितना मेघपटल का आवरण अधिक होता है उतना ही सूर्य का प्रकाश कम दिखलाई देता है। जितना आवरण हल्का होता है उतना ही प्रकाश अधिक आता है। यही दशा ज्ञानावरण को आवृत करने वाले ज्ञानावरणीय कम की है, जितना आवरण इस कम का अधिक होगा उतना ही ज्ञान मनुष्य में कम दिखलाई देगा और जितना आवरण इस कम का हल्का होगा उतना ही अधिक ज्ञान उसमें पाया जावेगा।

(२) दशनावरणाय^१ कम—कम शक्तियुक्त परमाणुओं में से वे कम परमाणु जिन्होंने आत्मा के अनन्त दशान् स्वरूप को ढक लिया है जिसके कारण, आत्मा के समस्त पदार्थों के भवतत्त्व की शक्ति आवृत होकर साधारण अवलोकन मात्र प्राणियों में पायी जाती है दशान् गुण के सीमित ज्ञान से ज्ञान प्राप्ति का द्वार बन्द हो जाता है इस कम की तुलना शासक के उम डधोनीवान के साथ की जा सकती है, जो शासक के साथ निमा व्यक्ति के मिलन में अटकन डालता है। यदि डधोनीवान उस व्यक्ति का छन्दर जान की आज्ञा न दे तो वह शासक से नहीं मिल सकता है। यही दशा दशनावरणीय (दशान् पर आवरण करने वाले) कम की है।

^१ ज्ञानावरणीय कम, दशनावरणीय कम, मोहनीय कम, अन्तराय कम, नाम कम, गोत्र कम आयु कम बदनीय कम, धाति व अधाति कम शब्दों का प्रयोग जन दशान् ने उपरोक्त अर्थ में किया है और इनका आशय भी स्पष्ट है इसलिये इन शब्दों का प्रयोग, यहाँ पर भी किया गया है।

(३) मोहनीय^१ कर्म—यम शक्तियुक्त परमाणुशरीर में से व परमाणु जिन्होंने आत्मा के शक्ति सुख स्वभाव का विकृत करके मोह उत्पन्न कर लिया है जिसके कारण यह शक्ति, ज्ञानन्दमय स्वरूप विकृत होकर काम क्रोध रागद्वेष, प्रेम परापकार आदि भिन्न भिन्न भावनाओं के रूप में प्रकटित होता है। इस मोहनीय कर्म की दशा मदिता के समान है। उस मदिता बुद्धिमान व्यक्ति की बुद्धि भ्रष्ट करके मूढ़ एवं बसुंध बना देता है जिससे उसकी विवेक बुद्धि नष्ट हो जाती है। भाता वहिन व पत्नी में अन्तर नहीं समझता है उसी प्रकार यह कर्म आत्मा के सुख शान्तिमय स्वभाव को विकृत करके, उसमें मोह उत्पन्न कर देता है जिसके कारण आत्मा अपने स्वरूप को भूल जाता है, अपने स्वरूप से सबका भिन्न (अपने) शरीर एवं शरीर पुत्र आदि चेतन गृह, भूमि धन धान्य आदि अचतन पदार्थों में ममत्व बुद्धि धारण करता है। उनका अपना समझता है एवं पोषित करता है। समार के मध्य में पड़ता है जिसके कारण काम क्रोध आदि अनेक प्रकार की भावनाएँ उत्पन्न होती हैं।

(४) अन्तराय^१ कर्म—कर्म शक्ति युक्त परमाणुशरीरों में से व परमाणु जो ज्ञान, दान व ज्ञानन्द स्वरूप के अतिरिक्त आत्मा के शरीर प्रकार के सामर्थ्य को प्रकट नहीं करने देते हैं। उनकी वीर्य शक्ति के प्रकट होने में अन्तराय का कार्य करते हैं। इस कर्म के कारण आत्मा का सामर्थ्य केवल कुछ शरीरों में प्रतिभासित होता है। मनुष्य में सबल्य शक्ति साहस वीरता आदि का अधिकता या युनता इस कर्म पर निर्भर है।

उपरोक्त ज्ञानावरणीय, यशनावरणाय, मोहनीय अन्तराय चार कर्मोंको धार्मिक कर्म के नाम से पुकार सकते हैं क्योंकि इनमें आत्मा का वास्तविक स्वरूप घात होता है जिसके कारण आत्मा का अनन्त ज्ञान

^१ मोहनीय, अन्तराय शब्दों के सम्बन्ध में पिछले पृष्ठ के फुटनोट को देखो—

गन व वीथ आश्चर्यादित होकर कुछ अंगा में प्रगट होता ह एव आत्मा
 1 शान्त आनन्द स्वरूप विवृत होकर काम, श्रौच आदि अनक भावनाघ्रा
 ः रूप म प्रर्णित होता है ।

(५) नामकम¹—कमशक्तियुक्त परमाणुघ्रा में से व परमाणु
 तेनका काय जीव को एव यानि स दूसरा योनि में ल जाना ह । जिस
 कमशक्ति से युक्त हुआ आत्मा शारीरिक मत्यु होने पर वर्तमान शरीर
 का छोडकर दूसरी यानि में समस्त सचित कम परमाणुघ्रा के उपयुक्त
 उत्पत्ति स्थान की आर आनवित होकर इस भाति चला जाता ह जैसे
 चुम्बक की आवरण शक्ति द्वारा खिचकर लाहा उसकी ओर चला जाना
 ह । जिस कमशक्ति स युक्त हुआ आत्मा गभ में पहुच कर कलल, भ्रूण
 अवस्थाआ में होता हुआ शिणु के रूप में जम लता ह फिर विकास के
 रूप में वडि करता-करता बालक युवा अवस्थाओ में हाता हुआ बड दगा
 का प्राप्त होता ह । साराण में व कम परमाणु जिनसे जीव की योनि
 एव उम यानि सम्बधी शरीर का अनक प्रकार की बनावट निद्वित
 हाती ह । इस कम की दगा उस चित्रकार क सदश = जो मनुष्य पशु
 आदि प्राणिया के नाना प्रकार के चित्र खाचना ह जिनको अनक नामा
 स प्रकार जाता ह ।

(६) भोचकम¹—कमशक्ति परमाणुघ्रा में से वे परमाणु जो
 जीव की—जब वह किसी योनि म जम लता ह—स्विति को निर्धा
 रित करता ह जिसक कारण वह जीव ऐसे दगा जाति परिवार गोत्र
 आदि में उत्पन्न होता ह कि जहा उत्पन्न होने के कारण ही वह उच्च या
 नीच समभा जाता ह या व कम परमाणु—जा जीवन में उसके आचरण
 अनुसार—ऊँच नीच का बोध कराते ह ।

¹ नाम, गोत्र आय, वेदनीय कम के सम्बध में फुटनोट पृष्ठ ११०
 पर देखो ।

(७) आयुवर्म^१—य कर्म परमाणु जो जाव की आगामी यानि क तिय आयु निश्चिन करते ^२ जिनके कारण प्राणी उस योनि में प्राप्त हुए शरीर में बंद रहता ह । आयुवर्म क समाप्त होन पर प्राणी उस विन्ध्य योनि का त्याग कर उपरोक्त नाम कर्म के अनुसार आगामी यानि में चला जाता ह एव जाकर जन्म धारण कर जाता ह ।

(८) वेदनीयकर्म^१—य कर्म परमाणु जिनके कारण मनुष्य पशु घाति प्राणियों को, भोजन वस्त्र आदि आवश्यक सामग्री प्राप्त होती ह जिनके कारण मनुष्य को विपुल धन सम्पत्ति नाना प्रकार के वाहन आदि एवम अथवा भोग विलास के सामान का सयोग होता ह या उसको धन हीन दीन अवस्था प्राप्त होती ह जिसमें रहन स, वह व्यक्ति सुख या दुख की बदना का अनुभव करता ह या जिसके कारण उमवा शरार स्वस्थ या रोग व्याधि मुक्त हाता ह जिससे उस मनुष्य को मुक्त या दुःख का अनुभव होता ह ।

उपरोक्त नाम, गोत्र आयु वेदनीय चार कर्मों का अघाति^१ कर्म क नाम से पुकार सकते ह क्योंकि इनसे आत्मा क वास्तविक स्वरूप का आधान आवरण या विचार का उत्पन्न नहोता परन्तु इनसे प्राणिया की भिन्न भिन्न योनि, भिन्न भिन्न अवस्थायें एव परिस्थिति निर्धारित हाती ह जिस परिस्थिति म जीव क रहन के कारण ही उपरोक्त घातिकर्म (जानवरणीय, दानावरणीय, माहनीय व अन्तराय) अपना कार्य कर सक्ते ह ।

^१ आयु, वेदनीय कर्म के सम्बन्ध में फटनोट पृष्ठ ११० पर देखो ।

अघाति कर्म—अघाति दो शब्द अ+घाति से बना ह “अ” का अर्थ सङ्कृत भाषा में नहीं या किंचित होता ह, यह^२ ६२ ‘अ’ से तात्पर्य किंचित का ह । अतः अघाति कर्म का अर्थ किंचित घात करन वाला कर्म होता ह ।

उपरोक्त कम परमाणुमा के आठ भेदों के वर्णन से स्पष्ट है कि माना वरणीय दानावरणीय व अन्तराय कर्मों से आत्मा के मान दान एवं वाय स्वाभाविक गुणा को आच्छादित कर रखा है, जिनके कारण मनुष्य में किंचित ज्ञान दान व सामर्थ्य पाया जाता है। मोहनीय कम ने आत्मा के मान्त ध्यान स्वरूपको विवृत कर दिया है जो विवृत होकर काम शोध आदि भावनामा के रूप में दिखलाई देता है। नाम कम से जीव एक योगि से दूसरी योगि में जाता है। एक उमके शरीर आदि का निर्माण होता है। मात्र कम से ऐसी परिस्थिति में उत्पन्न होता है या ऐसा आचरण करता है जिसके कारण उच्च या नीच समझा जाता है। आयु कम से आयु नियत होती है। अदनीय कम से सुख या दुःख की सामग्री का संयोग स्वस्थ या अस्वस्थ शरीर प्राप्त होता है।

इन कम हुए कर्मों की दाना मन्त्रि के सुख है। जब कोई व्यक्ति मद्यपान करता है तो कुछ समय पश्चात् उमका नगा चढ़ जाता है जिससे उसकी बुद्धि भ्रष्ट होकर भ्रम रूप हो जाती है और वह व्यक्ति अनेक प्रकार के रीति एवं अनुचित काय करता है। ठीक यही दशा इन कम हुए कर्मों की है। अघत के कुछ समय पश्चात् ये कम कार्यान्वित होत हैं अर्थात् इनका फल मिलन लगता है। उस समय इनका प्रभाव मनुष्य पर पड़ता है। उसकी स्वच्छ बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है काम शोध आदि रूप उसकी भावना हो जाती है जिसके कारिभूत हुआ वह अनेक प्रकार के रीति एवं अनुचित काय करता है बाह्य पदार्थों में ममत्व धारण करके किसी से प्रेम और किसी से द्वेष करता है आदि आदि।

य कम किसी व्यक्ति को स्वया पसा कोठारी के समान तो नहीं देते हैं वरन् उसके प्राप्त या अप्राप्त हान में कारण होते हैं। प्राय देया जाता है कि एक ही व्यवसाय को चितन ही मनुष्य करते हैं। कुछ मनुष्य तो उसमें सफल होकर धन संचय कर लते हैं किन्तु कुछ व्यक्ति जो काफी बुद्धिमान हैं और जो काफी परिश्रम से काम करते हैं उसी व्यवसाय में

नष्ट व त्रिबाला निकालते हुए देख जाते हैं। लाभ व हानि भी सब व्यापारियों को एकसी नहीं होती है। यह अन्तर इन्हीं कर्मों के कारण होता है।

यदि किसी व्यक्ति का उसके कर्मनुसार लाभ होना है, तो व्यापार में उसको लाभ हो जाता है और यदि हानि होती है तो हानि ही जाना है। यदि कोई व्यक्ति किसी प्रकार का व्यवसाय नहीं कर रहा है और उसके तीव्र पुण्य कर्म का उदय आया है जिसके फलस्वरूप धन सम्पत्ति प्राप्त हानी चाहिये। एसी अवस्था में उसको अवस्मात् वसीयत पाटग आदि से धन प्राप्त हो जावेगा अथवा उसकी प्रवृत्ति किसी व्यापार करने की हो जावेगा जिसमें उसको अतुल्य धन की प्राप्ति होगी। यदि उत्तम मनुष्य कर्म का उदय आया है और वह व्यक्ति किसी प्रकार का व्यवसाय भी नहीं कर रहा है तो यह सम्भव है कि उसको लाभ तनिक भी न हो और उसका वह मनुष्य कर्म उपयुक्त कारण न मिलने से बिना फल लिये हुए ही नष्ट हो जावे। यही दया अनुभूत कर्मों के उदय की है। इस प्रकार मनुष्य के पूरे कर्मों का फल मिलना बहुत कुछ उपयुक्त साधना के मिलन पर ही निर्भर रहता है।

मान तो कोई जीव पशु योनि में शरीर धारण किये हुए है और उसके ज्ञानावरणीय कर्म का मूल उदय आया है जिसका प्रभाव यह होता चाहिये कि उसके वास्तविक ज्ञान का—जो ज्ञानावरणीय कर्म से आवृत था—विवास अधिक हो। परन्तु पशु योनि के कारण उस जीव की परिस्थिति ऐसी है कि उसके ज्ञान गुण का विवास अधिक नहीं हो सकता है। एसी परिस्थिति में उस ज्ञानावरणीय कर्म का मूल उदय बिना फल लिये हुए ही, नष्ट हो जावेगा। या मान लो उस पशु यानिधारी जीव के एम कर्मों का उदय आया है कि जिनके कारण, उसकी प्रवृत्ति तथा परोपकार आदि शुभ कार्यों की धार हो। पशु यानि के कारण, परिस्थिति ऐसी है कि वह दया परोपकार आदि कार्यों में प्रवृत्त हो नहीं सकता है।

एता असाया मे उपासा कर्मा क फल वा बाह प्रमाण मी पदेन
 मोर न कम बिना फल सिध हुन ही गन हो जावेन ।

उपरोक्त विधान न इन दलितान पर पन्था जगण है कि कम पर
 मानु बाया या हान पर अनरुम परिस्थिति में भी, पूरा फल देते ।
 यदि परिस्थिति दिक्कुर बिगिन जाती है ता क कम परमाणु बिना फल
 सिध हुन ही गन हो जाउ ह और यदि परिस्थिति कुछ बिगिउत मार कुछ
 अनरुम जाती । ता उन कर्मो का फल भी पूरा नही मिलता है असा
 ही श्लाघा है । इन प्रकार नव गणित कर्मो का फल मिलता बाह्य गणन
 व परिस्थिति पर चिनन ही असा में निर्भर रहता ह ।

मनुष्य जब मरिदा पीता ह ता गन मना हो जाता है । बिगी मरिदा
 वा नगा तत्कार ही हो जाता है बिगी का फल वा फल बाह । बिगी मरिदा
 वा नगा तीव्र हाता है बिगी का मना । बिगी का नगा फल मर रहता
 है बिगी का अर्थिक देर तक । ठाक मी प्रकार मनुष्य जब मन बचन
 या शरीर द्वारा बाय करता है ता उगता भावना क अनकार मूम पर
 मानुषा में कमगति उत्पन्न हो जाता है । ये कमगतिपुन परमाणु कुछ
 समय पन्थान् बाय रूप म परिणत होत है अर्थात् इन कर्म परमाणुओं
 का फल मिलन लगता ह । मरिदा क नगा की भाति वा कम परमाणुओं
 का प्रभाव तात्काल होन लगता है कुछ का कुछ निन मीन कर्ष बा ।
 मरिदा के नगा की भाति कुछ कर्मो का प्रभाव तीव्र हाता है और कुछ का
 मन्द । कुछ कर्मो का प्रभाव अर्थिक समय तक रहता ह और कुछ का
 बाह समय तक ।

उपरोक्त विवेचन से प्रकट है कि प्राणी के मन बचन या शरीर
 द्वारा बाय करन से उसकी उम समय की भावना के अनुसार मनीषर्तो
 मूम परमाणुमा में कमगति उत्पन्न हो जाती है और इन परमाणुमा का
 आत्मा के साथ सम्बन्ध हो जाता ह । इन कम परमाणुमा के बाय रूप में
 परिणत होन से उस व्यक्ति को अपने पूर्वकृत कर्मो का फल मिलने लगता

ह उसकी मनोवृत्ति बदल जाती है, काम, त्रास आदि रूप धनक प्रकार की भावना उत्पन्न होती है जिमसे कारण वह व्यक्ति फिर नवीन वाय करता है। इस नवीन वाय एक भावना से वह फिर नवीन कर्म परमाणुओं से बघता है। इस प्रकार वाय और कारण की शृंखला (Chain of cause and effect) अक्षुण्ण चलती रहती है और जीव कर्म बंधन से आवद्ध भनव यानिया में जन्म लता हुआ अनानि कान से इस समार में भ्रमण करता हुआ चला आता है।

(३) दार्शनिकों के मत

प्राणियों के पूर्वकृत कर्मों के फल मिलने के सम्बन्ध में उपरोक्त कर्म सिद्धान्त के निश्चय हान पर, यह जानना अनुचित न हागा कि इस सम्बन्ध में प्रचलित धर्मों के दार्शनिकों के क्या मत हैं। इनके विचारों से कितना ही प्रकार अनुसंधान द्वारा निश्चित उपरोक्त कर्म सिद्धान्त की सत्यता पर पना।

(क) ईसाई व इस्लाम धरना के मत

ईसाई व इस्लाम के दार्शनिकों का धारणा है कि ईश्वर न इस जगत का निर्माण किया है, वही समस्त प्राणि समाज की रचना करता है इस जगत में उत्पन्न हान से पहिले इन प्राणियों के व्यक्तित्व का कोई पदक अस्तित्व न था शारीरिक मत्सु हान पर मनुष्य 'यायन्टिस (Judgment day) की प्रतीक्षा में रहता है'। 'याय के दिन ईश्वर इन मृत आत्माओं के मनुष्य जन्म किये हुए कर्मों का निपटारा करता है। जिन मत आत्माओं न मनुष्य जन्म में पुण्य कर्म किये हैं उनका स्वर्ग में भज देता है जहा अनन्त काल तक अप्सराओं के साथ भोग विलास करने हुए सुख में मस्त रहता है। जिन मत आत्माओं न मनुष्य जन्म में पाप कर्म किये हैं उनको सप्त के निच नरक में डाल देता है जहा वे नाना प्रकार के दुख पाने रहते हैं।

इस धारणा में, अनसंधान द्वारा निश्चिन्त उपरोक्त कमतिदान्त का न कोई स्थान है और न ही सकता है क्योंकि इन धर्मों ने विद्यमान समस्त प्राणी समाज का रक्षयिता एक ईश्वर मान लिया है, जो सम्पूर्ण प्राणियों का बापों की सुखना रगता है और जो न्याय के तिन मन आत्मार्थों को उनके पण्य अथवा पाप धर्मों का अनुसार सत्ता का लिय स्वयं या नरक में भेजता है ।

(ख) भारतीय दार्शनिकों के मत

भारत में जितने भी धर्म प्रचलित हुए हैं उन सब धर्मों के आशयों में यह माना है कि जो जैसा करता है उसको उसका फल अवश्य भोगना पड़ता है । यह आज धर्मन पुनरुत्थन धर्मों के अन्तर्गत एक यानि स दूसरी योनि का जाता है । इन्हीं के कारण इसका सुख दुःख मिलता है । जो धर्म अनुप्य करता है उसका फल उसको अवश्य मिलता है । आज के धर्म का फल उसका फल भोगना पड़ता है और फल का परमा इतना ही नहीं किन्तु जो धर्म इस जन्म में किया जाता है, उसका फल अगल जन्म में भी भोगना पड़ता है । भारतीयों की साधारण धारणा है कि जमी करनी बसी भरनी । वैश्व धर्मनियामी समस्त दर्शनों की (उनकी भांजा जो ईश्वर को कमफलगता मानते हैं) सही मायता है कि प्राणी को धर्मन धर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है । महाभारत (शान्तिपर्व २४० ७) में कहा है —

धर्मणा धर्म्यते जनुविद्यया तु प्रमुच्यते ।

अर्थात् प्राणी धर्मन धर्मों के द्वारा बंध जाता है और ज्ञान के द्वारा छूट जाता है यही बात भगवद्गीता (५ १५) में कही है —

नादत्ते बन्धयित्वापि न चैव मुहूर्तं विभ ।

अज्ञाननायत शानं तेन महति जतव ॥

अर्थात्—ईश्वर ने किसी का पाप लता है और न पुण्य ही। पान पर अपान का परदा पडा हुआ है जिसके कारण प्राणीसमाज में माह उन्नत होता है।

(ग) नारय व वेदान्त दाशनिकों के विशेष मत

इनकी धारणा है कि प्रत्येक सांसारिक आत्मा के साथ प्रकृति व सूक्ष्म परमाणुओं का बना हुआ एक सूक्ष्म शरीर रहता है, जिसका यह 'लिंग शरीर' या 'सूक्ष्म शरीर' कहते हैं। मनुष्य जो कम करता है, उसका सस्कार हम सूक्ष्म शरीर में रहता है। जितने कम मनुष्य ने पूरा या इस जन्म में किया है और जिनका फल उसने अभी तक नहीं भोगा है उनके कम सस्कार इस सूक्ष्म शरीर में रहते हैं। इन कम सम्बन्ध से यवन लिंग शरीर ही मनुष्य का एक योनि से दूसरी योनि में ले जाता है। माता के गर्भ में चलते भवस्था से जगावर बढ़ भवस्था पर्यन्त यही लिंग शरीर उस व्यक्ति के शरीर की बढि करता है। उसका अपने पंच कर्मों का फल भोगना पड़ता है। इन दाशनिकों ने इन चर्च हुए कम सस्कारों के तीन भेद किये हैं —

(१) संचित कम—य समस्त कम जो मनुष्य ने पूरा या इस जन्म में वाधे हैं और जिनका फल अभी तक मिलना प्रारम्भ नहीं हुआ है इस संचित कम को 'अभ्यन्त कम' भी कहा है।

(२) प्रारब्ध कम—य कम जिनका फल मिलना प्रारम्भ हो गया है। इसको 'आर्य कम' भी कहा है।

(३) त्रियमाण कम—यह कम जो अभी किया जा रहा है यह केवल वर्तमान काल सूचक है।

श्री बादरायण आचार्य ने कमभोग के सम्बन्ध में वेदान्तसूत्र (४ १ १५) में बचल दा ही भेद किये हैं —

(१) प्रारब्ध कर्म—य कर्म जिनका फल भोगना प्रारम्भ हो गया है ।

(२) अनारब्ध कर्म—य कर्म जिनका फल भोगना अभी प्रारम्भ नहीं हुआ है ।

इन द्वागणिकों का मत है कि जिन कर्मों का फल मिलना प्रारम्भ हो जाता है उन कर्मों का फल उस व्यक्ति का अवश्य भोगना पड़ता है —

“प्रारब्धकर्मणा भोगादेव क्षयः ।”

प्रारब्ध कर्म का फल व्यक्ति को पूणतया भोगना पड़ता है बीच में क्षय नहीं किया जा सकता । जैसे हाथ से छूटा हुआ बाण अन्त तक चलता जाता है न बीच में रुकता है और न लौटकर आता है । परन्तु अनारब्ध कर्म की दशा ऐसी नहीं होती वह ज्ञान के द्वारा नष्ट किया जा सकता है । बिना भोग ही उसके क्षय किया जा सकता है ।

सांख्यदर्शन ने लिंग शरीर को प्रकृति के निम्नलिखित १८ सूक्ष्म तत्त्वों का बना हुआ माना है —महत् (बुद्धि) अहकार, मन पाच ज्ञान त्रिया पाच कर्मेन्द्रिया और पाच तन्मात्रायें । अन्तर्दान न लिंग शरीर को उपरोक्त १८ तत्वों के अतिरिक्त उन्नीसवें चित्त (जिसमें अनक प्रकार की भावनायें रहती हैं) तत्व का भा बना हुआ माना है । ये तत्व सूक्ष्म प्रकृति के बन हुए हैं । इनमें से प्रथम तरह तत्त्वों को प्रकृति के गुण भी कह सकते हैं परन्तु अन्तिम शब्द रूप रस गन्ध पच तन्मात्रायें प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं की बनी हुई हैं । इस प्रकार इस लिंग शरीर को प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं का बना हुआ माना है जो सर्व सासारिक आत्मा के साथ रहता है । जब मनुष्य ज्ञान द्वारा सचित्त कर्मों का नाश कर देता है तब यह लिंग या सूक्ष्म शरीर भी आत्मा से पृथक् हो जाता है और आत्मा कमबधन संमुक्त होकर कवचपत्र को प्राप्त हो जाता है ।

किसी व्यक्ति के किसी वायु कर्म में उस वायु के फलस्वरूप जो

कम संस्कार उसके लिये शरार में पतत ह, अर्थात् जो कमबधन वह व्यक्ति करता ह उसके कारण उस व्यक्ति की राग द्वेष रूप प्रवृत्ति जाती ह । जसा-जसी उस व्यक्ति के वाम शोध आति भावनायें काय करने के समय होती ह वसा ही वह व्यक्ति कमबधन करता ह । यदि उस व्यक्ति के किसी काय करते समय विलकुल गुद्ध भाव हा, कोई आसक्ति काय में न हो काय को पूण निष्काम भाव से कर, तो उस काय के फलस्वरूप वह किसी कमबधन में नहा फसता ह । मनुष्यनिपत्र (६ ३४) में कहा ह —

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो ।

बन्धाय विद्यासन्नि मोक्षे निविषय स्मरम ।

अर्थात् मनुष्य के (कम से) बधन या मोक्ष का कारण मन ही ह । मन के विषयामवन होने से बधन और निष्काम निविषय एवं अनात्मनि होन से मोक्ष हाता ह । भगवद्गीता में तो इमी बात का प्रतिपादन किया गया ह कि विषयामवन होन पत्र की आगा से कम करन अथवा राग द्वेष रूप प्रवृत्ति होन से मनुष्य कमबधन करता ह । निष्काम कम करन से न उसके किसी प्रकार का कमबधन होता ह और न वह किमा पाप का भागी होना ह । श्री भगवद्गीता (४ २० २१ २०) में कहा ह —

त्यक्त्वा कमफलासनं नित्यतप्तो निराश्रयः ।

कमण्यभिप्रवृत्तोऽपि नव किंचित्कराति स ॥

निराशीयतचित्तात्मा त्यक्त सव परिग्रह ।

शरीर केवल कम क्वप्राप्नोति किल्बिषम ॥

यदृच्छात्मानं सन्तुष्टो द्वादतीतो विमत्सर ।

समं सिद्धावसिद्धौ च हृत्वापि न निबद्धघते ॥

अर्थात्—कमफल की आसक्ति छाडकर जा सन्तुष्ट और निराश्रय ह (याना जो पुरय कम की बिना पत्रागा के सदा तप्त हृमा करता ह)—वहना चाहिय—वह कम करते हुए भी कृद्ध नहा करता ह । फल

की वासना का त्याग करन यात्रा (निरागा) चित्त का नियंत्रित रखन वाला सब परिश्रम मे मुक्त (याना आसक्ति से मुक्त) पुरुष केवल धरार एव कर्मोद्भिया से बच करता हुआ भी पाप का भागा रहा हाता ह । जो मृदु-छा से प्राप्न हो जाव उसमें सन्तुष्ट ह्य गावि आदि द्वन्दा से मुक्त अभिमान शय शय की सिद्धि अथवा असिद्धि मे समता रखन वाला पश्य बन् करता हुआ भा पाप अथवा पुण्य से बद्ध नहीं होता ह ।

पूव भीमासा व कुछ भाष्यकार एव आचार्यों ने कमवचन का कुछ बणन किया ह । परन्तु योग याय व धर्मापक दशना न कमवचन विषय का विवचन अधिक नहीं किया ह । उपरोक्त श्रुती का इस विषय में एक प्रचार स उपधा रही ह । केवल इतना कहकर—'मनुष्य जो कुछ बन् करता ह उसका फल उसको इस या प्राणामी जीवन में भागना पडता ह—सन्तुष्ट हा गय ह । उन्हान यह नहीं बतलाया कि जिस प्रकार मनुष्य को अपन पूर्वकृत कर्मों का फल भोगना पन्ता ह ।

बौद्ध दार्शनिकों का भी यहा मत ह कि जो बन् मनुष्य करता ह उस बन् के अनुसार सस्कार पड जात ह और मनुष्य को अपन पूर्वकृत कर्मों का फल इन सस्कारा द्वारा मिल जाता ह । इसका विषय बणन नहा किया ह ।

(घ) जैन दार्शनिका का विशेष मत

जैन दार्शनिकों का भी यहा मत ह कि जो जन्मा बन् करता ह उसका बसा ही फल मिलता ह । जनाधाय श्री अमितर्गान न कहा ह —

स्वयं कृतं बन् यदात्मना पुरा

फलं तदीयम सभते शुभाशम ।

परण दत्त यदि सन्धत स्फुटम,

अर्थात्—जा कर्म पूर्वकाल में मनुष्य द्वारा किया गया है उसका गुण अथवा अंगुम फल उसको मिलता है। यदि यह माना जावे कि यह फल विना अथ व्यक्ति का किया हुआ है तो अर्थात् किये हुए कर्म निरर्थक ही ठहरेंगे।

अन्य दान की मायता है कि कर्मफल देने वाला कोई अथ विनाय अथ व्यक्ति या ईश्वर नहीं है। कर्मफल स्वयं मनुष्य का मिलना रहता है मन, वचन या शरीर द्वारा काय करने के समय मनुष्य का राग, द्वेष आदि किसी परिणति या भावना होती है उसी भावना के अनुसार मनुष्य का उसके काय का फल मिलता है। यदि किसी समय मनुष्य के भाव स्वयं गुण्ड हा, उसमें राग द्वेषादि रूप किसी प्रकार की भावना विद्यमान न है वह निमग्नत्व निर्लेप वीतरागी हो तो उस समय उस व्यक्ति के शारीरिक काय करते हुए भी किसी प्रकार का कर्मवचन नहीं होता है। मोक्ष शास्त्र (अ० ८२) में कहा है —

स कथायत्वाज्जीव्य कर्मणो योग्यान्पुत्रगलानादत्ते स कथः ।

अर्थात् जीव श्रेय अभिमान आदि कथाय (वाग्ना भावना आदि) युक्त होने पर कर्म में परिणत ज्ञान के योग्य सूक्ष्म पुद्गल परमाणुओं (सूक्ष्म परमाणु जितम कर्मशक्ति ग्रहण करने की योग्यता है) को ग्रहण करता है। इस ग्रहण करने की ही कथा (कर्मवचन) कहते हैं। अन्यान्य, प्रत्यक्ष व्यक्ति की आत्मा के साथ-साथ सूक्ष्म पुद्गल परमाणुओं कायना हुआ एक सूक्ष्म शरीर मायता है। इस सूक्ष्म शरीर के सूक्ष्म पुद्गल परमाणुओं में उस व्यक्ति के पूर्वकृत कर्मों के फल देनेवाला शक्ति इस प्रकार भरी होती है जैसे विद्युत भण्ड (बटरी Battery) में विद्युत शक्ति। इस सूक्ष्म शरीर को 'कार्मण शरीर' के नाम से बाधित किया

१ कार्मण शरीर = (कर्म + अणु) + शरीर अर्थात् कर्मफल देने वाली शक्ति

ह। आत्मा को शक्ति रूप में अनन्त ज्ञान ध्यान शक्ति एवं आनन्दमय मानता है और कहता है कि आत्मा के शुद्ध ज्ञान आनन्द आदि स्वरूप को कमफल देने वाली शक्ति से युक्त सूक्ष्म परमाणुओं के समूह कार्मण शरीर न आच्छादित व विकृत कर गया है जिसके कारण यह सांसारिक आत्मा अल्प शक्तिमान एवं राग द्वय आदि अनेक प्रकार की भावनाओं से युक्त हुआ शरीर प्राप्त होता है। आत्मा का इस मूढम कार्मण शरीर न बाधन न कर रहा है यदि आत्मा सूक्ष्म कार्मण शरीर से बद्ध न होता तो वह भौतिक शरीर से स्थूल पदार्थ में कद नही रह सकता था भौतिक शरीर की मल्लु होत ही वह मुक्त होकर मोक्ष स्थान को पहुँच जाता एक यौनि से दूसरा यौनि में बदलापि नही जाता।

यह कमशक्ति सूक्ष्म पदार्थ परमाणुओं में किस प्रकार उत्पन्न होती रहता एवं क्षय होता है इसका विवेक वर्णन ब्रह्मसूत्र के अर्थ पर, जन श्रद्धा में दिया हुआ है। यह वर्णन अनुसन्धान द्वारा निश्चित उपरोक्त कम सिद्धान्त से मिलता जुता है। पाठको की जानकारी के लिए, उसका कुछ उल्लेख किया जाता है।

मनुष्य मन बचन या माय द्वारा जब कोई कार्य करता है तो उसके समीपवर्ती वातावरण में क्षोभ उत्पन्न हो जाता है उसके कारण और विद्यमान विविध प्रकार के सूक्ष्म परमाणु—जिनका कार्मण वर्णन^१ कहते हैं—आत्मा की ओर आकर्षित होत है। उन समय उस व्यक्ति की राग द्वय रूप जसी परिणति या भावना होती है उसी भावना के अनुसार इस आकर्षित कार्मण वर्णन^१ में कमफल देने वाली एक विविध प्रकार की शक्ति (Energy) उस उत्पन्न हो जाती है जसे दो पदार्थों

^१ कार्मण वर्णन कार्मण (कम + अणु) + वर्णन (समूह) अर्थात् सूक्ष्म पदार्थ परमाणुओं का वह समूह जिसमें कमशक्ति ग्रहण करने की योग्यता है।

के सघर्षण से विद्युत्-शक्ति उत्पन्न हो जाती है। इस कर्मफल देने वाली शक्ति से युक्त कार्माण वगणा का, आत्मा के साथ एक क्षत्रावगाह सम्बन्ध (अर्थात् एव ही क्षत्र में स्थित आत्मा व कार्माण शरीर का आकाश के एक ही क्षत्र में व्याप्ति सम्बन्ध) हो जाता है। जन दयान ने कर्मशक्ति युक्त कार्माण वगणा' को 'कर्म' के नाम से बोधित किया है, क्योंकि यह (कर्म) उस व्यक्ति के पूर्वकृत कर्म (कर्म) का फल है। कार्माण वगणा (सूक्ष्म परमाणुभा) के आत्मा की ओर आवर्षित होने का 'आसव' और आत्मा के साथ सम्बन्ध होने को 'बन्ध' जैन ग्रन्थों में कहा है।

मनुष्य प्रतिक्षण मन, वचन या शरीर द्वारा कुछ न कुछ कार्य करता रहता है इसलिये प्रति समय, उसकी तात्कालिक भावनाया के अनुसार, उसने कर्म बन्धने रहते हैं। उन समस्त कर्मों (कर्मशक्ति युक्त कार्माण वगणा) के समूह को—जो उनमें वर्तमान या पूर्व जन्म में बाध है और जितनी, कर्म फल देकर अभी तक व्युत्थित नहीं हुई है—कार्माण शरीर कहते हैं। यह कार्माण शरीर वण आत्मा में व्याप्त रहता एव उसका आच्छादित रहता है।

इन कर्मों की दशा मदिरा के तुल्य है, जस विसा मन्त्रि का नगा जल्नी चढा है विसी का देर में बिगी का थोडा दरतव रहता है बिमी का अधिक समय तन। ठीक यह दशा कर्मों की है, जब व, कर्म बन्धन से कुछ समय पश्चात् कार्माशक्ति होने है तो उसका प्रभाव मनुष्य पर पडन लगता है। जस मन्त्रि के नगा से मनुष्य की स्वच्छ बुद्धि मण्ट होकर भ्रम रूप हो जाती है और वह मनो में अनक प्रकार के काय करता है उसी प्रकार कर्मों के काय रूप में परिणत ज्ञान से, मनुष्य की मनोवृत्ति वस्तु जाली है राग, द्वेष श्राव मान माया मोह आदि भावनाएँ उत्पन्न होती है और वह अनक प्रकार के काय करता है। बाह्य पदार्थों के संयोग से कर्मों का फल भिन्न भिन्न प्रकार का मिलन लगता है। ज्ञान के विकार में न्यूना या अधिकता हो जाती है। कुछ समय तक फल देकर ये कर्म कर्मशक्ति

विहान हो जाते हैं। उस समय उस कार्मण यगणा का—जिसमें उन कर्मों की शक्ति पड़िल स भरी हुई थी और अब जिनकी व्युच्छिन्ति हो गई है—सम्बन्ध आत्मा से तथा 'अप' अथ कर्मों के समूह कार्मण शरीर से छट जाता है। इस सम्बन्ध से छूटने को 'निजरा' कहते हैं। एक ही माय एक ही समय वित्तन ही कर्मों का फल मिलता रहता है। एसी दशा में जो कर्म फलमिता है, वह उस समय उदय में आय हुए समस्त कर्मों की कम शक्तियों की जाड़ बाकी का प्रतिफल होता है। शरीर के हलन चलन रोवन वचन न धारन एवं मन को शुद्ध रखने से नवीन कर्मों का आगमन एक जाता है। नवीन कर्मों के आगमन निरोध को सम्बर कहते हैं।

मनुष्य अपने भावों को शुद्ध रखने सांसारिक बाह्य वस्तुओं से मोह ममता त्यागन श्रेय मान आदि कषाय (अशुभ भावना) के छोटन/एव राग रूप गुण भावनाओं से भी दूर रहने पर, नवीन कम वचन के चक्र से बच जाता है और पूर्व शक्ति कर्मों का—जो अभी तक उसकी आत्मा से सम्बन्धित है—तपस्या द्वारा शीघ्रता से निजरा (नष्ट) करके मुक्त हो जाता है। वचन से मुक्त होने पर आत्मा का शुद्ध चेतन आनन्द स्वरूप प्रकट हो जाता है एवं वह सच्चिदानन्द अवस्था को प्राप्त हो जाता है। मन वचन से मुक्त अवस्था को मोक्ष कहते हैं।

जन्म दान ने सात तत्व माने हैं। जन्म समाज में अत्यन्त प्रसिद्ध एवं सब माय मोक्ष शास्त्र में कहा है —

जीयाजीयाश्रवणवचननिजराभोक्षस्तत्त्वं ।'

अर्थात् जीव अजीव (जीव के अतिरिक्त पुद्गल आदि अय द्रव्य), आश्रव (उपराक्त कर्मों का आगमन) वच (आत्मा के साथ कर्मों का सम्बन्ध) सम्बर (नवीन कर्मों के आगमन का निरोध) निजरा (कर्म का फल देकर अथवा बिना फल दिए नष्ट हो जाना) य मोक्ष (आत्मा का समस्त कम वचन से मुक्त हो जाना) सात तत्व हैं। उपराक्त सात

तथा के ठीक ठीक समझन एवं उन पर श्रद्धाजन करने के लिये जन श्रद्धा न यदा जोर दिया है।

जिस प्रकार भोजन दारीर के भीतर प्रवेश करने पर रक्तमांस अग्नि सप्त धातु व मल मूत्र में विभक्त हो जाता है उसी प्रकार ब्रह्मज्ञान दुष्ट कामाण वगणा (अर्थात् कम) भी निम्न लिखित आठ भगों में विभक्त हो पाता है —

(१) ज्ञानावरणीय ब्रह्म (२) दग्नावरणीय ब्रह्म (३) महत्त्व ब्रह्म (४) अंतराय ब्रह्म (५) नाम ब्रह्म, (६) गोत्र ब्रह्म, (७) अनु ब्रह्म व (८) बदनीय ब्रह्म।

इनके नाम व काय वही है जो अनुसंधान द्वारा निम्नलिखित हैं, उपरोक्त ब्रह्म सिद्धान्त में ब्रह्म के आठ भगों के हैं। दार्ष्टान्तिक भाषि श्रद्धा में इन आठ ब्रह्मों का विवरण विस्तार पूर्वक दिया हुआ है। इन्होंने १४८ उत्तर भेदा (उत्तर प्रवृत्ति या ब्रह्म) में विभक्त किया है जो उन

* १-ज्ञानावरणीय ब्रह्म के ५ भेद हैं —

- (१) भतिज्ञानावरणीय ब्रह्म—भतिज्ञान (बस्तु का सार्वभौम ज्ञान) को हटाने वाला ब्रह्म।
- (२) धृतज्ञानावरणीय ब्रह्म—धृतज्ञान (बस्तु का सार्वभौम ज्ञान होने के पश्चात् बुद्धि व विचार द्वारा विषय बातें निश्चित करना, जैसे क्या यह बस्तु सामान्य है या हानिकारक) को आच्छादित करने वाला ब्रह्म।
- (३) अवधिज्ञानावरणीय ब्रह्म—अवधिज्ञान (सामान्य दिव्य ज्ञान जिसके द्वारा मनुष्य मन व इंद्रियों की स्थायिता के बिना कुछ क्षेत्र व काल सम्बन्धी अनु व धर्मात्मों की जान सेवा है) को आच्छादित करने वाला ब्रह्म।
- (४) भनपयज्ञानावरणीय ब्रह्म—भनपयज्ञान (सीमित दिव्य

रिक्त गोमट्टसार एवं अन्य प्रयोगों से जाना जा सकता है। इसके अतिरिक्त भिन्न भिन्न कर्मों का बचन उदय (फल देना) व्युच्छिन्ति (नष्ट

ज्ञान जिसके द्वारा तपस्वी मनुष्य, बिना मन व इन्द्रियों की सहायता के, कुछ क्षेत्र में काल सम्बन्धी अन्य मनुष्यों के मन स्थित विचारों को जान सता है) को आच्छादित करने वाला कर्म।

- (५) अज्ञानावरणीय कर्म—केवलज्ञान (पूर्ण दिव्यज्ञान जिसके द्वारा महान आत्माओं, बिना किसी इन्द्रिय व मन की सहायता के सम्पूर्ण पदार्थों को युगपत् ज मते है) को आच्छादित करने वाला कर्म।

२-दणनावरणीय कर्म के निम्नलिखित ६ भेद हैं —

- (१) अक्षुब्धनावरणीय कर्म—अक्षुब्धज्ञान (नेत्रों द्वारा सामान्य अवलोकन) को आच्छादित करने वाला कर्म, जिससे मनुष्य अज्ञान का या म्यून वृष्टि हो।
- (२) अधक्षुब्धनावरणीय कर्म—अधक्षुब्धज्ञान (नेत्रों के अतिरिक्त अन्य इन्द्रियों के द्वारा सामान्य ज्ञान) को आच्छादित करने वाला कर्म, जिससे मनुष्य बहिरा आदि होता है।
- (३) अधधिदणनावरणीय कर्म—अधधिदणज्ञान (अधधिज्ञान से पूर्व सामान्य अवलोकन) को आच्छादित करने वाला कर्म।
- (४) केवलदणनावरणीय कर्म—केवलदणज्ञान (केवलज्ञान से पूर्व सामान्य अवलोकन) को आच्छादित करने वाला कर्म।
- (५) निद्रा कर्म—अकारण नींद करने के लिये साधारण निद्रा उत्पन्न करने वाला कर्म।
- (६) निद्रानिद्रा कर्म—अधिक निद्रा (जिसके कारण मनस्य नेत्रों को उघाड़ न सके) उत्पन्न करने वाला कर्म।

या पयस्क होना) सत्ता (आत्मा के साथ रहना) ध्याति का कर्म भी विना रूप से लिया है तिनके ध्याना पूर्वक अध्ययन व विचारण से मनुष्य

- (७) प्रचला कर्म—जिसके होने पर शोक आदि के कारण विकार उत्पन्न होकर शरीर का सत्ताहीन होना, जिससे मनुष्य नत्र को कुछ खोल ही सोता रहना है ।
- (८) प्रचलाप्रचला कर्म—जिसके कारण निद्रा में मुह से सार जाता है एवं शरीर के अंग घसलते रहते हैं ।
- (९) स्वानगच्छि कर्म—जिस कर्म के कारण, निद्रा आने पर मनुष्य बीच में ही उठकर जागृत मनुष्य की भांति अनेक रीति कर्म करे परंतु निद्रा के छूटने पर उसका यह ज्ञान न हो कि मन् क्या किया है ।

३-मोहनीय कर्म के मुख्य दो भेद हैं —ज्ञान मोहनीय व अज्ञान मोहनीय कर्म ज्ञान मोहनीय कर्म—आत्मा व ध्याति के अज्ञान में बाधा डालता है । इसमें ३ भेद होते हैं —

- (१) मिथ्यात्व प्रकृति—य कर्म, जिसके उदय में ७ तर्कों को समझ कर अज्ञान पर सवे, हित की परीक्षा में लगे । यह कर्म सम्यक्त्व के उदय के लिए बाधा डालता है ।
 - (२) सम्यक्त्व प्रकृति—जिसके उदय में ७ तर्कों का अज्ञान, ध्याति (सत्य) के उदय उत्पन्न होते हैं ।
 - (३) सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृति—जिसके उदय में ७ तर्कों का अज्ञान व अज्ञान दोनों प्रकार के अज्ञान के उदय उत्पन्न होते हैं ।
- अज्ञान मोहनीय कर्म—जिसके उदय में ७ तर्कों का अज्ञान उत्पन्न होता है । इसके २५ उदय के लिए २५ कर्म (२५) कर्म (कपट) व सोय कर्म (कपट) के उदय उत्पन्न होते हैं ।

जावा की अनक समस्याया पर वडा प्रवाग पहना ह श्रीर वित्त ही
 मगा में वित्त ही प्रग्ना का सनाय प्र उत्तर मिल जाना ह ।

की अपना इनमें से प्रत्येक के निम्नलिखित चार-चार उत्तर
 भव होते ह —

- (१) अनतानुषयी कषाय—श्रोधादि उपरोक्त चार कषायों में
 से प्रत्येक का तीव्रतम भाव, जो पथर में लकीर की भांति
 दीर्घ काल तक रहता ह । इन तीव्र भावनाओं के होते हुए
 सम्यक ज्ञान (आत्म ज्ञान, आत्म रश्मि आदि) नहीं होने
 पाता ह । ये निष्प्यात्व के साथी ह ।
- (२) अप्रत्याख्यान कषाय—श्रोधादि उपरोक्त चार कषायों में
 से प्रत्येक का तीव्र भाव, जो मिट्टी में लकीर की भांति बृद्ध
 काल तक रहता ह । यह [(अ=किञ्चित्) + प्रत्याख्यान
 (त्याग)] थोड़े से त्याग अर्थात् गृहस्थ के अणुव्रत में भी
 बाधा डालता ह ।
- (३) प्रत्याख्यान कषाय—श्रोधादि उपरोक्त चार कषायों में से
 प्रत्येक कषाय का यह मंद भाव, जो बालू में लकीर की भांति
 अल्प काल तक रहता ह । ये कषाय गृहस्थ को अणुव्रत
 पालने में, बाधा नहीं डालते परन्तु ये उसको साधु के महाव्रत
 पालने से रोकते ह ।
- (४) सञ्चलन कषाय—श्रोधादि उपरोक्त चार कषायों में से
 प्रत्येक का यह अत्यन्त मंद भाव, जो जल में लकीर की भांति,
 तत्काल ही नष्ट हो जाता ह । ये कषाय पूण त्याग को भी
 नहीं रोकते ह केवल उनका कारण बृद्ध-बद्ध दोष उत्पन्न
 हो जाते ह ।

इस प्रकार प्रत्येक शोध, मान माया व लोभ के उप

जन श्रयो में इस कर्म वचन का एक अर्थ दष्टि स निम्नलिखित चार भागों में, विभाजन किया गया है —

रोहन चार भेद होने से १६ उत्तर भेद (प्रकृति) होते हैं ।
शेष ६ भेद निम्नलिखित हैं —

- (१) रति (रागन्ध भावना), (२) अरति (द्वेषरूप भावना),
- (३) भय, (४) जुगुप्सा (ग्लानि की भावना) (५) हास्य (६) शोक, (७) पुरुष वेद (स्त्री के साथ रमने की इच्छा होना) (८) स्त्रीवेद (पुरुष के साथ रमने की इच्छा होना) (९) नपुंसक वेद (स्त्री व पुरुष दोनों के साथ रमने की इच्छा होना) ।

इस प्रकार दशम मोहनीय के तीन भेद व चारित्र्य मोहनीय के २५ भेद मिलाकर, कुल २८ उत्तर भेद, मोहनीय कर्म के हुए ।

१-अन्तराय कर्म के निम्नलिखित पांच भेद होते हैं —

- (१) दानान्तराय कर्म—अन्तराय कर्म की यह उत्तर प्रकृति (भेद), जो मनुष्य के दान देने में इस प्रकार बाधा डाले जिस प्रकार मंत्री राजा के दान देने में अड़चन डाल देता है ।
- (२) लाभान्तराय कर्म—अन्तराय कर्म की यह उत्तर प्रकृति, जो मनुष्य के लाभ होने में विघ्न डाले ।

(३) भोगान्तराय कर्म—

(४) उपभोगान्तराय कर्म—

अन्तराय कर्म की ये उत्तर प्रकृतियाँ जिनके उदय होने से मनुष्य भोगने एवं उपभोगने (जो वस्तु बार-बार भोगी जा सके जैसे वस्त्र आदि) में समर्थ होता हुआ भी भोग या उपभोग न कर सके ।

(१) प्रत्या वच—किमी कम वचन व समय, कितनी कामाण वगणा (सूक्ष्मपरमाणुआ) का कमगति युक्त हावर आमा के साथ

(५) धीर्मातराय कम—जिस उत्तर प्रकृति के उदय होत से, सामस्य प्रकट न हो सके ।

५-नाम कम के निम्नलिखित मुख्य ४२ भद तथा इन भेदो के उत्तर भद करने से ६३ होते ह —

(१) गति नाम कम—वह कम जिसके कारण मनुष्य, तियश्च (पशु, पक्षी, जलचर, कीट आदि), देव व नरक चार गतिया मिलती ह ।

(२) जाति कम—जिसके कारण जीव बने ज्ञानेन्द्रिया प्राप्त होती ह । इसके पाच भद ह —

(१) एकेन्द्रिय जाति— जिसके केवल स्पर्श इन्द्रिय हो जसे वक्ष, तता ।

(२) द्वीन्द्रिय जाति—जिसके केवल स्पर्श व मुख दो इन्द्रिया हों जसे कृमि, सट ।

(३) त्रीन्द्रिय जाति—जिसके केवल स्पर्श, मुख व नासिका तीन इन्द्रिया हा जसे घींटी ।

(४) चतुरिन्द्रिय जाति—जिसके केवल स्पर्श, मुख, नासिका व नत्र चार इन्द्रिया हों, जसे मक्ली, भ्रमर ।

(५) पचन्द्रिय जाति—जिसके उपरोक्त ४ इन्द्रिया व कण पाचवीं इन्द्रिय भी हो जसे मनुष्य, पशु आदि ।

(३) शरीर नाम कम—जिससे शरीर की रचना हो । शरीर निम्नलिखित पाच प्रकार व होते ह —

(१) भौदारिक शरीर नाम कम—जिससे मनुष्य पशु

सम्बन्ध हुआ है अर्थात् वित्तन सूक्ष्म परमाणु कम-शक्ति से युक्त होकर कम परमाणुओं में परिवर्तित एव आत्मा से सम्बन्धित हुए हैं।

पक्षी कीट, वृक्ष आदि का शरीर (उदर रखने वाला) शरीर बनता है।

- (२) अश्रियक शरीर नाम कम—यह कम जिससे अश्रियक शरीर (सूक्ष्म परमाणुओं का यह शरीर जो इंद्रियों के अगोचर हो और दीवाल आदि स्थूल पदार्थों में से निकल जाय) मिलता है। यह शरीर देव योनि के स्वर्गवासी देव, भूत, प्रेत आदि नीच प्रकार के देव एव नारकियों के होता है। इस शरीर में विक्रिया (परिवर्तन) होता रहती है।
- (३) आहारक शरीर नाम कम—यह कम प्रकृति जिसके कारण तपस्वी श्रद्धिधारी मुनि के ऐसी शक्ति उत्पन्न हो जाय कि किसी सदेह के उत्पन्न हान पर, उस सदेह को दूर करने के लिये, उनकी आत्मा के प्रदेश बढ़कर एक पुतल के रूप में सदाश्रम अरहत के पास तक चले जायें और सदेह का मिटाकर वापिस आ जायें। इस पुतले को आहारक शरीर कहते हैं। यह अत्यन्त सूक्ष्म परमाणुओं का बना होता है।
- (४) कार्माणि शरीर नाम कम—उपरोक्त कम परमाणुओं का समूह, जो आत्मा के साथ सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है।
- (५) तपत शरीर नाम कम—यह कम प्रकृति जिसके कारण, अत्यन्त प्राणी के एक और सूक्ष्म परमाणुओं का शरीर होता है, जिससे उसका भौतिक शरीर में तेज प्रनीत होता है।

(२) प्रकृति बध—एक ही समय में बध हुए कम परमाणुओं में से कितने कितने कम परमाणु ज्ञानावरणीय आदि आठ वर्गों में से प्रत्येक कम के ह।

(४) अगोपाग नाम कम—जिससे भस्तक, पीठ, घाटु आदि अंग, ललाट आदि उपाग का भेद प्रकट हो वह (श्रीदारिक, यत्रिक यक आहारक शरीरागोपाग नाम कम) तीन प्रकार का होता है।

(५) निर्माण नाम कम—जिससे शरीर का निर्माण हो, वह दो प्रकार का होता है —

(१) स्थान निर्माण—जिससे ठीक-ठीक स्थान पर नासिका, कण आदि अंग बनें।

(२) प्रमाण निर्माण—जिससे भिन्न भिन्न अंगों की तन्वा, चौड़ाई ठीक हो।

(६) बधन नाम कम—जिसके कारण शरीर के पुद्गल स्वयं मिलते हैं। उपरोक्त श्रीदारिक आदि पंच शरीर सम्बन्धी बधन भी (श्रीदारिक शरीर बधन नाम कम आदि) पांच प्रकार का होता है।

(७) सघात नाम कम—जिसके कारण शरीर के पुद्गल स्वयं छिद्ररहित परस्पर मिलें। उपरोक्त पांच प्रकार के शरीरों से सम्बन्धित सघात भी पांच प्रकार का होता है।

(८) सस्थान नाम कम—जिसके कारण शरीर मुडोल या बेडोल बनता है, इसके निम्नलिखित ६ भेद हैं —

(१) समचतुरस्र सस्थान नाम कम—जिसके कारण शरीर की आकृति ऊपर नीचे मुडोल हो।

(२) त्र्यप्रोषोपरिमडलसस्थान नाम कम—जिसके कारण,

(३) स्थिति बन्ध—एक ही समय में जो कर्म बन्ध ह, व बुद्ध समय परवान् काय रूप में परिणत होंग, उद्य समय उन कर्मों का फल उद्य व्यक्तित

घटवक्ष के समान नीचे का भाग पतला और ऊपर का स्थूल हो ।

- (३) स्वानिसस्थान नाम कर्म—जिसके उदय से नीचे का भाग स्थूल और ऊपर का पतला हो ।
- (४) कुब्जकस्थान नाम कर्म—जिसके उदय से शरीर घुबडा हो ।
- (५) वामनसस्थान नाम कर्म—जिसके उदय से शरीर बहुत छोटा हो ।
- (६) हुडकस्थान नाम कर्म—जिसके उदय से शरीर बडौत हो या भ्रमों में कमी या अधिकता हो ।
- (६) सहनन नाम कर्म—जिसके कारण शरीर की अस्थि, पजर्रादि में विनायता हो, जिससे शरीर दुड्ड या हीन हो । इसके ६ भव हैं ।
- (१०) स्पग् नाम कर्म—जिसके कारण कफ, मूत्र, गुण, सधु स्निग्ध, रस गीत व उष्ण आठ प्रकार के स्पग् गुणों में से एक या अधिक स्पग् गुण शरीर में हों ।
- (११) रस नाम कर्म—जिसके कारण (तिक्त, कटु, कषाय, आम्ल व मधुर) पांच प्रकार के रस गुण शरीर में हा ।
- (१२) गन्ध नाम कर्म—जिसके कारण सुगन्ध या दुगन्ध शरीर में हो ।
- (१३) रग नाम कर्म—जिसके कारण शरीर से (गुवन, कृष्ण, नील, रक्त व पीत) पांच प्रकार के रग में से एक या अधिक रग हो ।
- (१४) आनुपूष्य नाम कर्म—वह कर्म, जिसके कारण जीव एक

को मिलन नगमा । यह कमफल वितन ही घात तब मिलता रहता ह । कमफल मिलन वाली अवधि को स्थिति कहत ह ।

- योनि से दूसरी योनि को जाते हुए, पूब योनि स्थित शरीर के आकार को रखाता ह । अनुष्य तियञ्च आदि चार योनियां ह, उन सम्बन्धी चार आनुषूय नाम कम होता ह ।
- (१५) अगणलघु नाम कम—यह कम प्रकृति, जो शरीर को स्थिर रखती ह जिसके होन से शरीर लोहे के सदृश पथ्वी में घंस नहीं जाता, न रुई के तंतुके सदृश आकार में उठ जाता ह ।
- (१६) उपघात नाम कम—जिसके कारण ऐसे शरीर व अग का होना, जिससे स्वयं अपने शरीर का घात होता हो ।
- (१७) परघात नाम कम—जिसके कारण ऐसे शरीर व अग का उत्पन्न होना जिससे हमरे व्यक्ति के शरीर का घात होता हो ।
- (१८) आतप नाम कम—जिसके कारण आतपकारी शरीर हो ।
- (१९) उद्योन नाम कम—जिसके उदय से प्रकाश रूप शरीर हो ।
- (२०) उच्छ्वास नाम कम—जिसके उदय से शरीर में उच्छ्वास उत्पन्न ह ।
- (२१) विहायोगति नाम कम—जिसके उदय से प्राणी गमन करे । यह प्रगस्त (गुदर) व अग्रगस्त दो प्रकार की ह ।
- (२२) प्रत्येक शरीर नाम कम—जिसके कारण से एक शरीर में एक ही आत्मा व्याप्त हो । वही आत्मा उस शरीर का स्वामी हो ।
- (२३) साधारण शरीर नाम कम—जिसके कारण एक ही शरीर में बहुत सी आत्मार्थे व्याप्त हों और वे सब ही उस शरीर की स्वामी हों । एकद्वय जाति के अनस्पति काय में आलू मूली आदि कितने ही फल एव भाजी ह, जिनमें एकद्वय

(४) अनुभाग यन्त्र—स्थिति यन्त्र के उपरोक्त चरण में जब कमफल किसी व्यक्ति को मिलता है, तो किसी कर्म का फल तीव्र होता है और किसी का मन्द । कमफल की तीव्र या मन्द शक्ति को अनुभाग कहते हैं ।

जाति की शक्ति ही आत्मायें ध्याप्त है और वे सब उसी फल रूपी शरीर के स्वामी हैं (फल में कीड़े आदि हो जाते हैं, इनका उपरोक्त धात से सम्बन्ध बिल्कुल नहीं है) ।

(२४) अन्न नाम कर्म—जिसके उदय से जीव द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, षष्टुरिन्द्रिय व पंचन्द्रिय शरीर धारण करता है ।

(२५) स्यावर नाम कर्म—जिसके कारण जीव पांच प्रकार का एकेन्द्रिय शरीर धारण करता है ।

(२६ २७) सुभग व दुभग नाम कर्म—जिसके उदय से ऐसा शरीर उत्पन्न हो जिसके देखने से दूसरों के हृदय में प्रीति या घृणा उत्पन्न हो ।

(२८ २९) सुस्वर व दुस्वर नाम कर्म—जिनके उदय से मनोज्ञ या अमनोज्ञ स्वर उत्पन्न हो ।

(३० ३१) शोभ व अशोभ नाम कर्म—जिसके उदय से शरीर के अवयव सुन्दर या बुराप हों ।

(३२ ३३) सूक्ष्म व धावर शरीर नाम कर्म—जिसके उदय से ऐसा शरीर प्राप्त हो, जो पृथ्वी, जल में बिना रुके हुए निश्चल जावे या न निश्चल सके ।

(३४) पर्याप्ति नाम कर्म—जिसके उदय से जीव में शरीर, द्वीन्द्रिय आदि के लिये परमाणु व स्वयं ग्रहण करने की शक्ति उत्पन्न हो जाये । यह ६ प्रकार का होता है ।

आवाधा बाल—उस बाल को जो विसी कम बचन के समय से लगाकर उसी कम के उदय (अथवा उसी कम के वार्यावित होन) तक टाला ह उसको आवाधा बाल कहा ह ।

इसके अतिरिक्त इन कमों का बचन जन प्रया में और भी भिन्न भिन्न दृष्टिया स किया ह जिनके अध्ययन स कम सिद्धान्त का भाव भली भाँति

(३५) अपर्याप्ति नाम कम—जिसके उदय होने से जीव दह पर्याप्तियों में से एक को भी पूरा न कर सके ।

(३६ ३७) स्थिर व अस्थिर नाम कम—जिसके उदय होने से सर्वो गर्मी आदि के लगन पर भी, शरीर की घातु व उपघातुओं में स्थिरता रहे या न रहे ।

(३८ ३९) आदेय व अनादेय नाम कम—जिसके उदय से शरीर प्रभायुक्त या प्रभाहीन हो ।

(४० ४१) यश कर्ति व अयशकीर्ति नाम कम—जिसके उदय से मनुष्य के गुण अथवा अयगुण की क्याति हो ।

(४२) तीयकरत्व नाम कम—जिसके कारण मनुष्य अनुपम, विभूतियुक्त तीयकर (अथतार) पद की प्राप्ति करे ।

इस प्रकार नाम कम के ४२ भेद होत ह ।

(६) मात्र कम—क दो भेद होते ह उच्च व नीच गोत्र कम ।

(७) आयु कम के ४ भेद ह, अर्थात् देवधाय, नरक धाय, मनष्य धाय व तियञ्च आयु (यानी प्रत्येक गति सम्बन्धी धाय) ।

(८) खेदनीय कम के निम्नलिखित दो भेद होते ह —

(१) साताखेदनीय कम—जिसके कारण प्राणी को सुख की सामग्री प्राप्त होनी ह तथा शरीर निरोग होता ह ।

(२) असाताखेदनीय कम—जिसके कारण प्राणी को दुख उत्पन्न

समझ में आ जाता है। उन प्रयोगों में प्रमाणित करने के द्वारा
 से, अनुसंधान द्वारा निश्चित किया है कि इन सिद्धियों का अर्थ स्पष्ट
 स्पष्ट व विश्वसनीय हो जाता है।

करने वाली सामग्रियाँ ही हैं एवं गरिब गण व्याधि से
 युक्त हो।

इस प्रकार उपरोक्त बात ही है कि १५ वें भेद करने पर
 १४८ उत्तर प्रकृतियाँ (भेद) प्राप्त हैं। इस सिद्धि के अन्तर्गत
 मोक्ष-शास्त्र की सर्वाधिक सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।

६—जगत का निर्माण

विज्ञान का नियम है कि पदार्थ न बर्भी उत्पन्न होता है और न बर्भी नाश । संसार के प्रत्येक पदार्थ की अवस्था में परिवर्तन सत्त्व होता रहता है परन्तु उस पदार्थ का मूल तत्त्व नष्ट बर्भी नहीं होता । यह नियम अटल है । इसका सत्यता निर्विवादा असंशय्य रूप से सिद्ध है । पूर्व कथित ध्वनन इन नियमों की अटल सत्यता को प्रमाणित करता है । इन नियमों के सत्यता का परीक्षा किसी भी पदार्थ पर की जा सकती है । उदाहरण के लीर पर साह को लीजिये ।

उमसे खडग बर्धी आदि गहन चाक बर्ची आदि अनक प्रकार की आवश्यकताओं का सामान तय्यार होता है । इसके गलान पर फिर लोह पिन् बन जाता है, जिससे अनक प्रकार के सामान फिर तय्यार किय जात है । लोहा जल वायू का संयोग पाकर जग की दगा में बदल जाता है । लोहा का वस्तुय जग की दगा में परिवर्तित एव मिट्टी में मिलती हुई लिल लार् देनी है । यदि उस जग मिश्रित मिट्टी का एकत्रित किया जाव तो उचित प्रयोग करन पर उसमें से फिर लोहा निकल आता है । लोहा रसायनिक पदार्थों के वनान में काम आता है । एसी दगा में अन्य पदार्थों के संयोग होन पर वह संयुक्त पदार्थ की दगा में परिवर्तित हो जाता है । उस समय उसमें लान्पन का कोई गुण दिखलाई नहीं देता है परन्तु उचित प्रयोग करन पर इन संयुक्त पदार्थों का पृथक्करण हो जाता है और लोहा फिर पृथक् निकल आता है । इस प्रकार लोह का बर्डी पर माणु लान्पन का नहीं छाडता है यद्यपि उमकी अवस्था में अनक प्रकार का परिवर्तन हाता रहता है । यही दगा संसार के अन्य पदार्थों की है । उनही वाह्य अवस्थाओं में सत्त्व परिवर्तन होता रहता है परन्तु उनक

अन्तस्थित मूल तत्त्व का कभी नाश नहीं होता। इन अन्तस्थित
परिणाम पर पहुँचा जाना है कि भौतिक पदार्थ अन्तस्थित
बन हुए पदार्थों की बाह्य अवस्था में परिवर्तन के कारण
इन पदार्थों के अन्तगत मूलतत्त्व कभी नष्ट नहीं हुए हैं।

जीव द्रव्य भी—जसा पद में निश्चित किया जाता है, उस
काल से ही और अनन्त योनियों में भ्रमण करता रहता है।
इस जगत के चतन व अचतन समस्त पदार्थ अन्तस्थित
काल तक रहेंगे। उसी दशा में इन चतन व अचतन
समूह जगत की भाँति अन्तस्थित काल से लगातार
विद्यमान रहता हुआ मानना होगा। इस प्रकार
प्रवाह रूप चला आना हुआ अन्तस्थित पदार्थ
यह भी मानना होगा कि इसका निमाण कभी
के सदैव विद्यमान रहते हुए भी, इसमें
कभी कभी परिवर्तन इतने प्रबल एवं व्याप्त हों
प्रलय भी कहा जा सकेगा।

द्वितीय भाग

सत्य मार्ग (चिदानन्द-प्राप्ति मार्ग)

१—क्या सच्चिदानन्द श्रवस्था प्राप्त की जा सकती है ?

ससार का प्रत्येक प्राणी रोग से पीड़ित स्त्रा पुत्र आदि कृदुम्बा जन के विभाग स व्यथित शत्रु आदि के संयोग से दुखित भाजन वस्त्र आदि आवश्यक पणियों के अभाव स चिन्तित एउ जरा मरण सम्बन्धी कष्टा स भयभीत निव्वलाई देता ह । इन दुःखा स मुक्त होन एव सुख प्राप्ति की कामना करता ह । मनुष्य भ्रम स सुख का कभा एउ वस्तु में कभी दूसरी वस्तु में समझ लता ह एव उनके प्राप्ति करन में प्रयत्नशील हाना ह । इस भ्रान्ति एव भ्रम वृद्धि के कारण ह । अनक प्रकार के दुःख का सहन करना ह । सुख, वास्तव में, किमी बाह्य पदार्थ में मिहित नहा ह । यह ता स्वयं आत्मा के भीतर विद्यमान ह । आत्मा ज्ञान व ज्ञान-द स ज्ञानप्राप्त ह^१ । अतएव उम व्यक्ति को—जा वास्तविक सुख की प्राप्ति रक्षता ह—अपन वास्तविक सच्चिदानन्द स्वरूप की प्राप्ति क जिय प्रयत्न करना होगा ।

आत्मा का यह ज्ञान आनन्दमय स्वरूप कम परमाणुआ क समूह सूक्ष्म कामाण शरीर से आच्छादित व विह्वन हो रहा ह । इमा कामाण शरीर के कारण जीव अज्ञानी हुआ इस ससार स भ्रमण कर रहा ह । कभी मनुष्य योनि धारण करता ह । कभा हस्ति आदि पणु, मुक् आदि पक्षी कृमि आदि छोट जन्तु आम आदि बह योनि में जन्म लता ह और अनक प्रकार के कष्ट भागता ह । इसी

^१ जसा कि पहिले आत्मा के वास्तविक स्वरूप "ज्ञान-द" में निश्चित किया गया ह ।

बन्ध है। इस प्रकार भावना व क्रम की कारण वायु रूप परम्परा वा कभी अन्त नहीं होता। जब तक यह कारण वायु की श्रृंखला (Chain of cause & effect) नहीं टूटता है तब तक क्रम बंधन से मुक्त किस प्रकार हुआ जा सकता है ? यह एक जटिल समस्या है जिसका समाधान ज्ञाना नितान्त आवश्यक है। इसके समाधान विषय बिना क्रम बंधन से मुक्त ज्ञान का माग हुआ जा सकता है।

उपरोक्त बंधन से प्रतीत होता है कि मनुष्य वायु करन में स्वतंत्र नहीं है उसका अपन पूर्व मचित क्रमों व फल अनुसार काम करना पड़ता है। वायु करन के समय जमा उसकी भावनार्ये ज्ञानी है उन्हावे अनुसार फिर नवीन क्रम बंधन होता है। इस प्रकार ससार में हमका भ्रमण कभी समाप्त नहीं होता। ससार में एसी घटनाय भी प्रतिदिन होता रहती है जिनसे प्रतीत होता है कि मनुष्य में पुण्याय बल मन्वल्प शक्ति शुद्धि एक काम करने की स्वतंत्रता भी बिलकुल ही अज्ञा में विद्यमान है।

प्रायः देखा जाता है कि जो मनुष्य अपन उद्देश्य की प्राप्ति में प्रयत्नशील रहते हैं अनेक विघ्न व बाधाओं के उपस्थित होने पर भी निश्चित पथ से विचलित नहीं होते हैं। बरन् जो त्रिगुण उत्साह से अपन उद्देश्य का सिद्धि में लग रहते हैं अन्त में उन पुण्यार्थी मनुष्यों के मनोरथ सफल भी हो जाते हैं। एक विश्वार्थी जो एम० ए० परीक्षा तक शिक्षा प्राप्त करने का दृढ़ मन्वल्प कर लेता है एक उसकी प्राप्ति के लिए अध्ययन करता हुआ प्रयत्नशील होता है अन्त में वह, कुछ वर्षों के पश्चात् एम० ए० का परीक्षा में उत्तीर्ण होता हुआ लिखलाई देता है। इसी प्रकार जब कोई मनुष्य इतिहास आदि किसी विषय में पारंगत ज्ञान का दृढ़ मन्वल्प कर लेता है और अपन उद्देश्य के साधन में पुण्याय पुर्वक लग जाता है तो वह मनुष्य कुछ काल के पश्चात्, उस विषय का पंडित हो जाता है। इस प्रकार पुण्यार्थी मनुष्य अपन मनोरथ में सफल होता हुआ दिखलाई देता है। कभी कभी यह भी देखा जाता है कि पुण्यार्थी मनुष्यों के माग

में एसी कठिनाइयाँ आ जाती हैं या एसी परिस्थिति उपस्थित हो जाती है जिससे वे धन-सम्पत्ति में सफल नहीं होने पाते हैं। धन-सम्पत्ति को मुँह का वारण समझ कर उसकी प्राप्ति के लिये बहुत से मनुष्य सबल्य करते हैं एवं उसके लिये भरसक प्रयत्न भी करते हैं। उनमें से कुछ मनुष्य निपल धन-सम्पत्ति के स्वामी बन कर अपने मनोरथ में पूर्णतया सफल हो जाते हैं। वह यहाँ सी पूँजी इकट्ठा कर पाते हैं और कुछ दिव्भुस निधन ही रह जाते हैं। इस विवेका से स्पष्ट है कि मनुष्य का पुरुषार्थ एक महान शक्ति है जो प्रायः सफल हो जाती है और कभी कभी निपल भी रह जाती है।

यह पुरुषार्थ मनुष्य की आत्मिक शक्ति के अनिश्चित धन-बाँट शक्ति नहीं है। पुरुषार्थ-रत्न भी जो धन-संपन्नता होती है उसका वास्तविक कारण वास्तविक परिस्थिति एक भाग में उपस्थित बाधाएँ हैं। इस धन-संपन्नता का वास्तविक धन-रक्षण कारण उस मनुष्य की पूर्व-वस शक्ति है जिसके कार्यान्वित होने में कुछ दुःख उत्पन्न करने वाली अनिष्ट साम-प्रिया उसको प्राप्त होती है जमा कि पश्चिम निणय किया जा चुका है। इस प्रकार की शक्तियाँ—पुरुषार्थ अर्थात् आत्मिक शक्ति एवं वस शक्ति—प्रत्येक मनुष्य के जीवन में प्रकटित काय करती रहती हैं। यदि दोनों शक्तियाँ परस्पर विरोधी हैं तो जो शक्ति अधिक बनवती होती है उनी के अनुसार काय होता हुआ दीगता है।

उदाहरणतः एक व्यक्ति गंगा नदी का धारा में बहता हुआ चला जाता है। यदि गंगा नदी के प्रवाह का बग उस बहने वाल व्यक्ति के विपरीत तथा उसके तरल की शक्ति से अधिक है तो उस व्यक्ति का तरल का प्रयत्न धारा प्रवाह के विरुद्ध निपल हो जाता है और उसको उम नदी प्रवाह के साथ बचना पड़ता है। यदि उम व्यक्ति के तरल की शक्ति गंगा नदी की धारा प्रवाह के बग से अधिक है तो वह व्यक्ति गंगा नदी के प्रवाह विरुद्ध तरल में सफल हो जाता है। यदि उस मनुष्य के

तरल का शक्ति प्रवाह की निशा में बान बर तो वह मनुष्य बड़ी सुगमता एवं वेग के साथ तरल में सफल हाता है। ठीक इसी प्रकार जब कम शक्ति का प्रभाव आत्मशक्ति (पुरुषाय) के विरुद्ध होता है और उस मनुष्य की आत्मशक्ति उस कम शक्ति का अपना बलहीन होती है तो उस मनुष्य का पुरुषाय व प्रयत्न सफल न हो पाता है। परन्तु जब उस व्यक्ति की आत्मिक शक्ति कमशक्ति के विरुद्ध होने लगे भी, उसमें अधिक बलवती होती है, तो वह व्यक्ति अपने प्रयत्न में सफल हो जाता है। यह अवश्य होता है कि ऐसी दशा में कमशक्ति के विरुद्ध होने के कारण उस मनुष्य को अनेक कठिनाइयाँ व आपत्तियाँ उठानी पड़ती हैं या उसकी सफलता में न्यूनता रहती है। यदि कमशक्ति (मनुष्य के) पुरुषाय के अनुकूल हो तो उस मनुष्य का उद्देश्य बड़ी सुगमता व सरलता के साथ पूर्णतया सिद्ध हो जाता है।

उपरोक्त वचन से स्पष्ट है कि मनुष्य का पुरुषाय (आत्मिक शक्ति) एक महान शक्ति है जिसे वह बड़ा बड़ा कार्य सम्पन्न कर सकता है। कम शक्ति का प्रभाव सब एकमात्र नष्ट करता है कभी तीव्र होता है और कभी मन्द। यदि मनुष्य कम शक्ति से मुक्त होना वा प्रयत्न निरन्तर उत्साह व दृढ़ संकल्प के साथ करता रहे तो उसकी आत्मिक शक्ति दिन पर दिन प्रबल होती हुई इतनी अधिक बलवती हो जावगी कि वह व्यक्ति कम शक्ति के विरुद्ध होने लगे भी अपने उद्देश्य व प्रयत्न में सफल हो जावगा।

यह प्रायः देखा जाता है कि कुछ व्यक्ति—जो अपने आत्मिक जीवन में अत्यन्त कामी प्राणी एवं दुराचारी य—अन्त में धान्न गयमी व सत्कारि हो जाते हैं^१। व पुनः—जो अत्यन्त अवस्था में इन्द्रिय वासना की तृप्ति में ही लगे रहते हैं और जिन्हें नाना प्रकार के मात

^१ श्री वाल्मीकि भारत में प्रसिद्ध ऋषि हुए हैं, जिनके नाम को उनकी रचित संहृत रामायण ने अमर कर दिया है। आरम्भिक जीवन में

विलास विषय भाग व साधना जुटान में ही आनन्द आता है—द्वितीयांश शारीरिक पाडापा से घबरा जाते हैं, तबिन स वाट के चुभने से रा पटन है पृथ्वी पर ज्ञान से कष्ट प्रतीत करते हैं भाजन व अभिय व अस्वाच्छिन्न ज्ञान से कृपित होकर उसको फेंक देते हैं। जब उनका चित्त साक्षात्कि भाग विनाम से हट जाता है उनका दृष्टिकोण बदल जाता है एवं उनका ध्येय आत्मगुडि बन जाता है तब आत्म समय व आत्म चित्तवा के लिये बन का माग लत है। तपस्या द्वारा आत्मगुडि करने लगते हैं। पृथ्वी पर लटके मच्छरा व वाटन, भूख प्यास शीत, उष्णता आदि शारीरिक कष्टों से उनका मन में कोई विचार उत्पन्न नहीं होता है। व शान्ति व साध प्रसन्नता पूर्वक इन कष्टों का सहन करते हैं उनका जीवन म इस विषय परिवर्तन का कारण उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन, आत्म सुधार का एक सर्वत्र एक आत्मगुडि व समय की ओर पूर्ण पुरुषार्थ के साथ सतत प्रयत्न करना ही है।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि यदि मनुष्य दृढ़ संकल्प करके धीरे धीरे निरन्तर आत्म शक्ति का प्रयत्न करता रहे तो उसकी आत्मिक शक्ति इतनी प्रबल हो जाती है एवं उसके अव्यक्त गुण व गुप्त शक्तियाँ इतनी विकसित हो जाती हैं कि उनके विपरीत तीव्र व तीव्र कम शक्ति भी अपना प्रभाव नहीं दिखा सकती हैं। जिम का प्रतिफल यह होता है कि जब पूर्व कृत कार्यों व कारण उत्पन्न कम शक्ति काय रूप में परिणत होती है (अर्थात् कम फल देता है) एवं उसका प्रभाव उस व्यक्ति व मन पर पडने लगता है और उसके कारण सुख दुःख काम शोध आदि भावना उत्पन्न करने वाली बाह्य सामग्रियों का संयोग होना है तब वह

श्री वाल्मीकि बुराचारी थे। उनका समय चोरी डाका डालने आदि में व्यतीत होता था। मनुष्य का प्राण से लना उनके लिये साधारण बात थी। अन्तिम काल में ऊँची अग्नी के श्रवण व महापुरुष बन गये थे।

व्यक्ति अपनी आत्मिक शक्ति की प्रावण्यता से कम जनित प्रभाव एवं भावनाओं का सफलता पूर्वक प्रतिरोध करना है। यह कर्म शक्ति उसकी भावना को विवृत करने में असमर्थ रहती है।

कम सिद्धान्त शीघ्रक अध्याय में यह निश्चित किया जा चुका है कि काय करने के समय काम शोध आदि भावनाओं में न जो भावना होती है उसी के कारण तथा अनुसार सूक्ष्म परमाणुओं में कम फल देने वाली शक्ति उत्पन्न हो जाती है। यदि मन वचन या शरीर द्वारा काय करने के समय मनुष्य के भाव गुण्ड हो अर्थात् काम शोध आदि अशुभ दया, पराणवार प्रम आदि शुभ भाव न हों तो उस समय सूक्ष्म परमाणुओं में किसी प्रकार की भी कम शक्ति उत्पन्न न होगी और न वह मनुष्य उस समय नवीन कम बचन से युक्त होगा। यदि मनुष्य पूरा पुरुषार्थ से काम ले, दृढ़ स्वल्प के साथ अभ्यास द्वारा आत्मिक शक्ति को इतना दृढ़ कर ले कि पूरे सचित कर्म शक्ति के कार्यावित हान पर भी उसमें काम शोध आदि कोई भी विभाव उत्पन्न न हो सके तो उस समय उसने नवीन कम बचन नहीं होगा। एसी दशा निरन्तर होते रहने पर उसके पूरे सचित कम काय रूप में परिणत हान से कम शक्ति विहीन होते जावेंगे और वह व्यक्ति रागद्वेषादि विभावा के न होने से भविष्य में नवीन कम बचन से मुक्त रहगा। एम। करते करते एक समय आ जावगा जब कि उस व्यक्ति के पूरे सचित समस्त कम परमाणु कम शक्ति विहीन हो जावेंगे और वह व्यक्ति कम बचन से सवथा मुक्त हो जावगा। कम बचन से मुक्त होते ही, उसका शुद्ध आत्म स्वरूप—जो कम परमाणुओं से आच्छादित व विवृत हो रहा था—प्रगट हो जावगा। वह आत्मा एक दम अपने दिव्य स्वरूप पूरा ज्ञान दशन व वीर्य को प्राप्त कर लगा एवं अपनी विक दिव्य आनन्द में सदैव के लिये मग्न हो जावगा। कम परमाणुओं के समूह कार्माण शरीर के सबथा नष्ट हो जाने से, ससार अमण राग व्याधि आदि समस्त दुला से सत्ता के लिये मुक्त हो जावगा।

२—चिदानन्द स्वरूप प्राप्ति का मार्ग

यह निश्चय हो जान पर कि आत्मा का शुद्ध चिदानन्द स्वरूप प्राप्त किया जा सकता है, यह जानना परमावश्यक है कि मुमुक्षु जीव किस माप का अवलम्बन कर कि जिसपर चल कर वह अपने शुद्ध ज्ञान ध्यानदमय स्वरूप को प्राप्त कर सके।

मुमुक्षु प्राणी के निय आवश्यक है कि सबसे प्रथम छानबीन करके अपने वास्तविक स्वरूप का निश्चय करे। जब तक आत्मा निश्चित नहीं, तब तक उसके (आदर्श के) प्राप्त करन का मार्ग बस ठूँडा जा सकता है। इसलिय प्रयत्न पूर्वक दन्ता के साथ निष्पन्न भाव से भिन्न भिन्न बातों का निणय करके अपने वास्तविक स्वरूप का यथाय ज्ञान प्राप्त करे। जब उसको यह निश्चित हो जाव कि उसकी आत्मा पूर्ण ज्ञान से प्रकाशित एवं दिव्य आनन्द से भरपूर है उसका यह ज्ञान ध्यानदमय स्वरूप उसके पूर्व सचित कर्मों से आच्छादित व विकृत हो रहा है, जिसके कारण उसकी आत्मा अज्ञानी काम क्रोध आदि भावनाओं से मुक्त अनक प्रकार के दुःख एवं चिन्ताओं से पीडित दीखता है, यह कार्मण शरीर पूर्वकृत कार्यों के समय जो रागद्वेष रूप उसकी वृत्तियाँ थीं उनके कारण सचित हुआ, यह व्यक्ति काम क्रोध आदि समस्त भावना एवं वृत्तियों के त्यागने अर्थात् वीतराग होने से भविष्य में नवीन कर्म बन्धन से मुक्त रह सकेगा और साथ ही साथ पूर्व सचित कर्म बन्धन को नष्ट भी कर सकेगा इन पूर्व सचित कर्मों के बन्धन से मुक्त होने पर उसका शुद्ध स्वरूप—जो ज्ञान के तज में प्रदीप्त है अलौकिक दिव्य आनन्द से ओत प्रीत है अनन्त शक्ति से युक्त है शक्तिमयी है—प्रकट हो जावगा। इन बातों की दृढ़ भावनाओं उसके हृदय में मली भाति प्रकित हो जानी चाहिये।

नदेहात्मक भावों को—जो प्रायः हृदय में उठा बग्त है—विवेक बुद्धि तीव्र आलोचना एवं आदिश पश्चात्ताप व अस्त्रों से भेद कर निकाल दे। उपरोक्त बातों का सन्देह रहित अद्वान हृदय-पटल पर भली भाँति अंकित हो जाना चाहिये। शुद्ध चिन्तन प्राप्ति का आदान सदैव सामन रह एव उसकी प्राप्ति के लिये गतन प्रयत्न नील रहे। अद्वान का दीप हृदय में सदा प्रज्वलित रह। इसके प्रकाश बिना अज्ञान अधकार म माग नहीं मिलेगा और पद पद पर माग से विचरित होना पडगा। अद्वान का दीप हृदय में उस समय तक प्रज्वलित रह जब तक उसका स्थान ज्ञान का प्रकाश नहीं ल लेता है।

माग पर चरते हुए मुमुक्षु यात्रीय हृदय म प्रायः भ्रम उत्पन्न होने लगता है, विश्वास की नींव हिलन लगती है नाना प्रकार व प्रलोभन चित्त को आकर्षित करनेवाला मनोहृ आकृतिया धारण करके उसके चित्त को ढावाडोल कर देने है। उसको भासन लगता है कि सांसारिक सुखों के त्यागने में उसन मूढता की है य सांसारिक माग तो उसके लिय ही बनाय गये है। ऐसी दशा में उसकी एव अतोन्वी स्थिति हो जाती है। इस सन्देह व भ्रमात्मक स्थिति हो जान पर उसको तीव्र विवेक बुद्धि द्वारा आत्मस्वरूप वतमान स्थिति अन्निम ध्यय आदि की परीक्षा पुन करनी पडती है। इस परीक्षा के करन पर उसका हृदय निमल हो जाता है उसका आन्श अधिव स्वच्छ होकर पुन उसके हृदय मन्दिर में विराज मान हो जाता है, भ्रम नष्ट हो जाता है और अद्वान का वाप पुन द्विगुण प्रकाश से प्रज्वलित हो उता है।

बह सत्य का यात्री पूव सचित वम शक्ति को—जिसके कारण उसकी वतमान स्थिति जान हीन मलिन एव विकृत हो रही है—नष्ट करने व लिय उद्यत होना है। काम क्रोध आदि बुक्तिया तथा अगुम भावनाओं को—जिनके कारण नवीन वम शक्ति उत्पन्न होती है—रौबने के लिय तत्पर होना है। य बुक्तिया व अगुम भावनायें मनुष्य

का अनक प्रवार का इच्छा व वासनाओं से उत्पन्न होता है। इनका रोकना सुगम ही नहीं वरन् अत्यन्त दुष्कर है। य वासनायें हृदय सागर में जलनरग की भाँति उठा करती हैं, मन की शान्ति को भग करके उस क्षुब्ध कर देती हैं। य वासनायें उन्नी समय रोजी जा सकती हैं जब मन नियन्त्रित हो जाय उन्की चञ्चलता समय के अनुशा द्वारा वग में कर ली जाय। वासना रोकन एव मन को नियन्त्रित करने के लिये आवश्यक है कि सत्य का यात्री इन्द्रिय जनित विषय वासना को त्याग। स्त्रियों व साथ भाग विलास करन मस्तिष्क आदि मादक वस्तुयें पीकर मदोन्मत्त होने अनक प्रवार व स्थायिष्ठ भाजन करन की लालसा मुन्दर युवतिया व हाव भाव पूष गाना सुनन एव नाच देखन की इच्छा, अनक प्रवार के अटवाल भेडकीन, मन को डावाडान करन वाले वस्त्र पहिनन तथा इतर फुल्ल प्रीम (Cream) आदि अनक सुगन्धित एव सौन्दर्य वधक पदार्थों से शरीर को सुमज्जित करन की भावना को छोड दे। शाराश में उसको अपनी समस्त पाशाविक वक्तियों पर नियन्त्रण का अनुशा लगाना पडगा। शरीर को वग में रखन के लिय भोजन की मात्रा एव सख्या में कमी करनी होगी। कभी कभी उपवास करना होगा। श्रम को मिटान के लिय शरीर को आवश्यक आराम देते हुए निद्रा शान्ति का समय नियत करना हागा। आलस्य व प्रमाद को अपन से दूर रखना होगा। दैनिक व्यवहार में छल कपट दूसरों को धोखा देना असत्य बोलन आदि छोडना होगा। अपनी इच्छाओं को सीमित रखन के निय आवश्यक पदार्थों की सख्या मात्रा आदि में भी परिस्थिति के अनुसार नियम बनाने हाग। इस प्रकार प्रयत्न व अभ्यास करते रहन से उसकी क्षुद्र वक्तिया निबल पड जायेंगी तथा अन्तर्भावनाय पुन हान लगेंगी। इन क्षुद्र वक्तियों के निबल होन के साथ साथ, उन्के हृदय में दया प्रेम परोपकार शान्ति नम्रता निभयता शान्ति सत्गुणा का भी प्रादुर्भाव होगा।

सत्य व यानी के माग में प्रबोधन आकर कभी कभी चटान की

मानि खटे हो जावेंगे। वासना व इच्छायें मुगमता से परास्त नहीं होगी। उनके साथ घोर सप्राभ करना पडगा। य बार बार नाना प्रकार के गुन्दर भावप्रक रूप बना कर उसको सनचायगी और उसको भ्रम में डाल कर समाग मे विचलित करन का प्रयत्न करेंगे। जब कभी—जहा कहीं—भवसर मिलगा, य वासनायें अप्रत्यक्ष आघात करेंगी और उसको सत्यप स भ्रष्ट करन का उद्योग करेंगी। एम कठिन भवसरा पर आदर्श क प्रति भ्रूट श्रद्धा का प्रज्वलित दीप उसक पथ को प्रवाणित रखगा और वासना के सुभान वाल प्रबोधनो म उमकी रक्षा करगा। इस कटका कीण माग म निकल जाने पर, उसमें आत्म गतिन आत्म विदवास साहम निभयता विवक आदि सन्गुणा का विकाम अधिकाधिक होन लगगा।

वासना का नियन्त्रित रखन के लिये आवश्यक ह कि सत्यप का यात्री अपन प्रतिष्ठिन के कायों की समालोचना कर। जो काय उसने किय हो जो शब्द उसन बोल हों या जा विचार उसके हृदय में आय हा उनका साथता की कसौटी पर निदयना के साथ जाच। जाचन पर जो विचार काय या वचन निन्द या क्लुपित प्रमाणित हा, उन पर हासिक पश्चात्ताप कर एव सबल्य कर, कि भविष्य में ऐसे गहित काय वचन या विचार न करेगा। महामा गाधी, इब्राहाम लिन्कन आदि महान पुरुषा की जावनिया बनलाना ह कि दनिक कायों की समालोचना द्वारा ही ये महान् पुरुष अपनी आत्माभा को उन्नत बना सके ह। इस प्रकार दनिक दिनचर्या की भनीभाति समीक्षा करन से उसका चरित्र एव मनोवृत्तिया धनीव निमन व शुद्ध हो जावेंगी।

सत्यप यात्री को उपहास के द्वार में से निकल कर जाना होगा। उसके प्रिय मित्र उसका उपहास व मत्वाल उद्धान लॉग, उसका मूख व मनरी कहेंगे। उसके व्यवहार को सामाजिक जीवन के विरुद्ध व हानि कारक समझेंगे। वे उसक हृदय में पान के प्रवर्तित प्रकाश का न देख सकेंगे। अपन का अधिक बुद्धिमान समझ कर उसका उसके कृतव्य पर

उपलक्षण देन योग्य । इससे उसके हृत्पथ में मानसिक बदना व ग्लानि उत्पन्न होगी उसका अपन चारों ओर अन्कार दिखाई पड़ेगा । कुछ काल तक उसकी दशा कर्तव्य विमूढ़ सज्ञाहीन सदा हो जावेगी । यह मानसिक बदना उसके आत्मस्वरूप एवं आत्मा पर गहन दृष्टि से विचार करने के लिये बाध्य करेगी । इस आत्म स्वरूप मनन से उसे प्रतीत हो जावेगा कि उसकी यह मानसिक बदना उसके हृदय की एक गुप्त वासना का परिणाम है । यह वासना उसके हृत्पथ में अपना योग एवं मित्रा के द्वारा अपनी प्रणसा गुणन की भावना के रूप में प्रगट हुई है । इस सत्य के भासन पर मानसिक बदना उसके हृदय से सुप्त हो जावेगी उसका चित्त निमल ज्ञान से प्रकाशित होकर शान्त हो जावेगा । शान्ति व प्रेम से परिपूर्ण होकर यात्रा आत्मा के भाग पर भाग बढ़ेगा ।

मुमुक्षु यात्रा की सत्य पर चर्चत हुए भाग यह जान पड़ता है कि वह अक्लान्त रह गया है स्त्री-पुत्र आदि वृद्धि की जन मित्र आदि हित चिया न उसे परियक्त कर दिया है उसका कोई साथी नहीं है । अपन को अकेला प्रतीत करके उसका चित्त सन्तुष्ट हो जाता है मन उचट जाता है सगार अघकारमय गमन लगता है उसकी दशा विचित्र हो जाती है अनेक प्रकार के विकल्पा के भवर में गोता लगाने लगता है । कुछ समय तक ऐसी दशा में रहने पर उसका ध्यान समार की परिधनशील एवं अस्थिर अवस्था की भार जाता है । पूर्व सचिन कर्मों के कारण प्राणा किन प्रकार भिन्न भिन्न योनियों में, अनेक प्रकार के कष्ट व यत्रणायें अकेला सह रहा है कोई उसके दुःख को दूर नहीं करता है न उसको विपत्ति से बचाता है उसकी अकेला ही मसार में भ्रमण करना पड़ता है । इनका चित्र उसके नत्रा के सामने धूमन लगता है । यह जान कर उसका हृदय सन्तुष्ट हो जाता है कि मानव समाज किस प्रकार अपनी वासना पुत्ति के लिये सासारिक सपर्य में फसा हुआ शारीरिक कष्ट एवं मानसिक चिन्ता से व्यथित है । उसी अवस्था में उसके हृदय से अकेल

पद की अनुभूति का दुःख लुप्त हो जाता है। उसका हृदय में मानव समाज एवं प्राणीमात्र के दुःखों के साथ सहानुभूति दया व प्रेम जागृत हो जाता है। उसका मन मानव समाज के कल्याणकारी कार्यों की ओर प्रवृत्त हो जाता है। प्राणिमात्र की विधायक मानव समाज की, सेवा करना अपना कर्तव्य समझने लगता है। अज्ञान अधकार व; दूर करन विद्या का प्रकाश फलाने रोगियों के लिये चिकित्सा एवं औषधि का प्रबंध करन निधन दान मनुष्या के लिये जीविका के काय ढडन आर्थिक सहायता पहुंचान तथा दुःखित जीवों के कष्ट निवारण करन के लिये उद्यत हो जाता है। मनुष्य पशु पक्षी, कृमि आदि किसी प्राणी को कष्ट देना उसे अशुचि प्रताप हाने लगता है। पशु पक्षी आदि प्राणियों का हिंसा का सबया त्याग कर देना है। व्यापार आदि सासारिक कार्यों में अथ मनुष्या के साथ प्रतिभांगिता करना उसे अच्छा नही लगता है, जिसमें कष्ट सं मनुष्य—जो उससे पहिले व्यापार आदि के कारण दृष्ट करते थे—प्रेम करने लगते हैं। सच्चरित्र एवं उच्च वृत्तिधारी मनुष्य—जिनसे वह पहिले परिचित भी न था—उसके सहवास के इच्छुक हो जाते हैं और उसके पास आन लगते हैं।

अत्र वृत्तियों के नष्ट होने पर उस सत्य यात्री के हृदय में शान्ति व उच्च वृत्तियों का प्रादुर्भाव हो जाता है। उत्तरं हृदय में शान्ति, प्रेम सत्य दया क्षमा नम्रता सरलता उदारता आदि उच्च भावनाओं का साम्राज्य स्थापित हो जाता है। ज्ञान के प्रकाश से उसकी अन्तरात्मा प्रदीप्त होने लगती है उससे हृदय सागर में लिव्य अलौकिक आनन्द की लहरें एक के बाद दूसरी उठन दगती हैं और वह अपनी आत्मा में अपूर्व स्मृति व आह्लाद अनुभव करता है। उसका हृदय निमल, उदार व विंगल हो जाता है, किन्तु प्रेम, ज्ञान एवं आनन्द से ओत प्रोत हो जाता है। ऐसी स्थिति में शरीर संभव कम हो जाता है। मोह के क्षीण होने से व्यापार आदि सासारिक कार्य उसका अमष्ट प्रताप होने लगते हैं।

स्त्री पुत्र मित्र गृह धन धान्य आदि वस्तुओं से चित्त हट जाता है। गृह में निममत्व होकर जल में कमल की भांति अलिप्त रहता है, भयवा गृह त्याग कर सयामी जीवन व्यतीत करने लगता है। निममत्व दगा की महिमा तत्वज्ञान तरंगिणी में निम्नलिखित शब्दों में का है —

निममत्व पर तत्व ध्यान चापि व्रत सुख

शील स्वरोधन तस्मान्निममत्व विचिन्तयेत् ।

अर्थात् निममत्व होना महान तत्व है यही ध्यान, व्रत सुख, शील एवं इन्द्रिय निरोध है इसलिये निममत्व भाव का सदा चिन्तन किया जाय। निर्मोहा की दगा साम्य, स्थितप्रज्ञ सदा हो जानी है। भगवद् गीता में (२-५५ ५६ ५७ ५८ ७१) स्थितप्रज्ञ की स्थिति निम्न प्रकार बतलाई है —

प्रजहाति यदा कामान्सर्वापाथ मनोगतान् ।

आत्मन्यवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥५५॥

दुःखेष्वनुद्विग्नमना सुखेषु विगतस्पृहः ।

धीतरागभयशोकः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥५६॥

यः सवत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।

नाभिनन्दति न द्विषि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥५७॥

यदा सहर्तते चार्यं कूर्मोऽग्नीवीव सवशः ।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥५८॥

विहाय कामाय सर्वान्पुमांश्चरति निस्पृहः ।

निममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥७१॥

अर्थात् हे पाप (अज्ञान)! जब कोई मनुष्य अपने मन में उत्पन्न हुई ममत्त वासनाओं को त्याग देता है और अपने आप ही में सन्तुष्ट होकर रहता है उसको स्थित प्रज्ञ कहते हैं। दुःख से जिसके मन को वेद नहीं होता है सुख में जिसकी आसक्ति नहीं है और जिसके राग, भय शोक नष्ट हो गये हैं उसको स्थित प्रज्ञ मुनि कहते हैं। सब बातों में जिसका

मन भासवित रहित हो गया है और जिसको यथा प्राप्त धुम भयवा भ्रमन वस्तुमें प्रसन्नता या विषाद नहा होता है उसकी बुद्धि का स्थिर कहा जाता है। जिस प्रकार कछुवा अपने हस्तेपाद आदि अंगों को सब ओर से सिकुड़ लाता है, उसी प्रकार जब कोई मनुष्य अपनी इन्द्रिया को भोग बिनास भाँति (इन्द्रिया के) विषया से हटा लाता है तब उसकी बुद्धि का स्थिर कहा जाता है। जो पुरुष सब प्रकार की कामनाओं को त्याग देता है एवं निस्पृह होकर व्यवहार करता है तथा जो ममत्व व अहंकार से विमुक्त है उसे ही सांख्य मितनी है। इस साम्य स्थिति के सम्बन्ध में श्री अमृतगति आचार्य ने 'सामायिक पाठ' में कहा है —

दुःखे सुखे परिणि बधु वर्गं,
योगे विषागे भवने वने धा ।
निराकृता येव ममत्व बुद्धे,
सम मनो मेजसु सदापिनाय ॥

अर्थ—हो नाथ ! समस्त मोह ममता को नष्ट करके एही साम्य स्थिति में हृदय को प्रदान करो कि जिसमें मैं सुख व दुःख में समान व मित्र में लाभ व हानि में गुरु व धन में एक ही समान रहूँ।

इस साम्य भाव को पंडित जुगलकिशोर जी ने 'मिरी भावना' नामक पाठ में बड़ी ही सुन्दर ललित शक्ति में बताया है —

होकर सुख में मान न फूले, दुःख में कभी न घबड़ावे ।
पवन नदी इन्सात भयानक, झटकी से नहीं भय लावे ॥
रहे अश्लेष-अकृप निरंतर, यह मन दुद्धतर बन जावे ।
दृष्ट विषय अविष्ट योग में, सहन शीतता दिललावे ॥

एही साम्य स्थिति हो जाने पर वह सत्य का यात्री समय व तप द्वारा पूरे सचित कर्म शक्ति को धर्म के साथ नष्ट करने लगता है एवं नवीन कर्मों का बन्धन भी नहीं करता है। जितनी जितनी पूरे सचित कर्म शक्ति प्राप्त होती जाती है उसकी नवीनी ही सत्य का यात्री

शक्तियों का विश्वास होने लगता है उसका वृत्ति व भावनायें शक्ति स्वच्छ व निमल होना जाती है उससे अत्यन्त ज्ञानानन्द स्वभाव प्रकाश बढ़ता जाता है। धर्म पूर्वक प्रयत्न करते करते ऐसा समय इस आगामी जीवन में आ जाता है कि जब उससे समस्त धाति कम मानुषी का बंधन टूट जाता है। सम्पूर्ण धाति कम शक्ति नष्ट हो जाती है। इस धाति कम शक्ति के नष्ट होने ही वह अपन शुद्ध स्वरूप अज्ञान ज्ञान ध्यानन्द व वायु स जगमगा उठता है। वह आत्मा जीवन्मुक्ति हाकर पूर्ण ध्यानन्द से भ्रान्त प्रीत हो जाता है एक उस दिव्य अनुपम शक्ति ध्यानन्द को आस्वादन करता हुआ उसमें मग्न हो जाता है। उस दिव्य ज्ञान ज्योति में समार के समस्त पदार्थ उनके सब गुण एक एक समस्त अवस्थाय भक्तिकर लगनी है। विद्व प्रम स प्ररित होकर उस दिव्य वाणी का संचार होता है, जिसे सुन कर समार के प्राणिया मोह निद्रा भग हो जाता है एक व समाग पर लगते हैं।

आयु तथा अन्य अधाति कमों के नष्ट हो जाने पर सुक्ष्म कार्माणि शरीर छिन्न भिन्न हो जाता है इस सुक्ष्म कार्माणि शरीर के नष्ट होते ही वाह्य भौतिक शरीर स भी सम्बन्ध छूट जाता है। वह जीवन्मुक्ति आत्मा श्रुत वायु होकर परमात्म अवस्था को प्राप्त हो जाता है। समार के उच्च भाग में जाकर विराजमान हो जाता है। वहाँ वह अज्ञान शब्द चिदानन्द स्वरूप में मग्न हाकर अनन्त काल तक दिव्य अनुभव अलौकिक ध्यान सुख को भागता रहता है एक उसकी दिव्य ज्ञान ज्योति में समार के समस्त पदार्थ आलोकित होते रहते हैं। कमशक्ति के नष्ट तथा नष्ट एक सुक्ष्म कार्माणि शरीर के सबधा छिन्न भिन्न हो जाने पर कोई शक्ति नहीं रहती है जो उस परमात्मा के शुद्ध ज्ञान ध्यानन्द स्वभाव में विघ्न डाल सके या उसमें रागद्वेष आदि विभाव उत्पन्न कर सके इसलिये वह मुक्त आत्मा अपन शुद्ध चिन्तानन्द स्वरूप में मग्न हो जाने के लिए मग्न हो जाता है।

३—निवृत्ति मार्ग

मानव समाज के विकास मनुष्य के जीवन निर्वाह स्त्रा-पुत्र आदि कुटुम्बी जन की रक्षा व भरण पोषण समान व राष्ट्र की सुव्यवस्था रक्षा आदि बाना का दृष्टि में रखन से उपरोक्त सत्भाग को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है -

(क) ग्रहण्य भाग—यह भाग जो मानव समाज के उन समस्त मनुष्यों के लिये उपयोगी है जो व्यापार आदि करके धनापाजन करते हैं, विवाह करके पत्नी सहित घर में रहने हुए सांसारिक सुखा का उपभोग करते हैं सनान उत्पन्न वस्तु सृष्टि क्रम का जारी रखन है स्त्री पुत्र आदि का पोषण करते हैं जिन्हें आमोत्त प्रमाण के कार्यों में भाग्य्य आता है जिनका हृदय विषय वासना की तृप्ति से हटा नहीं है तथा जो समाज एवं राष्ट्र की गिना रक्षा सुव्यवस्था आदि कार्यों में लगे हुए हैं।

(ख) त्याग्य भाग—यह भाग जो उन मनुष्यों के लिये शयस्कर हैं, जिनका हृदय समार की दुःखमयी, चिन्ता युक्त परिवर्तन गीत एवं सवय पूण अवस्था से हट गया है माह व ममता के नष्ट हो जान से जिन्हान स्त्री, पुत्र, गृह धन धाय व्यापार आदि सांसारिक कार्यों से भ्रमना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया है एवं जो घातम स्वरूप की वास्तविक स्थिति जानन ज्ञान, भ्रान्तमय गुद्ध स्वरूप की प्राप्ति के इच्छुक है जिहान काम श्रेय आदि तुच्छ वस्तुओं का त्याग किया है तथा इन क्षत्र वस्तुओं के नाश हो जान से जिनके हृदय में दया प्रेम आदि उच्च वृत्तियों का प्रादुर्भाव हो गया है। इस प्रकार मनुष्य की परिस्थिति मानसिक स्थिति एवं विकास पर दृष्टि डालन से सत्भाग व उपरोक्त दो भेद हो जाने हैं जिनका समिष्ट वगन निम्न प्रकार किया जा सकता है।

(क) गृहस्थधर्म (पंच अणुव्रत)

गुह्य चिदानन्द स्वरूप प्राप्ति माग वं उपरोक्त विवचन से निम्न त्रिखिन पाच नियम उद्धत किय जा सकत ह जिन नियमो के मलन पूवक पालन करन मे गहस्थी, मुमुक्षु जीव अपन उद्देश्य की प्राप्ति कर सकता ह —

(१) अहिंसा व्रत—मानव व पशु समाज के किसी प्राणी को भी कष्ट न दे, न एसा बचन बोल जिससे किसी प्राणी का दुख हो और न किसी प्राणी का अहित विचार । मुमुक्षु जीव को इस प्रकार व्यवहार करना चाहिये कि जिससे न किसी मनुष्य या प्राणी का प्राण सहार हो और न किसी प्रकार का शारीरिक या मानसिक कष्ट ही पहुचे । ससार में रह कर जीवन निर्वाह के हतु व्यापार आदि काय करन में सब प्रकार की हिंसा स बचना मनुष्य क लिय असम्भव ह बहुत स कृमि कीट आदि छोट छोट जन्तुप्रा की हिंसा प्रति दिन हुमा करती ह जस —

(घ) आरम्भिक हिंसा—भाजन बनान आग जना भजन करन आदि आरम्भिक कायों में बहुत से छोटे छोटे जीवा की—जिनमें से कितन ही दिखलाई भी नहीं देते ह—हिंसा हुमा करती ह, जिनसे सवथा बचना गहस्था के लिय असम्भव ह ।

(ङ) उद्योगिक हिंसा—कृषि आदि व्यवसाय में बहुत से छोटे छोटे जीवा की हिंसा हुमा करती है । इन छोट छोटे जीवो की रक्षा करना असम्भव ह । कृषि, व्यापार आदि उद्योग बिना, जीवन निर्वाह हा नहा सकता इसलिये उपरोक्त प्रकार की हिंसा अनि वाय ह ।

(ग) विरोधी हिंसा—मनुष्य को अपनी स्त्री पुत्र आदि कुटुम्बी जन की समाज व राष्ट्र की डाकू चुनेर, शत्रु आदि विरोधी प्राणियो

स रक्षा करनी पड़ती है। ऐसी दशा में उत्तम जान तो यह है कि मनुष्य, अपनी आत्मिक शक्ति द्वारा शान्ति के साथ शत्रुभा का प्रतिरोध कर जीवन देकर अपने आश्रित जगत् की रक्षा करे। परन्तु यदि मनुष्य में, शान्ति के साथ आत्मिक शक्ति द्वारा, प्रतिरोध करने की सामर्थ्य नहीं है तो उसके लिये उचित है कि शस्त्र द्वारा शत्रु एवं डाकू आदि विरोधी मनुष्यों के आक्रमण का प्रतिरोध करे। यदि अपनी आश्रित जन एवं समाज व राष्ट्र की रक्षा करने में आश्रान्ता का सहारा भी हो जाय तो भी वह गृहस्थी अहिंसा अनुभव का पालक ही कहलायगा क्योंकि उसकी भावना हिंसा करने की नहीं है।

डाकू व शत्रुभा के आक्रमण होने पर भय से कम्पित होकर भाग जाना कदापि उचित नहीं है। भय मानसिक दुर्बलता है इसको अपने पास भी नहीं आना देना चाहिये। इस प्रकार गृहस्थी मनुष्य के लिये उपरोक्त आरम्भिक उद्योगिक एवं विरोधी हिंसार्थे अनिवाय है। गृहस्थी कभी भी उपरोक्त प्रकार की हिंसा करने का इच्छुक नहीं होता है। उसकी भावना तो सदा यही रहती है कि किसी प्रकार की भी हिंसा न हो न किसी प्राणी को बर्ष पड़वे। प्रत्येक वाय को सम्मान कर करता है कि जिससे क्षुद्र जीवों की भी हिंसा बिल्कुल न हो या कम से कम संभव हो। हिंसा की भावना के नियमान न होने से वह गृहस्थी हिंसा के पाप का भागा नहीं होता क्योंकि भावना ही कम बचन का कारण है। हिंसा शान्ति अनुभव भावना से अनुभव कर्मों का बचन होता है और भावना रहित गुड़ वातराग अवस्था में किसी भी कर्म का बचन नहीं होता है।

(घ) सकल्यो हिंसा—उपरोक्त दशाओं के अनिश्चित मनुष्य का कर्तव्य न कि विचार, सकल्य द्वारा या प्रमाद वश कभी किसी प्राणी का जीवन नष्ट न करे। अपने स्वाद या शौक के लिये किसी पशु या पक्षी को न मारे न उनका शिकार कर न मांस भक्षण कर और न ऐसी

वस्तुओं का—जो पशु पक्षी आदि जंतुओं के मारे जाने से बनती है—
उपयोग करे। शरीर रक्षा के लिये अन्न दुग्ध, घृत पत्र शाक आदि
वनस्पति पर ही निर्वाह करे। उनके लिये उचित है कि किसी मनुष्य
पशु पक्षी जलचर कीट आदि जंतु को न सतावे न उनके साथ कठोरता
का बर्ताव करे न उनका अहित विचार। सेवक सेविका आदि आश्रित
मनुष्यों के साथ क्रूरता का व्यवहार न करे। किसानों के प्रति कठोर
वर्ताव करना या उनसे इतना अधिक भूमि कर लेना, जिससे देने पर उनका

(१) चमड़े का प्रयोग में अधिक लाना उचित नहीं है, चमड़े के
हेतु बहुत से पशु मारे जाते हैं। केवल उस चमड़े के—जो स्वयं मृत पशु
से प्राप्त होता है—जूते आदि का प्रयोग में लाया जाना ठीक कहा जा
सकता है।

(२) बहुत से पक्षियों के प्राण, उनके सुन्दर परों के लिये हरण
किये जाते हैं, इसलिये अहिंसा प्रेमी सज्जनों को उचित है कि इन परों
को प्रयोग में न लायें, न यूरुपवासी महिलायें इन परों को अपने टोप
में लगायें।

(३) रंगम को भी प्रयोग में लाना उचित नहीं है क्योंकि इससे
तय्यार करने में लाखों कीड़ों के प्राण पानी में उबाल कर लिये जाते हैं।
कीड़ों के प्राण लेने के पश्चात्, उनके शोषों से रंगम के तार उतार लिये
जाते हैं।

पुनर्जन्म शीघ्रक अध्याय की टिप्पणी में यह दिखलाया गया है
कि वृक्ष आदि वनस्पति में भी जीव है। वृक्ष आदि वनस्पति में, मनुष्य,
पशु, पक्षी आदि प्राणियों की अपेक्षा, चेतना आदि आत्मिक शक्तियों का
विकास बहुत कम है। जीवित रहने के हेतु मनुष्य के लिये आवश्यक है
कि किसी न किसी प्रकार का भोजन किया जायें, इसलिये यह उचित ही
है कि मनुष्य पशु पक्षी, जलचर आदि प्राणियों का—जिनमें ज्ञान आदि

जीवन निर्वाह भी न हो सके, उचित नहीं है। न मजदूरो से इतना अधिक या इतनी देर तक काम करना उचित है कि जिससे उनका स्वास्थ्य बिगड़ जावे। इसी प्रकार ऋण पर इतना अधिक ब्याज करना कभी भी उचित नहीं ठहराया जा सकता, जो 'पाप, मनुष्यता भ्रान भाव के विरुद्ध हो और जिस ब्याज के ल लन पर ऋणी तथा उससे कुटुम्बी जन के निर्वाह साधन ही नष्ट हो जावें। गाड़ी, टमटम, यदि वाहना में चलनेवाले बल व घोडा के साथ भी दया का बर्ताव किया जाना चाहिये उन पर अधिक बोझा लगाना या शक्ति से अधिक दूर तक ले जाना कदापि ठीक नहीं है।

(२) सत्यव्रत—सत्य वचन कहना उचित है। अपने अधिक प्राणि जाम के लिये दूसरो को धावा देना या इस प्रकार कहना भक्त करना या चुप रहना—जिसने दूसरे मनुष्यों को भ्रम हो जावे या व प्रयत्न प्रकार समझ जावें—असत्य आचरण है। यदि सत्य कह देन से कोई बड़ा अनर्थ होता है तो ऐसा सत्य भाषण भी उचित नहीं है। यदि किसी सत्य बात का कह देन से किसी के घर कलह तथा आपस में मार पीट होन की आशंका हो तो ऐसी सत्य बात का कहना कभी भी उचित नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार यदि कोई चार हाथ या अन्य व्यक्ति किसी व्यक्ति के धन अपहरण करन के हेतु, उस व्यक्ति के घर का भेद लेना चाह और अपने दुष्ट अभिप्राय का छिपा कर मीठी मीठी बातें बनाव, तो ऐसी अवस्था में उससे सत्य कह देना कभी भी उचित नहीं

आत्मिक शक्तियाँ अधिक विकसित हैं एवं जिनके प्राण सने में अपने परिणाम भी अधिक कठोर होते हैं—भक्षण न करे। जीवन निर्वाह के लिये आत्मिक शक्तियों में सबसे कम विकसित वनस्पति पर ही सन्तोषित रहे। वृक्ष व पौधो को भी आवश्यकता से अधिक दृष्ट न दे, न उनको तोटे।

कहा जा सकता। ऐसे अवसरों पर भी धारण करना ही उपयुक्त है। दूसरे मनुष्यों के गौरव कम करना या अपमान फलान के हेतु उनके गुप्त दोषों का प्रकट करना या अन्य प्रकार की बुराई करना अनुचित है। परन्तु यदि समाज या राष्ट्र के किसी उत्तरदायित्व पर किसी दुष्ट मनस्य की नियुक्ति का प्रश्न है या उस मनुष्य के द्वारा राष्ट्र को किसी प्रकार की हानि पहुँचाने की संभावना है, यदि उस समय उसकी दुष्टता प्रकट नहीं की जाती तो राष्ट्र का अहित होगा। ऐसी दशा में समाज के लाभाय उसके गुप्त दोष एवं दुष्ट अभिप्रायों को प्रकट करना अभी भी अनुचित नहीं ठहराया जा सकता। अन्य मनुष्यों से बठोर बर्तन हृदय भरी घबराहट कहना या माली देना अनुचित है। बचन सर्व हित मिष्ट एवं सत्य होने चाहियें। सत्यव्रती के लिये उचित है कि वह सत्य सत्य की खोज कर प्रत्येक बात पर निष्पक्षवृद्धि से विचार एवं मनन कर सत्य के लिये सब कुछ त्याग करने के लिये तत्पर रहे जो सत्य प्रताप हो उसको अंगीकार कर जो विचार धारणायें असत्य मालूम हों, उनका त्याग दे।

(३) अर्थात् धन—स्वायं वगैरे अन्य व्यक्तियों के धन आदि पदार्थों का अपहरण करना निन्दनीय चोरी कम है। यदि कोई सम्पत्ति या वस्तु सुपुत्र की जाय उस वस्तु को हड़प कर लेना या थोड़ा देना भी चोरी म सम्मिलित है। चोरी किये हुए भूषण आदि वस्तुओं को थोड़े से मूल्य में खरीदना भी चोरी ही है। दूसरे मनुष्यों का चोरी करने की प्रेरणा करना उनका देना चोरी ठाक आदि कार्यों की प्रशंसा करना सबका अनुचित है। दूसरे व्यक्ति की वस्तुओं को दबाव डाल कर धोखा देकर या बहवा कर लेना भी इस अर्थात् धन के विरुद्ध है। किसी अन्य व्यक्ति की अनजानता दुर्व्यवस्था या भूलता से लाभ उठा कर उसकी बहुमूल्य वस्तु का कम मूल्य देकर लेना भी इस धन में भूषण आता है। अनुचित लाभ उठाने के लिये चुगी से बचने के हेतु धिपा कर वस्तु

को नगर में लाना चुगी व अपमरा को बनावटा बाजब निसाकर कम चुगी देना बनावटी वही साठा निसला कर इन्वम टक्स आफिमर म कम इन्वमटकम नियत कराना रल में बिना टिकट चलना या नीचा शणी का टिकट लकर ऊची शणी के डिव्व में धठ कर जाना बडिया शणा की वस्तु म घनिया शणी की वस्तु मिना देना, छाट गज म गाप देना तोल में कम दे दना आदि बातें चौय कम में सम्मिलित ह । मुमुगु जीव क लिय उचित ह कि वह अन्य व्यक्तियो के धन या वस्तु का बिना उनका सम्मति क, ल लन की भावना का भी हूय म न साव ।

(४) ब्रह्मचय यास्वगारा मनोप व्रत—मदन उत्तम बात यह ह कि मनुष्य पूण ब्रह्मचारा रह किनी म्त्रा व माय काम भवन न कर न काम वागना को हूय म स्यान दे अपन मन पर नियत्रण रख । पूण ब्रह्मचारी हाना साधारण गृहस्थी के लिय बठिनह इसगिय गम्प्य क निय उचित ह कि वह अपनी काम वासना का अपनी विवाहिता स्त्री तक सीमित रख । अपनी विवाहिता स्त्री व अनिर्वित अन्य विमा स्त्री स—चाह बह विवा हिता हो या अविवाहिता गृहस्थिन ह। या वदया-याम भवन न कर । स्त्री या लडकों के साथ धनग क्रीडा करना व्यभिचार स भा अधिक निन्द्य एव दूषित ह । पर स्त्री के साथ अदनील हास्य करना मनोहर अग देवना रमने की वासना हूय में लाना आसक्त हाना आदि ब्रह्मचय व्रत क विरुद्ध ह । अपनी विवाहिता स्त्री का भोग उपभोग ही सामग्री समभ कर, उसके साथ गानि त्रिस भोग विलास म रत रहना कभी भी उचित नहीं कहा जा सकता । इसलिय मुमुगु जाय का वतव्य ह कि काम वासना को कम म कर । जहा तक सबब हो सब उतना कम अपनी धम पत्नी व साथ सभाग कर । श्रेष्ट तो यह ह कि कवन सनान उत्पत्ति क हेतु भागिक धम के पचात अपनी धम पना क साथ भाग कर । ब्रह्म चय व्रती के लिय उपयुक्त ह कि वह अपना आत्मिक गानि एव परिस्थिति पर भलीभाति विचार करके, अपन जीवन पयन्त या किचित् काल क

लिय अपनी स्त्री व साथ भी भाग करन के नियम बनाल । इन नियमों में उसको ब्रह्मचर्य व्रत पालने में बड़ी सहायता मिलेगी ।

ब्रह्मचर्य व्रतधारी मनुष्य के लिय उचित है कि भय मास प्रादि मानव वस्तु एवं तामसिक भोजन का—जिनसे उसकी विषय वृद्धि में वृद्धि या काम वासना को उत्तजना मिलती हो—त्याग कर दे । उसके लिय उचित है कि वह सर्व नियमानुसार सात्विक भोजन ही निभा करे । ब्रह्मचर्य व्रती के लिय कामोद्दीपन करने वाली स्त्रियों की कथा सुनना एवं कहना व्यभिचार। स्त्री पुरुषों की संगति करना कामोत्तजना करने वाला नाच रंग स्पेक्टर सिनेमा आदि तमागों में सम्मिलित होना उपयुक्त नहीं है । न उसके लिय ऐसे शृंगार करना या घटवीले भडवारा अभूषण पहिनना ही उचित है जिनसे स्वयं या अन्य दण्ड गण के मन में विचार उत्पन्न हो । यदि ब्रह्मचर्य व्रत की धारण करने वाला स्त्री है तो उसको भी उपरोक्त प्रकार ही आचरण करना चाहिये ।

(५) परिग्रह प्रमाण व्रत—ससार के प्रत्येक मनुष्य में धनव प्रवार की वासना एवं इच्छाएँ होती हैं । इन वासनाओंकी तृप्ति के लिये मनुष्य भोग उपभोग की नाना प्रकार की सामग्रियाँ एकत्रित करके परिग्रह बढ़ाता है । इन सामग्रियों व जुटान के लिय धन की आवश्यकता होती है । धन को प्राप्त करने के लिय व्यापार प्रादि काय करता है । व्यापार प्रादि काय करने में अन्य मनुष्यों के साथ प्रतियोगिता करनी पड़ती है जिससे प्राय दूसरों के स्वभाव पर भी आक्रमण हो जाता है । अन्य मनुष्यों के साथ सघर्ष होने से, उसे एवं अन्य मनुष्यों को धनव प्रवार की चिन्ता व कष्ट उठान पड़ता है जिनसे उसके भाव क्लुप्त होते हैं और उसको विषम होकर नवीन कर्मों के बन्धन में पटना पड़ता है । जितनी जितनी मनुष्य की वासनाय अधिक होगी उनकी तृप्ति के लिय उतनी ही अधिक सामग्रियाँ एकत्रित एवं धन संचय की आवश्यकता होगी उनकी

ही अधिक प्रतियोगिता श्रम मनुष्या के साथ करनी पडगी एव उतनी ही अधिक चित्ता व ब्रष्ट भजन पणें । मुमुक्षु जाव के तिय उचित ह कि अपनी वासनाभा का नियमित करने व लिय अपनी एव अपने आश्रित स्त्री पुत्र आदि कृष्ट्वा जन को आवश्यकताभा का ध्यान में रख कर जीवन पयन्त या कुछ अवधि व लिय एक नियम बना ल कि माग, उप भोग का सामप्रिया अधिक स अधिक वह कितनी कितनी रखगा, स्वादर व जगम सम्पत्ति किम सीमा तक रख सकगा तथा किस सीमा तक बाधिक श्रम को अपनावगा । अपनी इच्छाभा का अधिक नियन्त्रित व कम करन के हतु परिवार व अनिग्रित अपन निजी व्यक्तित्व के प्रयोग के लिये भी भोजन वस्त्र आदि आवश्यक पदार्थों व ग्रहण करन के नियम बना ल । इस प्रकार भोजन वस्त्र धन सम्पत्ति गृह आदि परिग्रह को परिमित करन में उसकी वासनायें नियन्त्रित हो जायेंगी । उसकी इच्छा निर्धारित सीमा का अनुषन करके सीमा से बाह्य वस्तुभा के ग्रहण करने की न हागी । इन इच्छाभा के सीमित हाने से, शान्ति उसक हृदय में विराजमान होगी और वह सत्य की ओर वग से वरगा । यदि निर्धारित सीमा से अधिक धन व सम्पत्ति सपाग से प्राप्त हा जाव या निर्धारित सामा से अधिक श्रम हो, तो उस अधिक सम्पत्ति व श्रम का अपनावे नहीं करनू परोपकार व क्षय में लगा दे ।

उपरोक्त अहिंसा सत्य अचीय ब्रह्मचय एव परिग्रह परिमाण पच धनो का वणन गृह्य की मानसिक शक्तिया के विकास एव उसकी परिस्थिति ध्यान में रख कर किया गया ह । सामाजी व साधु की मनो वृत्ति व स्वाभाविक गुणा के विकास का दृष्टि में रखने में उपरोक्त पच धनो के स्वल्प में कितना ही परिवर्तन हो जाता ह । साधु व धना को महान्त और गृहस्थी के धनो का अनुभव कहना अनुचित न हागा ।

(स) मयासधम (पंच महाव्रत)

महाव्रत का व्रणन निम्न प्रकार से किया जा सकता है —

(१) अहिंसा महाव्रत—माधु किसी प्रकार की भी हिंसा किसी दान में भी नहीं करता है न कोई ऐसा काम करता है, न ऐसा शब्द ही बोलता है जिनमें शत्रुता या अशय किसी जीव को किसी प्रकार का कष्ट पहुँच और न कभी किसी जीव का अहित विचारते हैं। जीवन निवाह के हेतु किसी प्रकार का व्यवसाय नहीं करते हैं। कृषि आदि व्यवसाय का त्याग देन से उद्याग सम्बन्धी कृषि की शक्ति छोड़ छोटे जन्तुओं की हिंसा में बच जाते हैं। व्यापार छोड़ देना से व्यापार सम्बन्धी प्रबन्ध एवं प्रतिस्पर्धा न उत्पन्न चिन्तायें व कष्ट—अपन तथा अशय मनुष्यों को होना बच जाते हैं। उत्तर पूति के लिये न भोजन बनाते न अग्नि जलाते न अशय कोई काम करते हैं इसलिये भोजन सम्बन्धी सब प्रकार की हिंसा उनसे दूर रहती है। शरीर को जीवित रखने के लिये भिन्नावृत्ति स्वीकार करते हैं। आत्मप्राप्ति के हेतु साधु प्रायः नगर ग्राम आदि बस्ती से बाहर रहते हैं भोजन के लिये दिन में एक बार नगर या ग्राम में आते हैं और भिक्षा द्वारा सात्विक भोजन प्राप्त करके वापस आते हैं। मार्ग में पथवी को देखते हुए चलते हैं कि कहीं प्रमाद से कोई जीव उनके पैरों के नीचे दब कर न मर जावे न कष्ट पावे। सम्मान कर पुस्तक कमंडल आदि उपकरण जीव शयन स्थान में रखते हैं। इस प्रकार भोजन गमन आदि में किसी आरम्भिक हिंसा का दाप उन्हें नहीं लगता है।

यदि कोई मनुष्य पशु कीट पतंग आदि उनके शरीर को किसी प्रकार का कष्ट पहुँचावे तो उसको दण्डपूर्वक सहन करते हैं। यदि कोई मनुष्य या पशु उन पर आक्रमण कर उनके शरीर को तलवार दान्त पंजा आदि तात्पर्य शस्त्र या दण्ड से विदार डाल एवं प्राण भी लूने ता ना आक्रान्ता मनुष्य या पशु पर अपनी रक्षा के हेतु न हार करते हैं न भय

भीत होकर भागत ह, न उनसे शीतना पूवक प्राण दान की प्रायना करत ह, न उनको बरुग कठार श्राप्ति भ्रपगळ कहत ह वरन् आठ हुइ श्रापति एव कष्ट को आत्मगति द्वारा शान्ति पूवक सहन करते ह अपन मन को चचल, गोवानुर नही होत दने ह, न मन में उसस त्रीधिन होने ह न दष्ट न उमका अहित मा में विचारते ह । यदि कोई व्यक्ति उनको दुराचारी कपट्री पामढी मूख ढागी श्राप्ति भ्रपगळ व गानी दे, तो उनको सुन कर न मन म दुखित होने ह और न अपन तप पान त्याग भादि कार्यों की प्रशसा सुन कर प्रसन्न हाने ह । मुख दुख याग वियोग ताम हानि, शत्रु मित्र, गह वन श्राप्ति प्रत्यक अवस्था में साम्य बुद्धि रखने ह । मन में समस्त मानव व प्राणि समाज के हित की बात विचारत ह एव उनको कल्याण पथ पर चलन के लिय अपन मनुष्यता व आदम जीवन के द्वारा प्ररित व उत्साहित करत ह । इस विवचन से स्पष्ट ह कि साधु आरम्भिक उद्योगिक विरोधी एव सजल्पी चारा प्रकार की हिंसा को सवथा त्याग कर अहिंसा महाव्रत वा पणतया पानन करते ह ।

(२) साय महाव्रत—साधु पुरुष सत्यव्रत वा पणतया पालन करत हैं । सासारिक काय—जिनमें व्यस्त हान से गहम्य प्राय किमी न किरा भग में असत्य बोलता ह या उतवा व्यवहार भ्रमत्य हाता ह—उन समस्त सासारिक काय एव तत्सम्बन्धी मा त्याग देन से साधु पुरुष लौकिक काय सम्बन्धी समस्त प्रकार के असत्या से अपनी पूणतया रक्षा करते हैं । गृहम्य व्यक्ति राजा, प्रजा धनी, निधनी स्वामी, भत्य विद्वान मूख श्राप्ति भिन्न भिन्न स्थिति वाल मनुष्या स भिन्न भिन्न प्रकार का व्यवहार करता ह । आन्तरिक भावों को प्राय टिपाकर गृहस्थ किमी के प्रति अच्यन्त विनय प्रदर्शित करता ह किमी के साथ श्रमता वा बर्ताव करता ह किसी की आगा नभ्रतापूवक गिरोवाय करके पालन करता ह किमी को गव के साथ श्राप्ति दता ह । साधु उपरोक्त भ्रमद् व्यवहार से दूर रहने ह । धनी, निधनी, विद्वान, मूख ऊच नीच, सदा

चारी पानी आदि भिन्न भिन्न स्थिति वाल मनुष्य स एवसा बर्ताव करते ह । न किमा की खुशामत बरत ह न किसी स दुव्यवहार । साधु के मन म जस भाव हाने ह उही के अनुसार उनका व्यवहार होता ह वग ही गल उनका मल स निकलत ह । इस प्रकार साधु विचार, वचन एव व्यवहार में सधथा पूण सत्यता का प्रयाग बरत ह । साधु का लक्ष्य उच्च गढ़ सच्चिदानन्द अवस्था का प्राप्न करना हाना ह । अत व अपने प्रत्यव वाय व विचारधारा में सयता स काम सत ह । पुरानी धारणा एव रटियाँ की सत्यता की बसोली पर परीक्षा करत ह यदि जावन पर व अमत्य भ्रमपूण या हानिकर प्रतीत जाती ह, तो उनको तत्कात त्याग देने ह । साधु पुरुष श्राव के आवग म लोभ व वगाभूत होकर साकग्रस्त या हास्य में भी बभा असत्य वचन नहा महते ह । वास्तव में काम शोध लाभ गत्व हास्य आदि क्षु बतिया ही उनकी नष्ट हो जाती ह । उनके वचन सत्व दूसरा व त्रिय हितकारी मृदु एव सत्य होने ह । इस प्रकार साधु पुरुष सच महाव्रत का पूणतया पालन करते ह ।

(३) अर्चीय महाव्रत—साधु पुरुष किसी व्यक्ति के किसी पदाय का भी उसकी सम्मति व बिना कभी ग्रहण नहीं करते ह । समय द्वारा इन्द्रिया व नियंत्रित काम श्रोत्र आदि कषाय एव इच्छामा के अत्यन्त शीण हा जान स, साधु पुरुष की आवश्यकतायें ही बहुत कम हो जाती ह । शरीर को जीवित रखन के लिय साधारण अल्प भोजन की पानबुद्धि के लिय ग्रास्त्र की शीघ्र आति वाय के लिय कमइत की आवश्यकता होती ह । इन आवश्यकतामा की पूर्ति गृहस्य सुगमता के साथ श्रद्धा पूर्वक कर दता ह । इन्द्रियो के पूणतया नियंत्रित हो जाने एव आवश्यकतामा के न रहन से अन्य व्यक्ति क किसी पशाय के ग्रहण करन की इच्छा ही साधु पुरुष को नहीं होती । साधु पुरुष किसी व्यक्ति से किसी वस्तु की माचना नहीं करता ह । यदि गृहस्य श्रद्धा-पूर्वक आवश्यक वस्तु उन्हें भट करना चाह और उन्हें उसके ग्रहण करने की आवश्यकता प्रतीत

हाथ, तो य उस वस्तु को ल लते ह । यन्ि साधु पुरुष का गृहस्त्री के वचन व्यवहार या आकृति से यह भास जावे कि यह वस्तु को प्रेम व भक्ति से देना नहीं चाहता ह और उस वस्तु को पृथक होन म उस दुस्त होता ह, तो य उस वस्तु को बदापि ग्रहण नहीं करत ह । साधु पुरुष किसी गृहस्त्री को ऐसा उपदेग नहीं देने ह, जिससे उसनी प्रवृत्ति चौप आदि काय में लग या जिसके करने से अय व्यक्तियों के घन का किसी प्रकार स अपहरण हो । साधु पुरुष इस प्रकार अचौप महाव्रत को मन वचन एव व्यवहार में पूणतया प्रयाग में लाते ह ।

(४) ब्रह्मचर्य महाव्रत—भागविलारा से सवया चित्त हट जान के कारण, साधु पुरुष अपनी विवाहिता स्त्रा का भी परित्याग कर देने ह । स्त्री मात्र को माता, बहिन व पुत्री के सुत्य समभन लगने ह । अपन हृदय में कामवासना का प्रवण नहीं होने दत ह । जो भोगविलास उहोने अपन प्रारम्भिक गृहस्थ जीवन में भोग घ, उहें न या करत ह और न मन में उनकी स्मृति को ही भान देने ह । समय के अकुण द्वारा मन को बग में रखते ह । उसका इधर उधर साकारिक कार्यों में भ्रमण करने से रोकन है । इस भय से कि कहीं कामवासना उनके हृदय म किसी गुप्त द्वार से प्रवश न कर जाव, व किसी स्त्री स भी एकात में वार्त्नलाप नहीं करत ह न किसी स्त्री के भागविलास शृंगार रूप रग आदि की कथा कहते ह न श्रवण करत है और न इस प्रकार के विचार ही मन म लात ह । भिक्षा वृत्ति में भी साधु ऐसे तामसिक या राजसिक भोजन—जिससे कामवृत्ति उत्तजित या प्रीरसाहित होती हा—ग्रहण नहीं करत हैं । नगर घ ग्राम जग पर स्त्री पुरुषों का समागम अन्त्यव समय अधिकता से रहता ह साधु पुरुष उस स्थान से दूर जगन में रहना पस करत ह । इस प्रकार साधु ब्रह्मचर्य महाव्रत का सवया पालन करत ह । यन्ि ब्रह्मचर्य महाव्रत की धारण करन वाली साध्वी हो तो उनका भा साधु के समान ही उपरीकन व्रत को कठोरता क साथ पालन करना चाहिये ।

निज्जन यत्न उपवन प्राप्ति स्थानो म गिह की भाति निभय हाकर विचार कर ।

मन बचन व शरीर पर पूरा नियंत्रण रख न मन का इधर उधर भटकन दे, न उसमें किसी प्रकार के कुत्सित विचार आन दे । विचार कर वचन बाल एव शरीर पर भी अकुण्ठ रखे । काम शोध प्राप्ति अगुभ भावनायें—जो आत्मा के शान्ति आनन्द स्वरूप को विवृत्त करने वाले अनुराग परिग्रह ह—त्याग धन पर साधु के लिये उपयुक्त ह कि उनको उत्पन्न करने बाल बाह्य बंधना या भी परित्याग कर दे । मोह उत्पन्न करने बाल गृहस्थ जीवन के साथी स्त्री पुत्र प्राप्ति प्रिय जन गाय तोना प्राप्ति पालतू पशु पक्षी गाडी मोटर आदि वाहन, भोगविलास तथा एव्य की नाना प्रकार की सामग्रिया एव साधन का छोड़ दे । आत्मोन्नति के उपयुक्त जीवन के लिये जो वस्तुयें अत्यन्त आवश्यक हा उहा तब अपना आवश्यकताओं को परिमित कर ल । मीमित कर लन पर य आवश्यकतायें बहूत छोडा रह जाना हैं । तपस्या आदि के द्वारा कम बंधन नष्ट एव आत्मोन्नति करने के हेतु शरीर को जीवित रखना आवश्यक ह अत उसकी मृत्यु से रक्षा करने के लिये भोजन ग्रहण करना पचना ह । भोजन के लिये साधु भिक्षावृत्ति स्वीकार करते ह । भिक्षा के लिये साधु दिन में एक बार बस्ती में जाते ह । गृहस्थी श्रद्धापूवक सात्विक गन्ध आहार भेंट कर देते ह जिसको प्राप्त करके साधु नगर से वापिस चन आते ह ।

साधु प्राय निज्जन स्थान में रहने ह, शीघ्र आदि से निवृत्त हान के हेतु जल रक्षण के निय पात्र की आवश्यकता होती ह । इस आवश्यकता को पूरा करने के लिये साधु काष्ठ का बना हुआ कमडल रखत ह । स्वप मूल्य होने के कारण इसके चारी जान की भी आणका नहीं रहला ह । इस आवश्यकता को धदालु गृहस्थ बडी सुगमता म पूरा कर देत ह ।

ज्ञानवृद्धि के हेतु साधु को प्राय शास्त्र की आवश्यकता होती ह ।

४—प्रवृत्ति मार्ग (विधेयात्मक पथ)

उपरोक्त अहिंसा मत्स्य अर्थात् ब्रह्मचर्य एवं परिग्रह-याग पंच श्रुतौ के वचन से स्पष्ट है कि उसमें केवल यही निश्चिन किया गया है कि गृहस्थ व साधुस्थिति में मनुष्य का किस किस ऋषि वचन या भावना का त्याग देना चाहिये अर्थात् उपरोक्त पंच व्रता का विवचन सच्चिदानन्द स्वरूप प्राप्ति के मार्ग का वचन निवृत्ति या निषण्णमक पक्ष है। इस आदर्श मार्ग के जब तक दूसरे पक्ष प्रवृत्ति या विधेयात्मक का—अर्थात् किस किस स्थिति में मनुष्य के नियम क्या-क्या करना उचित है—वचन नहीं दिया जाता है तब तक सच्चिदानन्द स्वरूप प्राप्ति के मार्ग का वचन अधूरा रह जाता है। मुमुक्षु जीव के लिये यह जानना अत्यन्त आवश्यक है कि वह किस किस स्थिति में प्रतिदिन या आवश्यकता पड़ने पर क्या क्या कार्य कर जिससे वह अपने उद्देश्य में सफल हो सके।

(क) गृहस्थ के षट् आवश्यक नियम

चिदानन्द स्वरूप प्राप्ति मार्ग के उपरोक्त वचन से कुछ विधेयात्मक नियम उद्धृत किये जा सकते हैं। मनुष्य की गृहस्थ एवं साधारण अवस्था को दृष्टि में रखने से इन नियमों में भी कितना ही अन्तर पड़ जाता है इसलिये प्रथम ही गृहस्थ अवस्था के अनुकूल इन विधेयात्मक नियमों का वचन किया जाता है —

(१) देवोपासना—जिहोंने आत्म भयम तपस्या याग ध्यान आदि के द्वारा कमवचन को नष्ट करके शुद्ध जीव-मुक्त अवस्था को प्राप्त कर लिया है पण ज्ञान ज्योति के प्रज्वलित हो जाने से जिहोंने समाधि के समस्त पण्य एवं उनके समस्त गुण व अवस्थाओं को भलीभाँति जान

शान्ति महान् वायु क्रिय है । एसा करने से गृहस्थ अपने आदेश की आर
अग्रसर होगा । यही उपासना एव भक्ति है । गृहस्थ के लिये ज्वित
है कि वह प्रतिदिन कुछ काल तक प्रातः या सायंकाल या दोना समय अपने
मुनीत के अनुसार देवापामना क्रिया करे ।

इसके अतिरिक्त वे महापुरुष, जो सत्य के पथिक बन कर
अमा तक जीवन्मुक्त तो नहा हुए हैं परन्तु जो उस भाग का किनासा ही
भाग तय कर रहे हैं, जिनकी आत्मा कितनी ही दर्जे तक गाल निमल
एव स्वच्छ हो चुका है, जो अपने संपदन द्वारा समार के प्राणियों को
मत्माग पर उतारने हैं वे हमारा गुरु हैं । उनकी भक्ति करना भा हमारा
निये अत्यन्त है ।

(२) स्वाध्याय—आत्मोन्नति के लिये आनन्द है कि पानवर्द्धि
दिन प्रतिदिन होता रहे । पानवर्द्धि स्व अनुभव या पर अनुभव द्वारा
प्राप्त होता है । समार के पन्थ एव प्रतिदिन के व्यवहार के धारणाया
के ध्यानपूर्वक अवलोकन एक उनपर मनन करने से स्व अनुभव प्राप्त
होता है । जो पान के अनुभव पूर्व काल में महान् पुरुषों ने प्राप्त किया
या और जिम्मा मानव समाज के उपकारार्थ प्रयास में अविन कर लिया
है वह पान पर अनुभव है । आत्मा की उन्नत एव ज्ञानविकास करने
के लिये गृहस्थ का कर्तव्य है कि वह प्रतिदिन आध्यात्मिक, तनिक महान्
पुरुषों के जीवन चरित्र सम्बन्धी आन्ति विषया पर प्रथा का स्वाध्याय कुछ
समय के लिये किया करे एव अध्ययन क्रिये हुए विषय पर विचार के मनन
किया करे । यदि कोई अधिक् विज्ञान त्यागी पुरुष किसी प्रयत्न का वाच
ता उसको ध्यानपूर्वक अवलोकन करे । एसा करने से गृहस्थी की आत्मा
उन्नत होगी एवं उससे ज्ञान में वृद्धि के विचारों में उत्तरता आवेगी ।

(३) ध्यान या याग—मुमुक्षु जीव के लिये उचित है कि वह चित्त
नन्द आत्मा को सदाव अपने सामने रखे । आदेश को सामने रखने के
लिये अपने चित्त चित्तानन्द स्वरूप का ध्यान करना आवश्यक है । ध्यान

लिया है जो सात्त्विक समस्त दुःखा से मुक्त होकर निजानन्द में—
 जो अनुपम अलौकिक अनुपुण्य एव शास्वन है—मग्न हो गये है। ऐसा
 महान् आत्मायें आराधना के योग्य है। य हमका भाग प्रदान करानी
 है। य ही महत या धरहन्तदेव^१ है। इन्हा की दिव्यवाणी से सत्कार
 के प्राणियों या आत्मज्ञान हाता है, जिससे कितनी ही आत्मायें सत्कार
 सागर से पार उतरने में समर्थ हो जाती है। अन्त में ये परमात्मा भौतिक
 शरीर का त्याग कर निर्वाण पद की प्राप्ति हो जाते हैं जहाँ शास्वन सच्चि-
 दानन्द स्वरूप में मग्न रहकर अनन्तकाल तक अनुपम दिव्य आनन्द का
 उपभोग करत हैं एव जिनके दिव्य ज्ञान में जगत के समस्त पदार्थ अपन
 अनन्त गुण व पर्याय सहित आलाकित हाते रहत हैं।

इनका ज्वलन्त उपाहरण साहस तपस्या आत्मनयम जितेन्द्रिया
 धर्म एव काम श्रेय आदि मानसिक दुर्बलताओं पर इनकी विजय हमारे
 अधिकारमय जीवों में सत्य प्रकाश सदा है। आत्माशक्ति के लिये आव-
 द्यक है कि इन आराधना योग्य परम शान्त सौम्य भव्य आनन्दमयी
 मद्रा का चित्र^२ हमारे नशों के सामने रह। हम इनके गुणों का स्तवन
 करें एव इनके जीवन पर विचारें कि इन्होंने किस प्रकार रागद्वेष आदि
 प्रवृत्ति पर विजय कमवचन का क्षय दृढ़ चिदानन्द स्वरूप प्राप्ति

^१ महत शब्द सस्कृत की मह (पूजना) धातु से बना है, इसलिये महत
 उस महान् आत्मा को कहते हैं जो पूजने योग्य हो। महत शब्द का प्राकृत
 में धरहन्त हो जाता है। इन्हीं को साहस्य, योग शील एव जन दान ने
 महत या धरहन्त कहा है।

^२ शब्द के फोटो आदि चित्र अल्प काल में ही नष्ट हो जाते हैं, इसलिये
 इन चित्रों को चिरस्थायी बनाने के लिये यह उपयुक्त होगा कि ये चित्र
 पाषाण पीतल आदि धातु के बनाये जायें और इनकी स्थापना उचित
 विधि स्थान पर की जाय जहाँ प्रत्येक व्यक्ति सुगमता से आ सके।

नादि महान काय विषये हैं। ऐसा करने से गम्भीर अपन आदम की ओर अग्रसर होगा। यही उपासना एव भक्ति है। गृहस्थ के लिये उचित है कि वह प्रतिदिन कुछ कारा तक प्रातः या सायंकाल या दाना समय अपन सुभीते के अनुसार देवोपासना किया करे।

इसके अतिरिक्त वे महापुरुष जो सत्य के पथिक बन कर अभी तक जाय-मुक्त तो नहा हूँ परन्तु जो उम माग का कितना ही माग तय कर चुके हैं जिनकी आत्मा कितनी ही दर्जे तक गान्ध निमल एव स्वच्छ हो चुका है जो अपन मनुष्यदण द्वारा ससार के प्राणियों का सत्माग पर लगाने हैं वे हमारा गुरु हैं। उनकी भक्ति करना भी हमारा लिये श्रेयस्कर है।

(२) स्वाध्याय—आत्मज्ञानति के लिये आवश्यक है कि ज्ञानवृद्धि प्रतिदिन होती रहे। ज्ञानवृद्धि स्व अनुभव या पर अनुभव द्वारा प्राप्त होती है। समास के पन्था एव प्रतिदिन के व्यवहार व धारणाया के ध्यानपूर्वक अवलोकन एव उनपर मनन करने से स्व अनुभव प्राप्त होता है। जो ज्ञान य अनुभव पूर्व काल में महान पुण्या न प्राप्त किया या और जिसको मानव समाज के उपनाराय श्रेया में अक्षित कर लिया है वह ज्ञान पर अनुभव है। आत्मा को उन्नत एव ज्ञानविकास करने के हेतु गृहस्थ का कर्तव्य है कि वह प्रतिदिन आध्यात्मिक नतिक महान पुण्या के जीवन चरित्र सम्बन्धी आत्मीय विषया पर श्रेया का स्वाध्याय कुछ समय के लिये किया करे एव अध्ययन किये हुए विषय पर विचार व मनन किया करे। यदि कोई अधिक विद्वान् त्यागी पुरुष किया श्रेय को बाध तो उसका ध्यानपूर्वक श्रवण करे। ऐसा करने से गृहस्थी की आत्मा उन्नत होगी एव उसके ज्ञान में वृद्धि व विचारा में उदारता आवगा।

(३) ध्यान या योग—मुमक्षु जीव के लिये उचित है कि वह चिदात्म आत्मा को सदैव अपने सामने रखे। आत्मा का सामने रखने के लिये अपन गुरु चिदात्म स्वरूप का ध्यान करना आवश्यक है। ध्यान

की गान्ध सोम्य मुद्रा का चित्र अपन हृदय मन्दिर में दिराजमान कर । विचार कर कि अर्जुन देव किस प्रकार अपन पानचदु से त्रिलाक व समस्त पशुओं का भवलोचन कर रहे हैं एवं अनुभव कर कि किस प्रकार व अपन ध्यान स्वल्प में मग्न हारर अनुपम अलौकिक दिव्य ध्यान का रसा स्वादन कर रहे ह । ऐसा अनुभव करन पर वह व्यक्ति स्वय अपन आत्म ध्यान में स्थिर हो जावगा । उसे अपने भीतर आनन्द की लहरें बन्ती हुई दिगलाई ऐसी जिमसे प्रभावित होकर उसका आत्मा आह्लाद में प्रफुलित हो उठगी ।

उपरोक्त ध्यान व गमाधि के अतिरिक्त मुमुक्षु जीव के निय उचित ह कि वह आम स्वल्प पर दिचार एवं मनन करे यह भी विचार कि ससार व समस्त प्राणिया की आत्मायें उसकी आत्मा के मग्न हो ह वनों के आवरण में विभिन्नता होन के कारण ही, इन प्राणिया की आत्माओं में विभिन्नता निखला ऐसी है । एसा विचारन से उसके हृदय में प्राणी समाज व प्रति दया व प्रेम व भाव उत्पन्न हाण एवं क्षमा, उग्रता सरलता आदि उच्च वृत्तिमा भी जागृत हो जावेंगी और उसकी आत्मा अधिक निमल एवं उन्नत हाण गगी ।

(८) आलोचना—मुमुक्षु जीव व लिय श्रयस्कर ह कि वह प्रति दिन ध्यान के अवसर पर या किसी अन्य समय एकांत में बठकर व्यतीत हुए दिन व अपन समस्त प्रशस्त व अप्रशस्त कार्यों की निष्पक्ष दृष्टि से समालोचना विया कर । दिन में जो अनुचित कार्य उससे हुए हा जा दुष्ट या कृत्तित विचार उसवे हृदय में आय हा या जा मिथ्या कठोर अहित अथवा अनुचित गल्प उसवे मुख से निकले हा उनपर पश्चात्ताप कर उनव लिय अपन को धिक्कार व भत्मना कर । यह सबल्प कर कि भविष्य में मैं ऐन अनुचित कार्य नहीं करूंगा और न ही एसे दुष्ट विचारों को हृदय में स्थान दूंगा अथवा अयोग्य गणों का उच्चारण करूंगा । इस प्रकार निरन्तर आलोचना करले रहन से, उन गृहस्थ मनुष्य का चरित्र उच्च



के सकल्प विकल्प मन में उठा करते हैं। अतः सासारिक वस्तुधारा में माह्र कम एवं नियंत्रित कर देने से मन की चंचलता कम हो जाती है और उसको अपने मन पर नियंत्रण कितना ही अंगों में प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार पंच इंद्रिय एवं दृष्टे मन के विषयों को सीमित कर देने से इन्द्रिया पर नियंत्रण प्राप्त हो जाता है और विषयवाग्ना कम एवं नष्ट हो जाती है। इन्द्रिया का बन्धन में कर लेना ही समय है और यह नियम तप का मुख्य अंग है।

(६) परोपकार सेवाधर्म या दान—देवोपासना आदि उपरोक्त पांच नियम जो दैनिक व्यवहार के लिये बतलाये गये हैं उनमें केवल एक या दो घण्टे प्रतिदिन ध्येय होना है। मनुष्य मन वचन अथवा शरीर द्वारा कुछ न कुछ काय प्रतिक्षण करता रहना है। प्रतिक्षण मनोभावना के अनुसार उसके नवीन कर्मों का बन्धन होता रहता है। इसलिये गृहस्थ मनुष्य के लिये उचित है कि वह देवोपासना आदि उपरोक्त पांच आवश्यक कार्यों में एक या दो घण्टे तक लग रहने से ही सन्तुष्ट न हो जाय। उसको अपने पाप घण्टों के काय पर भी ध्यान रखना होगा कि कहीं प्रमाद के कारण इस क्षण समय में अंगुष्ठ कर्मों का बन्धन न हो जाये। इन आवश्यकता के अतिरिक्त गृहस्थ मनुष्य की एक और भी आवश्यकता है।

प्रत्येक मनुष्य सासारिक वस्तुधारा में ऐसा लिप्त है स्त्री पुत्र आदि कुटुम्बी जन एवं अपने शरीर की माह्र ममता में ऐसा फसा है कि यह जानता हुआ भी कि उसकी आत्मा इन सब से पर्यक एवं भिन्न है फिर भी उसका ममत्व उनसे नहीं छूटता है। इस ममता के भाव को कम करने एवं ध्यान की अत्यन्त आवश्यकता है। उपरोक्त दोनो आवश्यकताओं की पूर्ति की केवल एक ही श्रौषणिका है कि वह समस्त श्रेष्ठा समाज के प्रति प्रेम व सहानुभूति, दुःखित जीवों पर दया मानव समाज पर उपकार एवं उसकी सेवा की भावनाओं अपने हृदय में धारण तथा वर्द्धि कर और इन भावनाओं को हृदय के भीतर सुषुप्ति दशा में ही न पड़ा रहने दे, धरन्

इन भावनाओं को काम रूप में परिणत करने का भरसक प्रयत्न कर । सेवा का भाव हृदय में रखन निस्वाय भाव से मानव एवं प्राणा समाज की सेवा में लगन तथा उनका सुख दूर करने के लिये गाढ़ परिश्रम में प्राप्त किया हुआ द्रव्य व्यय करने एवं शारीरिक कष्ट उठाने से उपरोक्त दाना आवश्यकतायें पण हो जानी हैं । परोपकार की भावना हृदय में रहन से, भ्रामक कर्मों का बचन नहीं होता है, वेबत शुभ कर्म ही बघते हैं । अन्य प्राणियों की प्रसन्नकर सेवा करने में जो शारीरिक कष्ट या बदना उसको उठानी पड़ती है अथवा अथ मनुष्य या समाज के हितार्थ जो धन व्यय करता या दान देता है उससे उसकी ममत्व भावना कम एवं नष्ट होती है । इस प्रकार परोपकार सेवाधर्म या तान गहस्य के लिये सत्र से अधिक उपयोगी एवं आवश्यक है ।

गृहस्थ मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपने कुटुम्बी सम्बन्धी व निकट जन के कल्याण व आनाथ काय कर तथा समाज व देश के उद्धार एवं समृद्धि के कार्यों में प्रयत्नशील रहे । निकटवर्ती पशु परी आदि जीवों को भी सुख पहुँचावे भूल कर भी कष्ट न दे । गृहस्थी के लिये उचित है कि धीरे धीरे परन्तु दृढतापूर्वक अपने सेवाधर्म को अपनी समाज एवं देश तक ही सीमित न रख किन्तु उसकी सीमा को बड़ा कर ससार ही समस्त मानव तथा पशु समाज तक कर दे ससार के समस्त प्राणियों के कल्याण ही वानें सोच एवं विचारों को कार्यान्वित कर । परोपकार के समस्त कार्य चार भाग में विभक्त किये जा सकते हैं —

(क) आहार दान—साधु त्यागी एवं सत्पुरुषों को शुद्ध सात्विक आहार देना दुःखित पीडित पशु आदि भ्रान्त व्यक्तियों को भोजन दान अनाथ बानकों का पालन पोषण अनाथालय आदि की स्थापना निधन एवं जीविका हीन आदि मनुष्यों को व्यापार आदि कार्यों में सहाय कर उनकी आजीविका का प्रबंध कर देना आदि काय आजीविका सम्बन्धी सेवा धर्म में सम्मिलित है ।

(क) विद्यादान—बाल-बालिकाओं को ऐसी शिक्षा देना दिलाना या धन आदि द्वारा सहायता देना जिससे उनके ज्ञान वा विकास आ एक आध्यात्मिक, नैतिक व्यापारिक सामाजिक राष्ट्रीय ज्ञान की वृद्धि हो ताकि वे योग्य नागरिक बनकर जीवन निर्वाह सुगमता से कर सकें अपने कल्याण का पालन उचित प्रकार से करते हुए न्यायोचित विधि से धनो-पाजन एवं अपना इच्छाओं की पूर्ति कर सकें और अपने अन्तिम लक्ष्य व आदर्श को प्राप्त हो सकें। शिक्षण वाणिज्य आदि आजीविका सम्बन्धी शिक्षा समाज उपयोगी विज्ञान आदि समस्त प्रकार की शिक्षाएँ इस विद्यादान या शिक्षा सम्बन्धी सवाधम में सम्मिलित हैं।

(ग) औषधदान—रागग्रस्त व्याधियुक्त मनुष्यों का सेवा सुश्रूषा एवं चिकित्सा का उचित प्रबन्ध करना निम्न चिकित्सालय खोलना रोगी पशुओं के लिए अस्पताल जारी करना ऐसे कार्य करना जिनसे जनता का स्वास्थ्य ठीक रहे राग न फले वायु स्वच्छ रहे उपरोक्त कार्यों में सहायता देना अन्य मनुष्यों को एम कार्य करने के लिए प्रेरणा या उत्साहित करना आदि ममस्त कार्य इस चिकित्सा सम्बन्धी सवाधम या औषधदान में सम्मिलित हैं।

(घ) विपत्ति निवारण या अभयदान—यदि कोई मनुष्य किसी कष्ट से पीड़ित हो विपत्ति में प्रसिद्ध हो या किसी भय से कम्पित हो तो उस कष्ट विपत्ति एवं भय का निवारण करे। समाज व देश पर आये हुए अग्नि एवं जल प्रकोप प्लग हुआ इप्लुयजा आदि महामारी तथा अन्य प्रकार की आकस्मिक आपत्तियों का दूर करे। गन्धु डाकू आदि मनुष्यों के आक्रमण या उनके द्वारा सताये व पीड़ित हुए देशवासियों की रक्षा करे। देश समाज परिवार आदि की उपरोक्त प्रकार की आकस्मिक विपत्ति एवं भय से रक्षा करना इस विपत्ति निवारण सम्बन्धी सवाधम या अभयदान में सम्मिलित है।

(ख) सयासी के पट आवश्यक नियम

साधु जीवन का परिस्थिति ध्यान में रखन से उपरान्त देवापारना भाति पट विषयात्मक नियमों के स्वरूप में बितना ही अन्तर पड़ जाता है। इसनिय सयास अवस्था की दशा में इन नियमों के स्वरूप का कुछ बगन कराना अनर्चित न होगा।

(१) देवोपासना—काम, श्रोक आदि छुट्ट वतिया जिनकी नष्ट हो गई है और जो निरन्तर अभ्यास द्वारा अपनी आत्मा के उत्पन्न करने में उद्यमशील है, इस साधु मुनियों के लिये उचित ही है कि वह अपने आदर्श—शुद्ध चिन्तन परमात्म अवस्था—को अपने ज्ञानशत्रु के समुच्च रखें एवं चिन्तनानन्द शान्त सौम्य मुद्रा का चित्र अपने हृदय मन्दिर में विराजमान करे। व सुधाररूप धीतराग शान्त मुद्रा अनीतिक दिव्यज्ञान ज्योति अनुपम दिव्य ध्यानानन्द अनन्त सामर्थ्य आदि गुणा का स्तवन करें उन पर विचारें एवं मनन करें। ऐसा करन से आदर्श का प्रज्वलित प्रदीप सर्व प्रदीप्त रहेगा, उनके माग को प्रकाशित रहेगा एवं ध्यान की और अग्रसर होन के लिये उमाहित करगा। साधु जीवन की उच्च मानसिक स्थिति को दृष्टि में रखने हुए, यह आवश्यक प्रतीत नहीं होता कि ध्यान आदि काय के लिये चिन्तनानन्द शान्त परमात्म अवस्था का घातु पापाण आदि का बना हुआ कोई चित्र या मूर्ति उनके नश्वरों के समुच्च रहे या इस काय के लिये व किसी देवालय आदि स्थान में जावें। उनमें इतनी सामर्थ्य उत्पन्न हो जाती है कि व उन महान आत्मामों के गुण लपस्या शान्त मुद्रा आदि के सुन्दर चित्र अपने हृदय में भलीभाँति खींच सकते हैं। तथापि देवालय में जाकर शान्त अद्वैत अवस्था की मूर्ति के दर्शन कराना उनकी आत्मोन्नति में बाधक नहीं है उस शान्त सौम्य मुद्रासुक्त मूर्ति के समुच्च परमात्म अवस्था के गुणा का स्तवन कर सकत है अपने परम आराध्य देव शुद्ध चिदानन्द परमात्मा का गुणानुसार ही देवोपासना है।

(२) स्वाध्याय—आत्मिक उन्नति वं हतु गृहस्थ के समान सामु के लिये भी उपयुक्त प्रथो का अध्ययन श्रयण एव मनन करना उचित ह । स्वाध्याय स ज्ञान वृद्धि एव मानसिक शक्तिया का विकास होता ह । ज्ञान वृद्धि से प्रत्येक वस्तु के यथाय समझने में सहायता मिलती ह एव आत्म के वास्तविक स्वरूप का अनुभव विशद रूप से होता ह ।

(३) ध्यान या योग—मायु के निय उचित ह कि वे पचासन आदि उपयुक्त आसन लगा कर, आत्मस्वरूप का ध्यान गृहस्थ से कही अधिक करें अपने गुद्ध ज्ञानानन्द स्वभाव का अनुभव करें, अन्तर्मित्त ज्ञान-दस्वरूप में मग्न हाकर, अमृतमयी सुख का आस्वादन करें । सतत अभ्यास द्वारा इस ध्यान, योग व समाधि में उन्नतनील रहें, धीरे-धीरे समय व वृद्धि करें दिन में एक बार ध्यान लगा लन पर ही उन्मुक्त न रह प्रात, मध्याह्न एव सायकाल तीन बार ध्यान लगावें तथा प्रति समय आत्मध्यान में लीन रहन का प्रयत्न करते रहें । ध्यान के आसन आदि के सम्बन्ध में श्री धर्मिनगति आचार्य न कहा ह —

न सस्तरोऽश्मा न तूण न मेदनी,
विधानता नो फलको विनिर्मितम् ।

यतो निरस्ताल कथाय विट्टिय,
सुपीनिरात्मय मुनिर्मलो मत ॥

न सस्तरो अद्र समाधिनाथन,
न सोषपूजा न च सधमेतनम ।

यतस्ततोऽध्यात्मरतो भवार्निः,
विमुच्य सर्वार्निषि वाह्यवासनाम ॥

अर्थात् ध्यान करन वं निये पापाण का गिला कृणा या पथी के आसन की आवश्यकता नहीं ह । विद्वानों के लिय वह आत्मा ही स्वय पवित्र आसन ह जिसन प्राध आदि कथाय (कृवृत्ति) व इन्द्रिय विषय वागात् रूपी गनु का सहार कर लिया ह । हे मित्र ! आत्मध्यान के

लिय म किसी आगन की न लावपूजा की और न समा सोमापटी की आवश्यकता ह । जिस किमी प्रकार अपन हृदय से बाह्य वस्तुओं की वासना को निकाल कर अपन ही स्वरूप में प्रति क्षण रावलीन रह यही ध्यान एव समाधि है ।

योग के सम्बन्ध म श्री भगवद्गीता में कहा ह —

यदा विनियत चित्तमात्ममेवातिष्ठत ।

निस्पृह सर्व कामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥६।१८॥

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्ध योग सेवया ।

यत्र ध्यातमनात्मानं पश्यन्नात्मनि सुष्यति ॥६।२०॥

अर्थात् जिस समय समस्त वासनाओं की इच्छा स भुक्त होकर साधक का तिष्ठतल चित्त आत्मा म हा स्थिर होता ह उस समय उसको योग युक्त कहत ह । यागाभ्यास से निरुद्ध हुआ चित्त जिस समय स्थिर होता ह उस समय व आत्मा अपनी आत्मा को ध्यात द्वारा साक्षात् देखता हुआ आत्मा में ही सन्तुष्ट होता ह । योग के सम्बन्ध में योगशास्त्र में कहा ह —

योगश्चित्तवृत्ति निरोध । तदा दृष्टुं स्वरूपस्यस्थानम् ॥१।१२॥

अर्थात्—जिस समय चित्त की वृत्तियों का निरोध किया जाता है उस समय आत्मा (दृष्टुं) अपन स्वरूप में स्थिर हो जाता ह । यानी—चित्तवृत्तिनिरोध—याग ह । योगशास्त्र के विमर्शिपात्र में कहा ह —

तदेवायमात्रनिर्भासि स्वरूपज्ञानमिव^१ समाधि ॥१॥

अर्थात्—जब ध्याता का ध्यान ही ध्यय के आकार रूप हो जाता ह वहाँ भद ध्याता ध्यान व ध्येय में नहा रहता ह उस समय समाधि होती ह ।

^१ ध्यान का स्वरूप शून्य के समान विदित होना ह अर्थात् ध्यय के ध्यान में मग्न होने से ध्याता को अपनी विभिन्नता का ज्ञान नहीं रहता ह ।

समाधि अवस्था में ध्याता ध्यय और ध्यान तीना मिल जात ह ।
आत्मा अपने ही ध्यान अपने हा द्वारा करता ह इनमें कोई भेद नहीं रहता
ह । इसको बड़े हा सुन्दर छन्दा में कविवर दीनाराम जी न छहडाले
में कहा ह —

निज माहि निज के हत निज करि, आपको आप गह्यो ।
गुण गुणो ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय, मभार कछु भेद न रह्यो ॥
जहां ध्यान ध्याता ध्यय को न, विवल्प वच भेद न जहा ।
चिद्भाव कम चिदेग करता, चेतना किरया तहा ॥
तीनों अभिन्न अलिप्त शुध, उपयोग की निचल दसा ।
प्रगटी तहा दुग ज्ञान अत ये तीनधा एकलसा ॥'

ध्यान में मग्न होन न जिस आनन्द का आस्वादन हाता ह, जिसस
हृदय प्रफुल्लित एवं शरीर पुलकित हो जाता ह उसस साधु के मन में
इतनी दडता साहस धीरता एक सामध्य उत्पन्न हो जाती है कि साधु
भूख, प्यास उष्णता शीत आदि के कष्ट मनुष्य पशु मच्छर आदि
जन्तु द्वारा हात वाला पीडा को शान्ति व साथ हृषपूर्वक सहन करता ह ।
ये शारीरिक कष्ट व पीडायें तपस्यायुक्त मयासी जीवन में प्राय हानी

जब आत्मा अपने लिये अपने द्वारा अपने स्वरूप में अपने को ही
प्रत्यक्ष करता ह जब गुणी व गुण में, ज्ञाता, ज्ञान व ज्ञेय (जिसको जाना
जाता ह) में कुछ भेद नहीं रहता ह, जब ध्याता, ध्यान व ध्येय (जिसका
ध्यान किया जावे) में किसी प्रकार का भेद विचार या शब्द द्वारा नहीं
किया जा सकता, जहा चेतन कर्ता, चेतन्य कम व चेतन श्रिया तीनों मिल
कर एक हो गये ह, उनमें कोई भेद नहीं रहा ह, जहा आत्मा अपने शुद्ध
स्वरूप में स्थिर हो गया ह और जब आत्मा को अपने वास्तविक स्वरूप
का ज्ञान, अनुभव एवं तल्लीनता होकर एकपने का अनुभव होता ह,
वही अवस्था समाधि अवस्था ह ।

नदान कम-बन्धन निरोध के हेतु साधु के लिये आवश्यक है कि उगवो अपने मन बचन एवं शरीर पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त हो। ऐसा देखा जाता है कि व व्यक्ति जो एकान्त में रहने, विचारन एवं मनन करने का वाय धारित करते हैं, उनमें एक प्रकार की सतत सी उत्पन्न हो जाती है। उनके हृदय में अतक प्रवार के सवल्य विवलय उठा करते हैं, उनका मन स्वच्छाचागी होकर सकल्प सागर में गोते लगाया करता है, जिसके कारण उन्हें अपने शरीर की भी सुष नहीं रहती है। साधु के लिये नितान्त आवश्यक है कि व अपने मन स्वी सुरग को बिना लगाम के न विचरन * अनुचित विषारा को हृदय में न धारन दें, न काम बोध आदि अग्रगस्त भावना को अपने अस्तस्थल में स्थान दें, न शरीर सम्बन्धी किसी वाय में प्रमाण का पास फटकन दें। मन बचन व शरीर को सममित रखन के हेतु साधु के लिये आवश्यक है कि व प्रतिदिन अपने विचार मानसिक चष्टा यपन एवं शरीर सम्बन्धी कार्यों की सूक्ष्म दृष्टि से चठोरना के साथ ध्यालाघा विधा करें प्रत्यक श्रुति पर पचात्ताप करें एवं भविष्य में उा नुष्टिया के न करने का सवल्य करें। ऐसा करने से उनका मन स्वच्छ एवं चरित्र निमल हो जावेगा तथा उनका अपने मन, बचन तथा शरीर पर पूरा नियंत्रण प्राप्त हो सकेगा।

(५) तप—मनोभावना को शुद्ध एवं चरित्र को निमल, स्वच्छ रखने से मनुष्य के नवीन कमबन्धन का निरोध हो जाता है। यदि मन नवीन कम का बधन होता है, तो वह स्वयं स्वयं रचना है। उक्त अभा तक पूर्व सचित कर्मों के समूह का बधन विद्यमान है, जब तक वह पूर्व सचित समस्त कर्मबन्धन समूल नष्ट नहीं होता, जब तक परमात्म स्वत्वा प्राप्त नहीं हो सकती। पूर्व सचित कर्म सचित सुक्ष्म परमात्मों में से केवल व कम परमात्म—विश्व (जिस में परमात्म ज्ञान) का अन्तर हो जाता है—जिसके द्वारा ज्ञान, ज्ञाना एव व प्रज्ञान मिलकर, प्रति हृदय हृदय के स्वच्छ व शुद्ध करने में है। यह कर्म परमात्मों

का समूह, सूक्ष्म कार्माण गरीर के रूप में, पूर्ववत् संचित रहता है। यदि वह कम परमाणु अपनी निश्चित अवधि के अनुसार फल देकर, आत्मा के सम्बन्ध से घोर धार पथक व क्षीण होने रहें तो इन समस्त पूर्व संचित कर्मों के क्षय अर्थात् कमबन्धन से सबथा मुक्त होने के लिये युग चाहिये। इसके लिये मुमुक्षु जीव को अनेक योनिया धारण तथा अशुष्ण भयक प्रयत्न करते रहना होगा। यदि इन आगामी योनिया में वह अपनी मनो भावना गुद एवं चारित्र्य निमल न रख सके, तो फिर नवीन कमबन्धन प्रारम्भ हो जावेगा। नवान कमबन्धन के प्रारम्भ हो जाने से भविष्य में कमबन्धन से मुक्त हो जाना अत्यन्त दुष्कर हो जावेगा। इस लिये ऐसा उपाय सोचना होगा कि जिसका प्रयाग में धान से पूर्व संचित कम गति अपनी निश्चित अवधि से पूर्व ही काय में परिणत होकर तथा अपना प्रभाव (फल) लिखाकर या बिना लिखताय ही नष्ट हो सके। ऐसा करन पर पूर्व संचित कम, अपनी अवधि से पहिले ही, आत्मा के सम्बन्ध से पथक हो जावेगा एवं मुमुक्षु जीव सम्पूर्ण कमबन्धन को अत्यन्त कम में ही काटकर गुद परमात्म अवस्था प्राप्त कर सकेगा।

उपरोक्त काय सिद्धि का उपाय केवल एक है वह है तपस्या। तपस्या के द्वारा साधु क्षमा तथा गीत उष्णता कठोर भूमि पर गय्या धानि के कष्ट व आपत्तियों को स्वच्छापूर्वक आह्वानन करता है उन्हें हृदय पूर्वक धान्ति के साथ बिना मन को विचरित व मरिचि किये सहन करता है। इन प्रामात्रित व आह्वानन किये हुए कष्टों का सहन करना उन कर्मों का— जो प्रतिदिन साधारण रूप से अपना अवधि के अनुसार कामरूप में परिणत होते व फल देते हैं—फल नहीं हो सकेता। स्वच्छापूर्वक आह्वानन करके लगातार कष्ट सहन करने से, पूर्व संचित कर्मों में से कुछ कम अपने कार्यान्वित होने की अवधि से पहिले ही काय रूप में परिणत हो जाते हैं। कार्यान्वित हो जाने से उनकी कमगति नष्ट हो जाती है एवं उनका (कर्मों) सम्बन्ध आत्मा व सूक्ष्म कार्माण गरीर से पथक हो

जाता है। स्वच्छापवक कष्ट सहन करना ही इन कर्मों का फल होता है। इस प्रकार तपस्या के द्वारा स्वच्छापवक कष्ट सहन करने से, पूर्व संचित कर्मों का क्षय किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त तपस्या से एक और भी लाभ है। जिस प्रकार अग्नि में तपान से स्वयं शुद्ध एवं काल्पित हो जाता है उसी प्रकार तपस्या से आत्मा शुद्ध एवं आत्मिक शक्ति से स्फुरित हो जाता है। इन्द्रियो पर नियम प्राप्त हो जाता है। वासनाय नष्ट हो जाती है। शरीर से ममता भाव दूर जाता है। आत्मा उत्तम शक्ति के समान उज्ज्वल व निमल हो जाता है। आत्मिक अधिक विकसित एवं आत्मस्वरूप में स्थिरता प्राप्त हो जाती है। शुद्ध ज्ञान स्वयं की भक्त आन लेती है। इस तपस्या का दो मुख्य भागों में विभक्त किया जा सकता है —

(क) बहिरंग तप—इसमें अनेक प्रकार के शारीरिक कष्टों का स्वच्छा से आह्वान किया जाता है। एवं इनको शान्ति व हृदयवक मन को बिना लुब्ध व विचलित किया सहन किया जाता है। इस शारीरिक कष्ट के सहन करने से पूर्व संचित कर्मों का क्षय बड़े ढंग से साध होता है। एवं इन कष्टों के निश्चल मन व शान्ति के साथ सहन करने से शरीर एवं इन्द्रिय वासना पर नियंत्रण प्राप्त हो जाता है। इन नियंत्रित कष्टों को निम्न लिखित ६ भागों में विभक्त कर सकते हैं —

१. अन्नान—उपवास करना। साधु दिन में केवल १ बार भोजन करते व जल पीते हैं। कभी-कभी उपवास रखते हैं। साधु का एक उपवास महिन् दिन के मध्याह्न से तीसरे दिन के मध्याह्न तक अर्थात् ४८ घंटे का होता है। उपवास में न आहार न जल ग्रहण करने हैं। उपवास कभी एक दिन का कभी लगातार कई-कई दिन तक के हो सकते हैं। दुःखा व क्षुधा के कारण, साधु विह्वल एवं दुःखित न होना चाहते न चित्त को विचलित होने देते हैं। व अहिंसा आदि पंच महाव्रत एवं दशोपासना आदि कष्ट आवश्यक नियमों का पालन कभी-कभी करते रहते हैं।—

२ धवमान्य—प्राय दग्ग जाता ह कि मनुष्य के लिय किसी भोज्य पत्थ वा सबन न करता सुगम होता ह परन्तु भाश्य पदाय का खाना प्रारम्भ करके जिना उदर भर एव इच्छा पूर्ति किये मध्य ही में छाड़ देना कठिन हाता ह । साधु इस इच्छा पर नियत्रण कर लते ह । जब वे भाजन करत है तो उन्नर की पूण पूर्ति एव इच्छा की पूरी क्षति कदापि नही करत ह सदा उन्नर पूर्ति से कम भोजन करत ह ।

३ रसपरित्याग—रसनद्रिय पर समय रखने के लिय प्राय दूध दहा घत मिष्ट नवन एव तेल आदि रसा में स कछ रसो का त्याग करत रहते ह । किसी दिन बिना नमक के भोजन करत ह कभी मीठ रस का त्याग देत ह । नीरस भोजन ग्रहण से स्वादु रस में प्रीति नही रहती है । इस प्रकार रसना इन्द्रिय पर पूण नियत्रण प्राप्त कर लते ह ।

४ व्रत परिमल्लान—साधु भोजन के सम्बन्ध में कभी-कभी ऐसे नियम बना लतेह कि यदि अमुक प्रकार का भाजन भाज मिलगा, तो करेग आयया नहा । मगर व ग्राम में भोजन के लिय जात ह परन्तु अपन मनोगत नियम की सूचना किसी व्यक्ति को नही देत । यदि उनके नियम अनुसार भोजन मिल गया तो ग्रहण कर लत ह आयया भोजन के बिना ही वापिस लोट आने ह ।

५ विविक्त गम्यासन—साधु बिसा प्रकार की सज बिछौना, कम्बल चटाई आदि वस्तु का प्रयोग नहा करत ह । एवान्त स्थान म भूमिपर बिना किसी वस्त्र, चटाई या कुशा के बिछाय ही धयन करत ह । कठोर ककरीला भूमि के चुमन आदि के कष्टा को शान्तिपूर्वक सहन करत ह ।

६ कायकतप—उपरोक्त पञ्च प्रकार तप के अतिरिक्त साधु जन धय कष्टो को भी स्वच्छा स धामत्रित एव ह्यपपूर्वक सहन करत ह ।

(ख) अतरंग तप—एसक द्वारा आत्मा क शुद्ध स्वरूप धारित्र में उन्नति एव ज्ञान में वद्धि का जानी ह । काम काय आदि प्रवृत्ति मा प्रमा

का स आ श्रुति साधु से हुई हो, उस गुरु व समक्ष रहें। गुरु जो प्रायश्चित्त निश्चित करें उसे हृत्पूजक गिरीवाय करे। एसा करन से उसका चरित्र तिन पर दिन उन्नत एव शुद्ध होना जावगा। जो साधु अपने से पान व चरित्र में अधिक उन्नत ह उनकी संगति म रह तथा उनका उपदेश को श्राव्यपूर्वक हृत्पूजक म धारण करें एव कार्यान्वित कर। यदि किसी साधु क शरीर में कोई रोग उत्पन्न हो जाव अथवा किसी अन्य प्रकार की पीडा हो जाव तो उसकी सेवा सुश्रूपा कर। ज्ञानवृद्धि के लिये आवश्यक ह कि उपयुक्त ग्रन्थो का निरन्तर अध्ययन एव मनन कर। विद्वान साधु म पढ़ें अल्पज्ञानी साधुओं को पढ़ावें। चारित्र्य का अधिक शुद्ध व निमल बनने के हतु आवश्यक है कि स्त्री पुत्र गिष्य आदि मनुष्य पशु गृह माजन वस्तु आदि पदार्थों से ममता भाव को सज्जा त्याग दे एव काम, वास आदि अशुभ प्रवृत्तियां जा आत्मोन्नति में बाधक ह छोड दे। एकांत स्थान में बठ कर आत्म स्वरूप, कमबन्धन सत्कार की दशा आदि पर विचार कर तथा पश्चात्तन आदि उचित आगन लगाकर मन को इन्द्रिय विषय से हटा कर, एकाग्र चित्त होकर आत्मा के शुद्ध ज्ञानानन्द स्वरूप में ध्यान एव समाधि लगावे। इस प्रकार अनरण तप द्वारा साधु की ज्ञानशक्ति अधिक विवसित एव चरित्र अधिक उन्नत होता ह। बहिरण तप द्वारा साधु को अपने शरीर एव इन्द्रियदासना पर नियंत्रण प्राप्त हो जाता ह तथा उनके द्वारा पूव सचिन कमबन्धन का नाश हो जाता ह।

६ परापकार—साधु के पास किसी प्रकार की भौतिक सम्पत्ति नही हानी घोर न हो व गृहस्थ मद्रंग नगर या ग्राम में रहते ह। इसीज्ये उम प्रकार का भवाधम जा गृहस्थ व लिये उपयुक्त ह साधु के लिये क्वापि उचिन नहा हो सकता। साधु की परिस्थिति भिन्न होने के कारण, उसके उपसुरग सेवाधम के स्वरूप में भिन्न हो जाता ह। साधु की स्थिति ध्यान में रहते हुए, यह उचिन जा पडता ह कि व सत्कार वा उपकार अपने ज्ञान एव चारित्र्य द्वारा करें। जो मनुष्य उनका काम आवे अथवा

जिनका ससग उनमें होय उनका ऐसा उपदेश द, जिनमें उनकी आध्यात्मिक नतिक आदि उन्नति हो एव उनकी आत्मिक गति का विकास हो। अपने उपदेश व चरित्र बल से श्रोतागण का सच्चरित्र हान के लिये प्रेरित व उत्साहित करें। उपस्थित जनता की स्थिति समझ कर उस जुझा खनन, व्यभिचार में लगन भास भक्षण करन शिकार खनन, मदिरा पीन, शोरी आदि व्यसन का त्याग दन के लिये उत्साहित करें तथा उसमें जो रीति रिवाज सच्चरित्रता या स्वास्थ्य विरुद्ध अथवा अनुपयोगी हों उनके छोड़ने के लिये प्रेरणा करें। उनको पूणतया या कुछ अंश में, पंच व्रत पानने पट नियमों के धारण करन समाज व राष्ट्र के हितवधक काय करन के लिये अप्रसर करें। यदि बहुत से साधु एक साथ सघ के रूप में रहते हो तो विद्वान मुनि का कतव्य ह कि अन्य अल्प ज्ञानी साधुओं का ज्ञान की शिक्षा द, उनकी अत्यक्त गानगति क विकसित एव चरित्र क उन्नत होत में सहायता कर। यदि सघ में कोई साधु अस्वस्थ हो जाव, तो अथ साधुओं के लिये उचित ह कि उसकी सेवा करें।

इस प्रकार पंच महाव्रत व पट आचरण नियमों का निरन्तर यत्न पूर्वक पालन करता हुआ साधु अपने आदेश की धार अप्रसर होता ह। पूर्व सचित कमवचन का धीरे धीरे परन्तु दृढ़ता व साहसपूर्वक बाटता एव नवीन कमवचन से अपनी रक्षा करता हुआ साधु अपनी आत्मा को दिन प्रतिदिन अधिकाधिक निमन एव शुद्ध करता जाता ह। अन्त में एक ऐसा समय आता ह जब समस्त ज्ञानावरणीय दानावरणीय माहनीय एव अन्तराम धाति कमों को नष्ट करके वह अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर लता ह। उस जीवमुक्त (ग्रहत्) परमात्मा का ज्ञानसूय—जो अवतक कम रूपी मेधा से आच्छादित व विकृत हो रहा था—पूण ज्ञान प्रकाश से प्रज्वलित हो उठता ह। उनके ज्ञान प्रकाश में मसार के समस्त पदाय एव उनके समस्त गुण व अवस्थायें भनकन लगती ह। ज्ञानप्रकाश के साथ-साथ वह जीवमुक्त आत्मा दिव्य अलौकिक अनुपम आनन्द

में मग्न हो जाता है। इस अनुपम आनन्द अमरतरु का प्रतिक्षण पान करता हुआ उसमें लीन रहता है। मसार के लक्षण, उस जीव-मुक्त परमात्मा का दिव्यवाणी का संचार होता है जिमके श्रवण से अनक प्राणियों को ज्ञान प्राप्त होता है एवं वे आमांश्रति की ओर अग्रसर होते हैं।

उदगाक्त जीव-मुक्त अवस्था में रहने एवं मसार का कर्माण करने के कुछ समय पश्चात् उसके शरीर सम्बन्धी नाम धातु गोत्र व वदनीय अपाति कर्मों का भी नाश हो जाता है। धातु कम क्षीण हो जान पर उसका शुद्ध आत्मा, भौतिक शरीर का तन कर कमबन्धन से सत्रया मुक्त शक्ति शीत के गिरसर पर विराजमान हो जाती है। जन्म वह शुद्ध सिद्ध परमात्मा सत्ता के निये अनुपम दिव्य आनन्द में मग्न रहता है एवं उसकी दिव्य पान उद्योति में मसार के समस्त पण्य अपन अनन्त गुण व अवस्थाये सहित आलोचित होन रहते हैं कमबन्धन से सत्रया मुक्त हो जान पर कोइ दक्ति एमी शय नहा रहती जा उस परमात्मा को फिर नवीन कम बन्धन में डाल सके उमरु शुद्ध चिदानन्द स्वरूप में विकार उत्पन्न कर सत्र या उसकी दिव्य आत्मन शक्तिया को आस्थापित कर सके। इस निये वह परमात्मा अपन शुद्ध चिदानन्द स्वरूप में गाम्बत मग्न एवं विराजमान रहता है।

तृतीय भाग
समन्वय या एकीकरण ।

समन्वय या एकीकरण

१—माधारण विवेचन

आत्मस्वरूप निणय कर लन एव उसकी प्राप्ति क उपाय जान लेने पर यह प्रश्न स्वभावत ही मनम उठता ह कि इस पृथ्वा पर अनक महामा व विद्वान हा गय ह जिनके हृदय में जीव के वास्तविक स्वरूप, सुख दुःख, ससार भ्रमण जन्म मरण एव जगत में होन वाली अनक घटनाप्रा का रहस्य जानन का उत्कंठा उत्पन्न हुइ ह । इन प्रश्ना का समाधान एव निणय करन में उन्होंने अपन जीवन व्यतीत किये ह । अपन अनुभव, अनुवीक्षण एव अनुसाधान से जो सिद्धान्त स्थिर किये ह उनकी नाव पर अनक मत व सम्प्रदाय मानव समाज में प्रचलित हो गय ह । इन सिद्धान्तो के अध्ययन स गत होता ह कि बहुत सी बातें इन धर्मों में एकसो ह परन्तु कुछ प्रश्नों क सम्बन्ध म इनका मत भिन्न भिन्न ह और कहीं-कहीं परस्पर विरोध भी ह । इन सिद्धान्तो क पटन से साधारण मनुष्य की तो बात ही क्या विज्ञान भी उत्तमन में पड जात हैं और किमी एक निणय पर पहुच नहीं पात ह । यह जानना आवश्यक प्रतीत होता ह कि एक ही विषय के निश्चय करन में, इतनी विभिन्नता एव विरोध का कारण क्या ह ? यदि इस विभिन्नता एव विगण का कारण ज्ञात हो जाव तो भिन्न भिन्न दान एव शास्त्र के यथाय सममन की कृजी हाथ लग जावगी ।

इस विभिन्नता एव विरोध के निम्नलिखित दो ही कारण हा सक्ते ह —

(१) इन विज्ञानों न किसी विगण उद्देश्य की सिद्धि के अर्थ, साध समझ कर विरोधी सिद्धान्त स्थिर किये ह । अथवा

(२) इन महापुरुषों को देना समाज या समय की परिस्थिति अपनी भावति या भ्रम की वीर्य वारण से इन सिद्धान्तों को स्थिर करने में भ्रम हुआ है जिससे कारण इनमें इतनी विभिन्नता एक विचार दृष्टि गोचर होता है।

यह बात तो समझ में नहीं आ सकती कि इन महापुरुषों ने किसी विचार उद्देश्य की सिद्धि के अर्थ, असत्य सिद्धान्तों की रचना एक उनका प्रचार किया है। क्योंकि इन महात्माओं का—जिन्होंने सत्ता से विरक्त होकर गृहस्थ त्याग कर अनक बाँटा का सहन कर, मन बचन एक गराया का नियंत्रण में रख कर, आत्म स्वरूप आत्मा अनक समझाओं का समाधान किया है—मिथ्या सिद्धान्तों को स्थिर व प्रचार करने में कोई उद्देश्य प्रतीत नहीं होता। इसके अनिश्चित प्रायः प्रत्येक मत व सम्प्रदाय में योग्य विद्वान पाए जाते हैं। यदि उन मतों के सिद्धांत बुद्धि विरुद्ध एक प्रवृत्त रूप से मिथ्या हैं, तो उन मतों के अनुयायी विद्वान—जिनका कोई विचार उद्देश्य उन सिद्धान्तों में विश्वास करने का नहीं है—क्या उनको सत्य मान कर उन पर श्रद्धा करते एक उनसे अनुसार आचरण करते। जब कभी भिन्न भिन्न धर्म या भिन्न भिन्न धर्मों व ग्रंथों का अध्ययन एक उनको युक्तियों पर विचार किया जाता है तो ये युक्तियाँ बहुत कुछ सत्य प्रतीत होती हैं। परन्तु जब इनके आधार पर, भिन्न भिन्न सिद्धान्त एक दृश्य स्थिर किए जाते हैं तो इनमें कहीं विभिन्नता एक विरोध दृष्टिगोचर होता है जिसको देख कर बुद्धि चक्कर में पड़ जाती है। कोई सिद्धान्त—जो एक कभीही पर सत्ता न उतरता है—अधिक दिन तक टिक नहीं सकता। इसलिये यही मानना पड़ता है कि इन सिद्धान्तों के रचयिता महापुरुषों का विचार वारण से अवश्य भ्रम हुआ है, जिससे उन्होंने विभिन्न एक विरोधी सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है।

उत्पादन के लिये बौद्ध व ब्रह्मसूत्रियों को जोड़ना। बौद्ध धर्म

है, वह कल नष्ट रहती, मनुष्य के शरीर में भी परिवर्तन होता रहता है, यथा तक कि कुछ बाल^१ में शरीर के समस्त अवयवों का प्रत्यक्ष परमाणु बन जाता है। प्रकृति में भी इसी प्रकार परिवर्तन होता रहता है, जसा कि श्रुत परिवर्तन दिन के छोट बड़े आदि स्पष्ट है। इस परिवर्तन को देव्य कर बौद्धदशन ने प्रत्यक्ष वस्तु को क्षणिक माना है। इसी क्षणिक वाद के अनुसार, उसका कहना है कि मनुष्य के अन्तर्गत जो जीव है, वह भी स्थिर नहीं रहता है उसमें भी परिवर्तन होता रहता है, जो जीव आज है वह कल नष्ट रहता, बन दूसरा जीव होगा। बौद्ध ज्ञान के इस क्षणिक वाद के द्विकूल विपरीत वदान्त दशन का क्रिये वाव है।

वदान्त ब्रह्म को सत् व नित्य मानता है, मनुष्य की आत्मा भी ब्रह्म स्वरूप सत् व नित्य है। उसका नाश कभी नहीं होता न उसमें कोई परिवर्तन होता है। जो परिवर्तन दिखाई देते हैं वे सब भ्रम है, उनका कोई अस्तित्व नहीं। स्वर्ण की कुडल हार माना बक्षण, मुन्ग आदि अनक अवस्थायें हीन पर भी स्वर्ण के स्वरूप स्वर्णत्व^१ में न कोई ह्रास होता है और न वृद्धि। यह स्वर्णत्व स्वरूप सदा स्थिर रहता है। ये कुडल हार आदि अवस्थायें जो दृष्टिगोचर होती हैं वे केवल भ्रम है इनमें कोई सार नहीं। वदान्त दशन कहता है कि स्वर्ण के स्वर्णत्व की भाँति, मनुष्य की आत्मा शुद्ध चिदानन्द ब्रह्म स्वरूप है उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता वह सत् व शुद्ध ब्रह्म स्वरूप में स्थिर रहता है। प्राणी में जो

^१ अक्षर दृष्टि से शरीर का परिवर्तन सात वर्ष में पूरा हो जाता है। शरीर के पहिले समस्त परमाणु धीरे धीरे निरस जाते हैं और उनका स्थान नवीन परमाणु धारण कर लेते हैं।

^१ दृष्टान्त के तौर पर स्वर्ण की मूलतत्त्व लिखा है, यद्यपि नये प्राधि धारों से उसके मूलतत्त्व होने में संदेह है।

काम त्रोध आन्ति अन्क भावनायें, या प्राणी की मनुष्य पशु घादि अन्क अदम्याय जो दृष्टिगोचर होती ह ये सब मिथ्या एव माया ह । इस प्रकार वदान्त दर्शन वा नित्यवादा बौद्धान्त के क्षणिकवाद के नितान्त विपरीत ह । जब दोना दर्शन की युक्तियों पर विचार किया जाता ह तो दोना की युक्तिया सत्य प्रकृत होती ह एव इन दोना क परस्पर विराधी क्षणिक व नित्यवादी सिद्धान्त अपनी अपनी युक्तिया के अनुसार ठाक ठीक जचते ह । एसी दर्शन में यह जानने की उत्कठा स्वभाव होती ह कि इन सिद्धान्तों के परस्पर विराधी होने में क्या रहस्य ह ।

इन दर्शनों के नियम व अनित्य (क्षणिक)वादा के दृष्टान्त एव युक्तियों की सूक्ष्म दृष्टि से परीक्षा करन पर ज्ञान होता = कि ये दर्शन एक ही वस्तु को भिन्न भिन्न दृष्टि से देखते ह । भिन्न भिन्न दृष्टि से देखने के कारण ही अन्क युक्तियों क परिणाम एव उनके आधार पर निश्चित नियम सिद्धान्त भा भिन्न भिन्न ह । स्वर्ण एक सरल शुद्ध मूल तत्त्व ह जिसकी अवस्था में सदैव परिवर्तन होता रहता ह । कभी वह मूल अथ घातु या पदार्थ से मिल कर एक मिश्रित (complex) या संयुक्त (Compound) पदार्थ बन जाता ह । कभी हार नवलम कण आदि सुन्दर आभूषण का रूप धारण कर लेता ह । इन समस्त परिवर्तनों के ज्ञान पर भी वह स्वर्ण पदार्थ अपने वास्तविक स्वरूप स्वर्णत्व का कभी नन्हा छोड़ता । न कभी उस द्रव्य का कोई स्वर्ण परमाणु चादी लोहा आदि अथ घातु या वस्तु क परमाणु में परिणत होता ह । जब कभी स्वर्ण पदार्थ का उसके वास्तविक स्वरूप स्वर्णत्व का दृष्टि से, देखा जाता ह तो यही कहना पता ह कि स्वर्ण एक नित्य पदार्थ ह उसका नाम कभी नन्हा होता ह न उसमें कोई परिवर्तन होता ह । वह सदैव एकसा रहता ह जो परिवर्तन उसकी अवस्थाओं में देखा जाता ह वह केवल अम ह उसमें सार कुछ नहीं । यह धर्मेण वदान्तदर्शन के नित्यवाद के

सदा एव बौद्धदर्शन के क्षणिकवाद के विरुद्ध है। परन्तु जब कभी स्वर्ण के किसी पदार्थ को, उसकी वास्तविक अवस्था की दृष्टि से, देखा जाता है, तो कहना पड़ता है कि स्वर्ण अनित्य है उसमें सदैव परिवर्तन होता रहता है कभी यह मुद्रा, हार, बज्र आदि आभूषण के रूप में दिखलाई देता है कभी तेजाव (Acid) व अन्य पदार्थ से मयुक्त होकर विभिन्न रसायनिक पदार्थ का रूप धारण कर लेता है। उसकी दशा कभी स्थिर नहीं रहती। यह कथन बौद्धदर्शन के क्षणिकवाद व अनुबूल एव वदान्त दर्शन के नित्यवाद के प्रतिबल है।

इसी प्रकार जब मनुष्य का अन्तस्थित आत्मा को, उसके वास्तविक स्वरूप की दृष्टि से, देखा जाता है तो कहना पड़ता है कि आत्मा नित्य, शुद्ध ज्ञान एव भ्रान्तमय है क्योंकि अनेक योनियों के धारण करने, काम, श्राद्ध आदि अनेक भावना व प्रवृत्तियों के होने पर भी आत्मा के वास्तविक स्वरूप का विनाश कभी नहीं होता। कमबचन के कारण उसके वास्तविक स्वरूप के आच्छादित एवं विकृत हो जाने पर भी, उसका वास्तविक ज्ञान भ्रान्त स्वरूप शक्ति रूप में, उसी दशा में विद्यमान रहता है उसके वास्तविक स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं होता। वास्तविक स्वरूप की दृष्टि से आत्मा का उपरोक्त वर्णन वदान्तदर्शन द्वारा प्रतिपादित आत्म स्वरूप के सदा है।

परन्तु जब मनुष्य अन्तस्थित आत्मा का वर्णन उसकी वास्तविक अवस्था की दृष्टि से किया जाता है, तो कहना पड़ता है कि आत्मा में सदैव परिवर्तन होता रहता है वह कभी एकसा नहीं रहता, आत्मा अनित्य एव क्षणिक है। यह दशा जाता है कि आत्मा की अवस्था में परिवर्तन सदैव होता रहता है आत्मा एवही अवस्था में कभी स्थिर नहीं रहता उसकी रागद्वेष आदि भावनाओं में भी सदैव परिवर्तन होता रहता है कभी वह मूर्खी होता है कभी दुःखी कभी शोक से उसके अंग बाँपन लगते हैं, कभी त्याग से द्रविण नशा से अभ्युत्थान बहने लगती है इस भाँति अनेक

प्रवार की भावनायें उसके हृदय में होती रहती हैं । भावना के सदृश मनुष्य की ज्ञान-शक्ति में भी परिवर्तन होता रहता है । मनुष्य की परिस्थिति में ज्ञान का विकास और प्रतिकूल परिस्थिति में ज्ञान का ह्रास होता है । उसके शरीर रूप रंग, सामर्थ्य, बनावट आदि में भी सदा परिवर्तन होता रहता है । मनुष्य, बाल्य अवस्था से युवा युवा में वृद्ध दशा की प्राप्ति होता है । जीव कमी मनुष्य, कमी पदा सभी किसी समय जन्म म जन्म मता है । इस प्रवार उनकी समस्त अवस्थाओं में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है । बाह्य अवस्था की दृष्टि से, आत्मा बौद्धदर्शन द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त के मनुष्य धर्मिय सिद्ध होता है ।

इस विवचन से, इस परिणाम पर पहुँचा जाता है कि भिन्न भिन्न दार्शनिकों ने आत्मा एवं अन्य पदार्थों का वर्णन भिन्न भिन्न दृष्टियों से किया है । इन भिन्न भिन्न दृष्टिकोणों के कारण ही, उनका वर्णन भिन्न भिन्न है । इन विभिन्न वर्णनों के आधार पर ही उनके विभिन्न सिद्धान्तों की रचना हुई है । एक मूल साधारणतया लगभग सब ही दार्शनिकों में पाई जाती है । किसी दार्शनिक ने आत्मा के किसी एक गुण या अवस्था का वर्णन किसी एक दृष्टि से किया है और उस (आत्मा) के अन्य समस्त गुण एवं अवस्थाओं की उपेक्षा की है जिसका परिणाम यह हुआ है कि आत्मा के उस गुण या अवस्था का वर्णन में भी कुछ अनियमित हो गई है । दूसरे दार्शनिक ने उस आत्मा के किसी दूसरे ही गुण या अवस्था का वर्णन किसी एक दृष्टि से किया है और उसने अपने वर्णित गुण के प्रति रिक्त अन्य गुण अवस्था एवं दृष्टियों की उपेक्षा की है । इसका परिणाम यह हुआ है कि आत्मा एवं अन्य पदार्थ के सम्बन्ध में, इन दार्शनिकों का वर्णन अधूरा व अपूर्ण है तथा आपस में भिन्न भिन्न और कमी-कमी परस्पर विरोधी भी है । आत्मा या किसी पदार्थ का पूरा वर्णन तो उसी समय हो सकेगा जब उसके समस्त गुण एवं अवस्थाओं का पूरा विवरण भिन्न भिन्न दृष्टियों से किया जाय । इसके लिए आवश्यक है कि भिन्न-भिन्न

सिद्धान्तों के प्रतिपादन में दार्शनिकों के भिन्न भिन्न दृष्टिकोण का समन्वय या एकीकरण करके वही सिद्धान्तों का समन्वय या एकीकरण करके वर्णन किया जाय। भिन्न भिन्न दृष्टिकोण द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों के एकीकरण कर लाने पर ही उस वस्तु का वर्णन पूर्ण हो सकेगा।

२—स्याद्वाद या अनेकान्तराद

भारत के दार्शनिकों में से जनदगान ने वस्तु, विनाय कर भात्मा के भिन्न भिन्न गुण एवं अवस्था का भिन्न भिन्न दृष्टि से वर्णन किया जाना एवं उनके समन्वय को बड़ा महत्त्व दिया है। इसलिए जनदगान के उपरोक्त सिद्धान्त का सक्षिप्त विवरण करना यहाँ अनुचित न होगा।

जनदगान कहता है कि प्रत्येक वस्तु अनवान्तात्मक^१ है अर्थात् प्रत्येक वस्तु में अनक गुण व अवस्थायें होती हैं। उस वस्तु का पूरा वर्णन तो उसी समय ही सकता है जब उसके समस्त गुण व अवस्थाओं का भिन्न भिन्न दृष्टिकोण से वर्णन किया जाय। यह असम्भव है कि मनुष्य किसी वस्तु के समस्त गुण एवं अवस्थाओं का वर्णन एकदम एक माय कर सके। उसका विवरण होकर उस वस्तु के गुण एवं अवस्थाओं का वर्णन क्रम से करना पड़ता है। जो वर्णन किसी वस्तु का किसी समय किया जाता है वह वर्णन उस वस्तु के किसी गुण या पर्याय (अवस्था) का किसी एक दृष्टि से होता है। उस वस्तु के उसी गुण व पर्याय का, अथ दृष्टि से या उस वस्तु के किसी अन्य गुण या पर्याय का उसी दृष्टि से ध्यान बिल्कुल ही अन्य प्रकार का होता है। किसी वस्तु के वर्णन का उसका सम्पूर्ण वर्णन सम्भक्त लेना भूल है। वस्तु के किसी गुण या पर्याय का, किसी एक

^१ अनेकान्तात्मक = अनेक + अन्त + आत्मक। संस्कृत भाषा में 'अन्त' शब्द के कितने ही अर्थ होते हैं यहाँ पर 'अन्त' शब्द से 'अन्त' अर्थ ग्रहण किया गया है। इसलिये उपरोक्त अनेकान्तात्मक शब्द का अर्थ 'अनेक अन्त वाला' अथवा अनेक गुण वाला होता है। इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक वस्तु में अनेक गुण होते हैं।

दृष्टि से, वणन किय जान को जनदान स्याद्वाद^१ के नाम से बोधित करता है। जनदान न इस स्याद्वाद अथवा अनकान्तवाद को अत्यन्त ऊचा पद दिया है जसा कि श्री अमृतचन्द्र आचार्य विरचित पुरुषाय सिद्धशुभाय के निम्नलिखित श्लोक से पात होता है —

परमागमस्य जीव निपिद्धजात्यघसिधुरविधानम् ।

सकलनयविलसिताना विरोधमयन नमाम्यनकान्तम् ॥

अर्थात् (निपिद्धजात्यघसिधुरविधानम्) जन्माद्य परया के हानि सम्बन्धी भ्रम को दूर करने वाल (सकलनयविलसिताना) पन्थियों के समस्त दृष्टिकोणा को प्रवाणित करने वाल (विरोधमयन) वस्तु वणन सम्बन्धी विरोधो को हटाने वाल (परमागमस्य जीव) गथाथ सिद्धान्त के जावन्त (अनकान्तम्) अनक घम व दृष्टिकोणा को कहने वाल स्याद्वाद को (नमामि) मैं अमृतचन्द्र सूरि नमस्कार करता हूँ ।

इस श्लोक में आचार्य मन्त्रेय न जन्माद्य परया के गयी नामक

^१ स्याद्वाद—स्याद् (क्यचित् अर्थात् किसी एक दृष्टि से) + वाद (कथन) । इस स्याद्वाद शब्द के कथन से यह बोध होता है कि विवक्षित वस्तु का वणन, उसका किसी एक गुण का किसी एक दृष्टि से, है, उसका वणन, अथ गुण या अथ दृष्टि की अपेक्षा, अथ प्रकार होता है । कुछ विद्वानों ने 'स्याद्' शब्द का अर्थ गायद समझा है, जिसके कारण उन्होंने स्याद्वाद का अर्थ यह लगाया है कि गायद ऐसा ही, गायद वसा ही । उन्होंने इसको सदेहात्मक दगा का भाषात्मक समझा है । परन्तु जन विद्वान इसका अर्थ ऐसा नहीं लगाते हैं । वे तो स्याद् शब्द से क्यचिन् का अर्थ लते हैं और स्याद्वाद शब्द से यह भाव लेते हैं कि विवक्षित वस्तु के किसी एक गुण का किसी एक दृष्टि से वणन है । उस गुण का उस दृष्टि से कथन बिल्कुल निश्चयात्मक है उसमें किसी प्रकार का सदेह नहीं है ।

आख्यायिका का उद्धरण देकर, अपना अनेकांत सम्बन्धी निदान्त पाठका वा भ्रमगत कराया है। क्या इस प्रकार है —

किसी याम में जन्म से अर्ध किन्तु ही मनुष्य रहते थे। उस याम में एक हाथी आया। हाथी को पहिचानने के लिये, ये नत्रहीन मनुष्य उसके अगा का स्पर्श करने लग। किसी ने उस हाथी के पर किसी ने दांत किसी ने उसका घड, किसी ने कण किसी ने सूड किसी ने पूछ का स्पर्शन किया। उस हस्ति के चल जान पर ये अम से अर्ध मनुष्य अपने अपने हस्ति सम्यग्घा अनुभव कहने लग। यह मनुष्य—जिसने हस्ति के पाद का स्पर्शन किया था—कहने लगा कि हाथी स्तम्भ के सदृश होता है। कण का स्पर्श करने वाला मनुष्य कहता था कि हस्ति सूप (पत्र) के समान होता है। इसी प्रकार घड का स्पर्शन करने वाला मनुष्य हाथी की मत्तिका के स्वघ (ढर) सदृश सूड का स्पर्शन करने वाला मनुष्य हाथी की मूराल के तुल्य, पूछ का स्पर्शन करने वाला मनुष्य हाथी की लाठी के समान दात का स्पर्शन करने वाला मनुष्य हाथी की डड के सदृश कहता था। ये जमा अर्ध मनुष्य परस्पर वादविवा एव भगडा करने लगे। प्रत्येक मनुष्य अपने अपने कथन को सत्य तथा दूसरे मनुष्य के कथन को असत्य बतलाता था। कुछे दूर तक वादविवा चला रहा। ये किसी निश्चय पर न पहुँच सके। उनका वादविवा को सुनकर एक मन्त्रवान पथिक—जिसने हाथी को सर्वोप देखा था—उनके पास आया और कहने लगा कि तुम सब मनुष्य व्यय ही भगडा करते हो। तुम्हारा सब का कथन मत्त है केवल एक ही मूल है। यह कहना कि हाथी स्तम्भ के ही सत्त्व होता है या हाथी सूप स्वघ लाठी मूसल या डड के ही तुल्य होता है मिथ्या व असत्य है। तुम सब अपने अपने कथन को मित्राकर कहो। सबका मिला हुआ कथन हाथी का मत्त कथन होगा। हाथी स्तम्भ के सत्त्व भी होता है सूप के समान भी और इसी प्रकार मूसल लाठी डडा व स्वघ के समान भी होता है।

एक सब न हस्ति के भिन्न भिन्न भ्रगा का स्थान किया है इसलिये मुम्हार कथन में परस्पर विरोध है। सब भ्रगो के कथन मिलान से हस्ति का पण वणन ही सवेगा।

इस "लोक का भाषाथ यह है कि जिन प्रकार उदवान पथिक न जम स भ्रघे मनुष्यों के हस्ति सम्बन्धी विरोध को मिटा दिया था, इमा प्रकार यह स्याद्वाद (अनेकात्मवाद) मनुष्यों व पारम्परिक विराय का दूर करने वाला है। वस्तु के समस्त गुण एक अवस्थायी को भिन्न-भिन्न दृष्टियों से दर्शन वाला है, इसलिये यह स्याद्वाद यथाथ पान का भावन एक प्राण है। स्याद्वाद का महत्व एक उगवी अत्यन्त आश्चर्यवता त्तित्ताने के लिये, उसका नमस्कार किया है।

इस भाष्यायिका में आ विराय का कारण दर्शाया गया है वही कारण भिन्न-भिन्न दर्शना व परस्पर विराय का है। प्रत्येक वस्तु अनवान्तामक होती है उनमें बहुत स गुण एक अवस्थायी होती है और उनका वणन भी भिन्न भिन्न पथ व दृष्टि से किया जाता है। बाई मनुष्य किसी वस्तु व किमी एक गुण का विसा एक दृष्टि से वणन करता है दूसरा मनुष्य उसा वस्तु क उसी गुण का किमी दूसरी दृष्टि से तीसरा मनुष्य उस वस्तु के उनी गुण का तीसरी दृष्टि से तथा अय मनुष्य उसी वस्तु व उसी गुण का अय दृष्टिया से वणन करते है अथवा एक मनुष्य किमा विचगित्त वस्तु के एक गुण का वणन करता है दूसरा मनुष्य उसा वस्तु क किमा दूसर गुण का, तासरा मनुष्य उसके किमी तासर गुण का और अन्य मनुष्य उम वस्तु के अय गुणा का वणन करत है। इस प्रकार एक ही वस्तु व भिन्न भिन्न गुणा का भिन्न भिन्न दृष्टिया से वणन अनेक प्रकार होता है। यदि उनमें स बाद मनुष्य यह कह कि जा म करता है यहा साथ है वनी उस वस्तु का रूप है अय प्रकार नगी ही शकता दूसर मनुष्या का कथन मिथ्या है। उससे हम कथन में उगवी भूल माननी हामी। उम वस्तु का यथाथ वणन तो उा समय ही शकता कि जब उसके समस्त गुण व

भवस्याघ्रा के भिन्न भिन्न दृष्टि से कथित वणन को एक साथ मिला लिया जाव ।

उदाहरणार्थ किसी स्त्री का वणन करना है । एक मनुष्य उसकी सुदरता रूप लायण्य शरीर की सुहृलता का वणन करता है, दूसरा मनुष्य उसकी धन सम्पत्ति, भूषण, आभूषण आदि एश्वय की सामग्रियों का तीमरा व्यक्ति उसकी बुद्धि एवं व्यवसायिक बुद्धि का चौथा व्यक्ति उसकी दानशीलता का अथ व्यक्ति उसके स्वभाव आदि अन्य गुणा का वणन करता है । इनमें से प्रत्येक व्यक्ति का कथन अपूर्ण एवं अधूरा है । उस स्त्री का पूरा वणन तो उस समय हो सकेगा कि जब सब व्यक्तियों के भिन्न भिन्न दृष्टियों से भिन्न भिन्न गुणा की कथनावली का एकत्र करके कहा जाव । यदि कोई मनुष्य यह कह कि उस स्त्री के सम्बन्ध में, मैं जो कुछ कहता हूँ, यही उस स्त्री का यथाय वणन है उस स्त्री का वणन अन्य प्रकार नहीं है सचता न उस स्त्री में अन्य गुण हैं । इस कथन में उस व्यक्ति की भूल मानना होगा । उस स्त्री या किसी वस्तु का यथाय वणन की दो ही रीति हो सकती है या तो उसके समस्त गुण एवं अवस्थाओं का वणन सब दृष्टियों से किया जाव या उसका कुछ विविधित गुणा का वणन कुछ दृष्टियों से करके यह कह दिया जावे कि इन दृष्टियों में वर्णित गुणा के अनिश्चित उसमें अन्य गुण व अवस्थाएँ भी हैं जिनका भिन्न भिन्न दृष्टियों की अपेक्षा अन्य प्रकार से कथन किया जा सकता है । इन दोनों रीतियों में से किसी एक रीति के धारण करने पर ही पाठक एवं श्रोताओं को भ्रम नहीं होगा । अन्यथा व उस वस्तु का कुछ गुणा का कुछ दृष्टियों की अपेक्षा कथन सुन लेने पर यही धारणा बना लेगी कि उसमें केवल वर्णित ही गुण हैं इनके अनिश्चित उसमें न अन्य गुण हैं और न वर्णित गुणा का कथन अन्य दृष्टियों की अपेक्षा अन्य प्रकार हो ही सकता है ।

प्रत्येक वस्तु साधारणतया अनवान्तात्मक (अनक गुण व अवस्था वाली) होती है । मनुष्य का नियम यह बड़ा कठिन है कि उस वस्तु का

समस्त गुण एव भवम्भ्याम्नो वा भिन्न भिन्न दृष्टिया से वणन कर । इसके प्रतिरिक्त, केवल उसी गुण या भवत्वा का वान उस दष्टि से किया जाता ह, जिस दृष्टि स जिस गुण के कथन करन की भावश्यकता, उस समय की परिस्थिति के अनुसार प्रतीत होती ह । अथ भनावश्यक दष्टि से उस गुण या अथ भनावश्यक गुणा के वणन करन की उस समय उपधा की जाती ह । एसी दगा में यह हृदय में धारण कर लेना प्रत्यक व्यक्ति के लिय लाभदायक होगा कि प्रत्येक वस्तु धनकान्तात्मक ह और जो कथन किसी समय किया जाता ह वह स्याद्वाद रूप (किसी एक गुण का किसी एक दष्टि) से वणन ह ।

जनान न कथनगाली को मुख्यतया दो भागो में विभक्त किया ह —

(१) द्रव्याधिबनय—(द्रव्य+आधिक) पदार्थ के मयाय स्वरूप की (नय) दृष्टि से वणन करना । इस दष्टि से प्रत्यक पणाय का वणन, उसके वास्ताविक स्वरूप की अपेक्षा स किया जाता ह । इस नय से पणाय नित्य ठहरता ह । इस दृष्टि से आत्मा नित्य, शुद्ध निर्विकार गान एव धान-दमय निश्चित हाता ह । यह वणन बदालनदगान द्वारा प्रतिपादित आम स्वरूप सदृश ह । इस द्रव्याधिक नय को सत्याय भूताय या निश्चय नय के नाम से भी बोधित किया ह ।

(२) पर्यायाधिक नय—(पर्याय+आधिक) वास्तु भवत्वा से (नय) दृष्टि से वस्तु का वणन करना । इस दष्टि से वस्तु परिवर्तनीय ह । आत्मा भी अस्थिर अनित्य एव अज्ञान उसवी वास्तु भवत्वा में सदैव परिवर्तन होता रहता ह । अज्ञानदगान द्वारा प्रतिपादित क्षणिकवाच के तुल्य ह । अज्ञान न अतत्याय भूताय या व्यवहारनय के नाम से भी बोधित किया ह ।

जनदगान से कथनगाली को और भी दो भागो में विभक्त किया है जिनका वणन जन अथा के अध्ययन द्वारा ही किया जा सकता ह । पर उनका उद्धरण करना भावश्यक न है ।

इसका एक परिणाम यह होगा कि उस अनन्त शक्ति एवं गुण युक्त आत्मा की सम्पूर्ण सुन्दरता मधुरता एवं विग्रहता ही नष्ट हो जावेगी ।

भिन्न भिन्न आचार्यों ने भिन्न-भिन्न गुणों का वर्णन एवं भ्रम गुणों की उपाया क्या की ? इसके उत्तर केवल दा ही हो सकते हैं —

(१) साधारण व्यक्ति के सद्गुण आचार्यों की भी रचि भिन्न-भिन्न होती है । अपनी रचि के अनुसार किसी आचार्य का ध्यान आत्मा व एक गुण की ओर जाता है और दूसरे आचार्य का किता दूसरे ही गुण की ओर । एक आचार्य अपनी रचि के अनुसार, एक गुण को किसी एक दृष्टि से देखता है दूसरा आचार्य उसी गुण को बिल्कुल दूसरी दृष्टि से प्रवर्णन करता है । जैसे बदान्तदशान के रचयिता आचार्य का ध्यान आत्मा की स्पर्शा शुद्ध चिदानन्द भवस्था की ओर गया है । भ्रम गुणा की उपेक्षा करके, वे इस शुद्ध आस्वत्त चिदानन्द भवस्था का उत्तम वर्णन करते हैं वहाँ तक कि उनका कथन अनिर्गम्योक्ति तक पहुँच जाता है । एतत्तन्मनुष्य की परिवर्तनशील मनक भवस्थायें उनको माया व भ्रमपूर्ण स्थिति सादि देनी है । उनको प्रतीत होता है कि इन भवस्थाओं का किसी प्रकार का भी प्रभाव आत्मा की शुद्ध चिदानन्द भवस्था पर नहीं पड़ता है । इस प्रकार भ्रम आचार्यों का ध्यान आत्मा के भ्रम गुण एक भवस्थाओं की ओर आकर्षित होता है और वे बतल उनका ही वर्णन करते हैं ।

(२) महान् पुरुषों पर जिन देश समाज समय का परिस्थिति में उत्पन्न होने का काम करते हैं उन देश समाज व समय की नैतिक, आध्यात्मिक मानसिक, सामाजिक आर्थिक एवं राष्ट्रीय स्थिति का प्रभाव पड़ता है । उनका ध्यान उस समय का भावदयतामा की ओर आकर्षित होता है । उन समय की अव्यवस्था एवं भ्रष्टियों को दूर करने के लिये वे कटिबद्ध होते हैं । समाज को सांसारिक शान्ति व निमुक्त करने के लिये, वे नवीन विद्वान्ता का निर्माण करने तथा उपस्था देने हैं । उन कारण के लिये पर एक पराधीन देश को सौजन्य का भ्रम देना द्वारा पद

दत्त विद्या गया है। पतनीय होन व कारण, उस देव की दशा मध्य वस्थित समाज की स्थिति एवं अन्य दाया म प्रसिद्ध जनता निधन, दुबल साह्य एवं उद्यमहीन नतिर व घाटीरिख धल में क्षीण हो जाती है। उस देव व महान पुरुष उस देव की भाव्यकताओं को देखकर एवं सिद्धान्तों का रचना एवं प्रचार करेंगे कि जिससे देव में जागृति उत्पन्न हो नवदुष्क देव के उत्पान वाय में लगे एवं स्वदेव की परतनता के बगुन से छुड़ा कर स्वतंत्र करें।

यदि किसी देव के निवासियों में मद्यपान व्यभिचार एवं विलास प्रियता की प्रवृत्ति बढ गई है और इस प्रवृत्ति के कारण, मद्य दाप भी उत्पन्न हो गया है उस देव के महान पुरुषों का ध्यान स्वमेव ही समाज का शाश्वतीय दुष्यधस्या की घोर भावपित्त होगा। वे ऐसे सिद्धान्तों की रचना एवं प्रचार करेंगे जिनसे मद्यपान व्यभिचार, विलास-प्रियता आदि दाप दूर हो जावें। व व्यभिचार मद्यपान आदि प्रचलित दापों का घोर प्रतिवाह करेंगे एवं उन दोषों का समूहानुत्तन करन का प्रयत्न प्रयास करेंगे।

समाज की परिस्थिति एवं उसकी सांख्यिक भाव्यकताओं का प्रभाव उस समय के महान पुरुषों पर पड़ता है। उन भाव्यकताओं की पूर्ति की भावना से प्रेरित होकर देव व समाज के हित के लिये व महान पुरुष समयोपयोगी सिद्धान्तों का निर्माण करते हैं। उनका ध्यान आत्मा व मनक गुणों में से उभय एवं उच्च दृष्टि की घोर भावपित्त हाता है जिसकी अधिकता की भाव्यकता उस समय हाती है। व महान पुरुष सांख्यिक भाव्यकताओं की पूर्ति करन वाली दृष्टि एवं गुण का विशेष प्रतिपादन करने है तथा अन्य दृष्टि व अन्य गुणों का—अनावश्यक समझ जान या उस घोर ध्यान के भावपित्त न हान से—व्यर्थ छट जाना है।

इस प्रकार भिन्न भिन्न शाखाओं ने, स्वर्तुचि अनुसार मद्यपान सांख्यिक समाज की परिस्थिति के कारण आत्मा के भिन्न भिन्न गुण व भाव

स्वामी का भिन्न भिन्न दृष्टि से वर्णन किया है। इन आचार्य या इनके शिष्या द्वारा कुछ गुणा का मात्रा से अधिक वर्णन होने एवं अन्य गुणा की उपेक्षा किये जाने के कारण ही, भिन्न भिन्न द्वान्द्व एवं सिद्धान्तों का जन्म हुआ है।

यहाँ पर यह जान लेना उचित है कि प्रचलित मुख्य द्वान्द्व एवं धर्मों ने आत्मा के किस किस गुण का, किस किस दृष्टि से देखा है एवं अन्य गुण व अन्य दृष्टियों का उपेक्षा की है तथा उन धर्मों पर उनकी उत्पत्ति के समय विद्यमान परिस्थिति का क्या तक प्रभाव पड़ा है। यह जान लेने से, इन द्वान्द्वों का विभिन्नता व विरोध के कारण और भी अधिक स्पष्ट दिखनाई देन लगेगा एवं इन द्वान्द्व व धर्मों के यथायथ मर्म मन में अधिक सहजता मिलगी।

४—दर्शनों का समन्वय

(१२) साख्य व योगदान

इन दोनों दर्शनों में अनन्त आत्मार्थे इस जगत में मानी है । गंधार्थे प्रनादि काल से है और अनन्त काल तक रहती है । अपने पूर्व कर्म सत्कारों के कारण ये आत्मार्थे जगत की भिन्न भिन्न यानियों में जन्म धारण करता हुई भ्रमण करता रहती है । कर्मों का फल जीवा को स्वयं मिलता है । कोई भय चिन्तन शक्ति या ईश्वर प्राणियों को उनके कर्मों का फल नहीं देता है । साख्यज्ञान ने पुरुष (आत्मा) व प्रकृति केवल दो ही पदार्थ माने हैं । जब प्रकृति व्यक्त दशा में होती है उसमें २३ भेद हो जाते हैं । पुरुष प्रकृति और इस प्रकृति के २३ भेदों को मिलाकर २५ तत्त्व कहते हैं ।

साख्यज्ञान ने उपरान्त दो पदार्थों के अनिर्वक्त एक ईश्वर का भी माना है । परन्तु यह ईश्वर मनुष्य के विषय में हस्तक्षेप नहीं करता, न मनुष्य का ही उसके पूर्व कृत कर्मों का फल देता है । उस ईश्वर को केवल ज्ञान देने वाला गुण माना है । इन दोनों दर्शनों के अनुसार जीव भ्रमता होकर ससार में भ्रमण कर रहा है । ज्ञान हो जाने पर आत्मा कर्मबन्धन से छूट जाता है । कर्मबन्धन से छूटने के लिये मनुष्य को इन्द्रिय मयम विषय-वासना-त्याग ससार से वरान्त भ्रमिता आदि पंच शत (नियम) पालन करना एवं समाधि लगानी होती है । कर्म बन्धन से मुक्त हो जाने पर आत्मा को केवल ज्ञान (सर्वज्ञता) प्राप्त हो जाता है । बुद्धि समय तक मनुष्य शरीर में जावमुक्ता (ग्रहण) अवस्था में रहकर फिर मोक्ष का प्राप्त हो जाता है जहाँ वह अनन्त काल तक अपनी

विश्व ज्ञान ज्योति स, ससार व समस्त पदार्थों को उनकी समस्त भूत भविष्यत एव वनमान अथवा सहित, अवलोकन करता रहता है ।

इन दोनों दर्शनों में आत्मा के बदन पान स्वरूप का ही ध्यान किया है । आत्मा के गत ध्यान के स्वरूप एव अथ गुणा का कथन नहीं किया है । इन दर्शनों में आत्मा के ध्यान में ध्यान अथ गणों का उपलब्धि की है । इन दर्शनों में आत्मा को सर्व गुण निर्विकार निरजन मदन अकर्ता व भोक्ता माना है । इनके अनुसार आत्मा सर्व गुण निर्विकार रहता है उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता । आत्मा का नाम नहीं करता है । यह बस दृष्टा एव शक्ति है । ससार व प्राणियों में राम कृष्ण आदि अनेक प्रकार की जो भावनाएँ पाई जाती हैं अनेक प्रकार की चिन्ता व सकल्प विरल्य जो उनमें दृष्टिगोचर होते हैं इन सब का प्रकृति का ही विकार माना है । इन दर्शनों के अनुकूल प्रकृति में ही अनेक प्रकार के परिवर्तन हो रहे हैं । आत्मा मदन दृष्टा व ज्ञान रहता है । इस ध्यान में स्पष्ट है कि इन दर्शनों में आत्मा का बदन वास्तविक गुण चतन स्वरूप की ही दृष्टि में, तथा है अर्थात् आवरण के कारण आत्मा की विद्यमान परिवर्तनीयता बाह्य अवस्था की सबथा उपलब्धि का है ।

साध्यमान ने इन दृश्यमया जगत की उत्पत्ति एव प्रलय की विषय व्याख्या की है । इन दर्शनों के अनुसार इस सृष्टि का कर्ता एव सहायक कोई विषय चतन अथवा ईश्वर नहीं है और न आत्मा (पुरुष) ही कर्ता है । इसलिये हम जगत की उत्पत्ति एव प्रलय का कारण प्रकृति का परिवर्तन ही है ।^१

^१ साध्यमान ने इसका विस्तारपूर्वक ध्यान दिया हुआ है । सत्य, रज व तम गुण के सम भाव हो जाने पर प्रकृति अथवा दर्शनों में पृथक् जाती है, उस समय यह दृश्यमया जगत लय हो जाता है । इस दर्शनों को प्रलय कहा जाता है । बुद्ध समय के पश्चात्, प्रकृति अव्यक्त दर्शनों से व्यक्त

योगदान का मुख्य विषय योगाभ्यास का प्रतिपादन करना है, जिसके द्वारा मुमक्षु जब चित्त की वृत्तियाँ का निरास करे तब तब आत्म स्वरूप में समाधि लगाकर, शुद्ध आत्मज्ञान स्वरूप की प्राप्ति कर सकता है। यह वचन बड़ा ही सुन्दर एवं अत्यन्त उपयोगी है। साध्य व यागदान ने अज्ञ विषया का प्रतिपादन नहीं किया है उनको उपेक्षा की दृष्टि से देना है।

धरा की ओर झुकती है। सत्व, रज व तम गुणों में विषमता उत्पन्न हो जाती है। सबसे प्रथम प्रकृति में महत भाव (बुद्धि) उत्पन्न होता है, फिर अहंकार का जन्म होता है। उसके पञ्चात मन, पाँच ज्ञानन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ पञ्च तन्मात्राएँ व स्थूल पञ्चभूत उत्पन्न होते हैं, जिनके उत्पन्न होने पर सृष्टि की उत्पत्ति होती है।

(३, ४) न्याय व वैशेषिक दर्शन

न्यायदर्शन का मुख्य विषय युक्तिवाद का प्रतिपादन करना है। युक्तिवाद का ही दृष्टि में रखकर उसने १६ तत्व माने हैं। अथर्व वेद के अर्थ समस्त विषयों को उसने, गौण दृष्टि से, देखा है। अथर्व विषयों का प्रतिपादन उस दर्शन में बहुत कम किया गया है। जिन अथर्व विषयों का प्रतिपादन किया गया है वह अधूरा है। युक्तिवाद का वर्णन यहाँ ही विवाद एवं स्पष्ट रीति से किया गया है। इस युक्तिवाद से वस्तु के यथायथ समझन में बड़ी सहायता मिलती है।

वैशेषिकदर्शन में परमाणुवाद का वर्णन यहाँ ही सुन्दरता से माया किया गया है। परमाणुवाद ही इस दर्शन का मुख्य विषय = अथर्व विषयों का वर्णन गौण एवं अपूर्ण है।

इन दर्शनों के आत्मा आदि ६ अर्थ और गुण आदि ७ पदार्थ माने हैं। इन दोनों दर्शनों के अनुसार आत्माएँ अनन्त हैं अनादि काल से हैं और अनन्त काल तक रहती हैं। ये आत्माएँ पूर्व कम सस्कारों के कारण अनेक मोनियों में जन्म लेती हुई, मरार में भ्रमण करती रहती हैं। न्याय दर्शन ने आत्मा के निम्नलिखित ६ लिंग माने हैं — राग द्वेष, प्रयत्न सुख दुःख व ज्ञान। वैशेषिक दर्शन ने आत्मा के उपरोक्त ६ गुणों (लिंगों) के प्रतिरिक्त अथर्व ८ गुण और भी माने हैं। इन गुणों का वर्णन से स्पष्ट है कि इन दर्शनों ने आत्मा को, उसकी विद्यमान दशा (पर्यायाधिकनय) की दृष्टि से ही, देखा है। प्रत्येक सगरी आत्मा में राग द्वेष, सुख दुःख आदि भावनाएँ पाई जाती हैं। प्रत्येक आत्मा कुछ न कुछ प्रयत्न करता दिग्दर्श देता है। प्रत्येक आत्मा में शून्याधिक ज्ञान होता है। आत्मा का विचार उसके वास्तविक स्वरूप ज्ञान प्रागल्भ्य आदि की दृष्टि से, नहीं

किया है। शरीर, इन्द्रिय तथा इन्द्रिय के विषय इन्द्रिय द्वारा ज्ञान, बुद्धि, मां दाप जय प्रवृत्ति सुख व दुःख से मुक्त होना ही माक्ष की प्राप्ति करना है। इन दोनों में यह स्पष्ट रूप से बणन नहीं किया गया है कि मुक्त हान पर आत्मा की क्या अवस्था होती है।

‘यामन्तान के प्रथम सम्बन्धित सूत्र में किसी ईश्वर का बणन नहीं है। केवल टीकाकारों ने प्रमेय तत्व में कथित आत्मा व दो भद किय है — गामारिक आत्मा व परमात्मा। त्यागिकों के सदृश ही, बगविकों ने भी ईश्वर विषय का विषय प्रतिपादन नहीं किया है। आत्मद्रव्य के ही सगारी आत्मा व परमात्मा दो भद किय है। परमात्मा को आत्मा का कमपन्याग भा कहा है।

इन दोनों दोनों में आत्म स्वरूप का प्रतिपादन, उसी विद्यमान सामारिक दृष्टि (पर्यायाधिक नय) से किया है जब कि पूव कथित साम्य व यागानों में आत्मा के गान स्वरूप का बणन, उसके वास्तविक स्वरूप का दृष्टि (द्रव्याधिक नय) से किया गया है। भिन्न भिन्न दृष्टियों से प्रतिपादन किये जान के कारण ही इन दोनों क द्वारा प्रतिपादित आत्म स्वरूप व बणन में विभिन्नता एव अन्तर दिखलाई पडता है।

(५) वेदान्त या उत्तर मीमांसा

भारत की शिक्षित हिंदु जनता में वेदान्तज्ञान का मान्यता सबसे अधिक है। इस ज्ञान न केवल एक तत्व ब्रह्म ही माना है जो सच्चिदानन्द सबध्यायी है। ससार में जो अनन्त आत्माय दृष्टिगाचर होती है वह सब ब्रह्म के ही भाग या प्रतिबिम्ब है। इस वेदान्तज्ञान के अनुगमन के इन्हीं वाद प्रचलित हैं (जिनका वर्णन प्रायः किया जावेगा)। ये आत्माय, पूर्व कर्म मत्कारणों के कारण ससार की अनन्त यात्रियों में जन्म धारण करती हुई भ्रमण करती रहती है। ब्रह्म का भाग होने के कारण प्रत्येक आत्मा सच्चिदानन्द है। आत्मा सदैव शुद्ध निरञ्जन ज्ञान के आनन्दमयी है। मनुष्य अपनी अज्ञानता एवं अज्ञान के कारण अपने का मुक्ता दुःखी, रागा निरागी ज्ञानी, अज्ञानी आदि मानता है। जब तक वेद ज्ञान में प्रयास रहता है तब तक उन ही ससार में भ्रमण करना पड़ता है। आत्मा के सच्चिदानन्द स्वरूप का ज्ञान ही ज्ञान पर वेद आत्मा मग्न भ्रमण में मुक्त हो जाता है एवं सच्चिदानन्द ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त हो जाता है।

मनुष्य की बाह्य अवस्था में जो निरन्तर परिवर्तन गेगा रहता है जिसके कारण मनुष्य में काम, क्रोध आदि अनेक प्रकार के भावों के ज्ञान आदि में अनन्त अधिवृत्ता एवं अनेक प्रकार के रूप रंग आदि सिद्ध साईं दत्त है इनको 'माया' के शब्द से बाधित किया है। बाह्य जगत् का भी माया बनसाया है। इस वर्णन से स्पष्ट है कि वेदान्तज्ञान न आत्मा के ज्ञान एवं आनन्द गुण पर, केवल आत्मा के वास्तविक स्वरूप का दृष्टि (द्रव्याधिक नय) से, विचार किया है। बाह्य अवस्था का दृष्टि (पया साधिक नय) से विच्छिन्न विचार नहीं किया है। बाह्य अवस्था को उपधा की दृष्टि से देखा है।

रूप में पाया जाता है । यदि ससार के पदार्थों पर केवल सत्ता गुण की ही दृष्टि से, विचार किया जाय, तो कहना पड़ेगा कि ससार के समस्त पदार्थों का आधार सत्तात्मक पदार्थ है । वेदान्तज्ञान ने ससार के पदार्थों का, केवल सत्ता की दृष्टि से, विचार किया है । इसलिये उसने केवल एक सत्तात्मक पदार्थ ब्रह्म माना है । इस ब्रह्म सत्तात्मक पदार्थ में चेतन व अचेतन कई पदार्थ सम्मिलित हैं । इसी कारण ब्रह्म को त्रिगुण कहा है और उसकी व्याख्या 'नति नति' करके निपेयात्मक रूप में करनी पड़ी है एवं उसका स्वरूप अनिवचनीय बनाना पड़ा है ।

(६) पूर्व मीमासा

पूर्व मीमासा के प्रणता श्री जमिनि आचार्य ह । इन्हान वेद विहित वमकाड का प्रतिपादन किया ह । इसके अनुसार मनुष्य को वेद विहित देवी देवताओं की पूजा यज्ञ एवं बलि देनी चाहिये । इन कर्मों से उसका स्वर्ग एवं अन्न प्रकार के सुख व सम्पत्ति प्राप्त होती ह । मनुष्य का अपने कर्मों का फल स्वयं मिलता रहता ह । कर्मों का फल देने वाला कोई ईश्वर नही ह न सत्कार का कोई व्यवस्थापक परमात्मा ह । वैदिक धर्म में अन्नक देवता मान गये ह उनमें मुख्य तीन ह —सूर्य इंद्र और अग्नि ।

सूर्य आकाश का राजा और सरदार ह । ऋषि देवता उसको पय प्रदणक मानते ह और वह उनको अन्नक जीवनदान देता ह । इंद्र वज्र का अधिष्ठाता ह एवं देवताओं की सेना का सनापति ह । उसका ऋषि अमुरा का स्वामी विरिष ह जिसके साथ उसका सग्राम होता रहता ह जिसको इंद्र न अग्रणित बार परास्त व मत्कार किया ह परन्तु वह विरिष बार-बार उत्पन्न होकर सग्राम करता ह । वैदिक देवताओं में तीसरा बड़ा देवता अग्नि देवताओं का पुरोहित ह जिसके निमंत्रण पर, अन्न देवगण आते ह । यह देवताओं का मुख्य भी ह जो भोजन या बलिदान अग्नि को भेंट किया जाता ह वह अन्न देवताओं को पहुँच जाता ह । ये देवता बराबर हैं इनमें से किसी देवता की शक्ति दूसरे से सीमित नहीं ह ।

उपरोक्त तीन देवता व अन्य देवगण का जो वक्तान्त दिया हुआ ह यदि उनका शाब्दिक अर्थ लिया जाता ह तो वे कल्पित कथा एवं कहा लिया प्रतीत होती ह और उनसे पठन से बन्ने की महत्ता में वृद्धि नहीं होती वरन् श्रद्धा में कमी आ जाती ह । यदि वेदों की भाषा को अलंकारिक माना जाय और देवी देवताओं के वर्णन को आत्मा के गुणों का, क्यातक

के रूप में वणन समझा जाये तो यह उलम्बन मिट जाती है और य देवी देवता एव कथायें आत्म स्वस्व के सुन्दर विवचन में परिणत हो जाती है।

उपरोक्त देवताभा का वणन, अलवारिक भाषा में समझ कर निम्न प्रकार किया जा सकता है —

(१) सूर्य सवकता का बोधक है। ज्ञान का दृष्टान्त सदैव सूर्य के साथ दिया जाता है। जिस प्रकार सूर्य के आशान म प्रदीप्त होने से समस्त पदार्थ दिखलाई देन लगते हैं उसी प्रकार आत्मा में सवकता के विवसित हो जान पर समस्त पदार्थ उसमें आलोकित होन लगत है।

(२) इन्द्र में तात्पर्य सामारिक आत्मा से है जो सामारिक इंद्रिय भोगों में मस्त रहता है। इन्द्र के सम्बन्ध में निम्न प्रकार कथा है —

(क) इन्द्र न अथन गुरु बहस्पति की पत्नी के साथ व्यभिचार कम किया।

(ख) जिसके कारण उसके शरीर में फाड़ फुन्सा फूट निकले।

(ग) य फाड़ फुन्सी अहमा जा की कृपा से चक्षु बन गण।

इनके अनिश्चित इन्द्र के सम्बन्ध में यह भी कहा है —

(घ) इन्द्र अथन पिता का भी पिता है।

(च) इन्द्र का युद्ध सदैव अमुगा के स्वामी विरिच के साथ होता रहता है जिसकी इन्द्र न अगणित बार पराम्त एव संहार किया है परन्तु वह विरिच बार-बार जीवित होकर युद्ध करता रहता है।

इनकी व्याख्या निम्न प्रकार की जा सकती है —

(क) सामारिक आत्मा बुद्धि द्वारा ज्ञान प्राप्त करता है। ज्ञान भी गुरु द्वारा ज्ञान की प्राप्ति करता है अथएव बुद्धि ही मनुष्य (सामारिक आत्मा) की गुरु हुई। बुद्धि साधारणतया विषयवासना की—जिसकी

‘यह वणन श्री सी० आर० जन रचित ‘असहमत संगम’ (Confluence of opposites) नामक पुस्तक से लिया है।

तत्त्व बाह्य पदार्थों के योग्य रहती है—धीरे धारकपित होती है आत्मा का भार बहुत कम होती है—इसा कि प्रायः सप्ताह में देखा जाता है। इस प्रकार बुद्धि का साधारणतया सम्बन्ध बाह्य पदार्थ अर्थात् प्रकृति से है। इसलिये प्रकृति की बुद्धि की पत्नी कहा जा सकता है। जीव व प्रकृति व समागम को, अलंकारिक भाषा में, यह कह सकते हैं कि इन्द्र (सांसारिक आत्मा) ने अपने गुण (बुद्धि) की पत्नी (प्रकृति) से सम्भोग किया।

(स) मनुष्य ने बाह्य पदार्थों (प्रकृति) में मस्त रहने के कारण पाप कर्मों का बोधन किया जिससे सूक्ष्म पुद्गल परमाणु कम रूप में परिवर्तित होकर उसकी आत्मा के साथ सम्बन्धित हो गये। इन कम परमाणुओं का आत्मा के ऊपर आरोपित होना ही, फोरे पुन्सी का निष्पत्ति है।

(ग) मनुष्य को जब ब्रह्मज्ञान हो गया जब वह समझ गया कि उसकी आत्मा ही ब्रह्म है तो उसकी आत्मा ज्ञान से प्रकाशित हो गई। ज्ञान से प्रकाशित होना ही, नेत्रों का खुल जाना है। ज्ञान सम्पूर्ण आत्मा में व्याप्त है और आत्मा सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है इसलिये सम्पूर्ण शरीर में आत्मा का ज्ञान बतनाया है।

(घ) चिदानन्द स्वरूप परमात्म भवस्था ही आत्मा की सर्वोत्तम भवस्था है इसलिये उसको (चिदानन्द परमात्म भवस्था को), ससारी आत्मा का पिता कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त, चिदानन्द परमात्म भवस्था ससारी अपवित्र आत्म भवस्था से प्राप्त होती है अर्थात् चिदानन्द परमात्म का उपादान कारण ससारी आत्मा है इसलिये ससारी आत्मा को चिदानन्द परमात्म का पिता कहा जा सकता है। इसका अलंकारिक भाषा में निम्न प्रकार कह सकते हैं—इन्द्र (सांसारिक आत्मा) अपने पिता (चिदानन्द स्वरूप परमात्म) का भी पिता (उपादान कारण) है।

(च) काम बोध आदि क्षुब्ध वृत्तियों की असुरा की मना है। इन क्षुब्ध वृत्तियों का कारण मोह राजा (ममताभाव) है असुरा का स्वामी

यह जिसके साथ इन्द्र (भावा) का संबंध है।
 ती भात्मा जब आत्म ज्ञान समझ होकर प्रकृत
 परमात्म शक्त्या का प्राप्त होता है उस समय
 यों से धीरे सप्राम करके, उन्हें पण्डित मन्त्रों का
 होता है इसी को अलकारिक मन्त्र, अर्थात् देवता
 के साथ सप्राम करना एवं विधि का पालन करना
 जा सकता है।

(३) अग्नि तीसरा देवता है। अग्नि ने
 दी जाया करती है। यह सामान्य रूप से विद्वान् द्वारा
 मा इस प्रकार शुद्ध हो जाता है उस अग्नि के समान
 ता है। अतः अग्निदेव से तपस्या की जाती है। अग्नि देवता के
 वच में निम्न प्रकार कहा गया है -

- (क) उसके तीन पर है।
- (ख) उसके सात हाथ हैं।
- (ग) उसके सात जिह्वामें हैं।
- (घ) वह देवतामा का पर्याय है।
- (च) यह मध्य धीरे सप्राम करने से प्राप्त होता है।

(छ) वह देवतामा का वचन अग्नि पर चढ़ाया जाता है अग्नि देवतामा की हाता है।
 इतनी ध्यास्या निम्न प्रकार की जाती है -

(ब) तप तीन प्रकार का होता है -
 वच में करत है। यदि मन स्थिर हो वचन एवं शरीर
 दो पर नियंत्रण किया जाय तो तप ही तपस्या का आधार
 ही तपस्या का आधार है। तप ही तपस्या का आधार है।
 इन तीनों में से कौनसे तप ही तपस्या का आधार है। तप ही तपस्या का आधार है।
 इन तीनों में से कौनसे तप ही तपस्या का आधार है। तप ही तपस्या का आधार है।

उपरोक्त वाक्य से स्पष्ट है कि यदि ब्रह्म विहित देवी देवता एवं अन्य देवी कदाचिद् का आत्मिक गुणों का, अलंकारिक भाषा में, वर्णन मान लिया जाय, तो यह कथन बड़ा मनाहुर हृदयघ्राह्य एवं शिवाप्रद मान जाता है और सब प्रकार का विरोध मिट जाता है । उपरोक्त तान्त्रिकों के समान, अन्य देवगण भी आत्मा के अन्य गुणों के बोधक हैं और उनकी व्याख्या भी, उपरोक्त प्रकार से मानी जानी जा सकती है ।

(७) बौद्ध दर्शन

गई सा वष पूव महात्मा गीनमबुद्ध ने भारतवर्ष में जन्म लिया ण । उनका हृदय ससार में विद्यमान दुख एव धम के नाम पर बिय जाने वाल पगुवष से द्रवित हा गया था । उन्होने जिनन ही वष वन में रहकर अनक प्रकार की तपस्या आदि नरके दुख की समस्या का समाधान ढूँड निकाना । उन्होने मुख्य चार सिद्धान्त निर्धारित किये ष जिनको बौद्ध धम का स्तम्भ कहा जाता ह ।

(१) दुख का अस्तित्व—ससार म चारो ओर दुख का साम्राज्य स्थापित ह । प्रत्यक व्यक्ति किसी न किसी प्रकार के दुख से पीडित ह जिसस मुक्त हान के लिय वह सदैव उत्सुक रहता ह ।

(२) दुख का कारण—दुख का कारण यह ह कि मनुष्य विषय वासना की सृष्टि में जगा हुआ ह एव उसको अपन शरीर आदि स बडा माह व ममता ह ।

(३) दुख का दूर करना—यह दुख उस समय नष्ट हो सकेगा जब मनुष्य विषयवासना व इच्छा पर नियंत्रण प्राप्त कर ल और उसके हृत्त में वासना व इच्छा उत्पन्न न हो ।

(४) दुख दूर करने के उपाय—विषयवासना नष्ट करना ही ध्यय ह इसके लिय उन्होंने आठ धम वाल माग का उपदेश दिया ह, जा निम्न प्रकार ह —

(१) सत्य श्रद्धान (२) सत्य विचार (३) सत्य वाणी (४) सत्य चारित्र्य (५) जीवन निर्वाह के लिय सत्य आनीविका, (६) सत्य काय का प्रयत्न (७) सत्य (शुद्ध) वाता की स्मृति (८) सत्य समाधि ।

महात्मा बुद्ध न जीव के आवागमन एव भिन्न भिन्न यानियों में जन्म

धारण करने का ध्यान किया है और उपदेश दिया है कि ससार की प्रत्येक वस्तु में परिवर्तन होता रहता है कोई भी वस्तु एक ही दशा या भवस्था में कभी स्थिर नहीं रहती। परिवर्तन वस्तु का स्वरूप बदलाया है। उपरोक्त ध्यान से स्पष्ट है कि महात्मा बुद्ध ने आत्मा का क्या, उसकी विद्यमान बाह्य भवस्था की दृष्टि (प्रायोगिक नय) से किया है। तथा विद्यमान दुःखा से छूटने के लिये उचित मध्यम मार्ग का उपदेश किया है। आत्मा के स्वरूप पर उसके वास्तविक स्वभाव की दृष्टि (द्वैतीयिक नय) से विवचन नहीं किया है। यही कारण है कि ध्यान से विरोध का है।

महात्मा बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् उनके अनुयायियों ने इस सिद्धान्त—ससार की प्रत्येक वस्तु में परिवर्तन होता रहता है—का अतिशयोक्ति तक पहुँचा दिया है। उनके अनुसूत जीव में भी परिवर्तन होता रहता है। एक यानि में स्थित शरीर में एक आत्मा लगातार नहीं रहता है वरन् उसमें परिवर्तन होता रहता है। एक शरीर में जो आत्मा इस समय स्थित है दूसरे समय दूसरा ही आत्मा आ जाता है पहिला आत्मा उस शरीर से निकल जाता है। एक यानि से दूसरी यानि तक पहिले आत्मा का अस्तित्व, वास्तव में, नहीं रहता है। एसी दशा में आवागमन के सम्बन्ध में बौद्ध आचार्यों ने एक अनुसूत ही सिद्धान्त स्थिर किया है कि मृत्यु की मृत्यु के पश्चात् जगत् चरित्र सम्बन्धा मत्कार का समूह उसमें प्रयुक्त हो जाता है और नवीन यानि में पहुँच कर, पुद्गल के नये स्वभा के साथ मिलकर नवीन शरीर धारण कर लेता है। पिछले बौद्ध

¹ मध्यम मार्ग से उस भिक्षुक मार्ग का तात्पर्य है, जिसमें न तो शरीर स्थिर कष्टों का अधिक सहन एवं दुःख से बचने शरीर को कृप्य किया जाये और न जिससे गृहस्थ की भाँति इन्द्रिय विषय आदि भोग विलासों में ही लगा जाय।

भाषायों के अनुसार, जीव पुनर्गल स्वप्ना का एक पुत्र है जो अपने पूर्व चरित्र सम्बन्धी मस्कारों से सयुक्त रहता है । इस चरित्र सम्बन्धी सम्मत्ता से मुक्त होना ही, बौद्ध धर्म का निर्वाण है । बौद्धदार्शनिक इस जगत् का भ्रमनादि मानता है इसका रचयिता या सस्थापक किसी ईश्वर या चतुर्न व्यक्ति को स्वीकार नहीं करता है ।

(८) जैन दर्शन

जनघम इस युग व दशक में, भगवान् श्रुपभदेव को अपन घम का प्रवक्तृ मानता है, जिनका समय भुतकाल व अधकार में विद्युत् है। इस घम के अन्तिम उद्धारकर्त्ता भगवान् महावीर थे, जो भगवान् बुद्धदेव के समकालीन थे। जनघम न छ स्वतंत्र पन्थाओं को माना है जो अनादि काल से ही और अनन्त काल तक रहेंगे। इसके अनुसार जगत भी अनादि काल से ही और अनन्त काल तक रहेगा। यह दान किसी ईश्वर या परमात्मा को इस जगत का न स्थापक न सम्पन्नता मानता है।

इस दान के ६ मूलतत्त्वों में से दो मूलतत्त्व जीव (आत्मा) व पुद्गल (भौतिक पन्था) मुख्य हैं। जीव अनन्तान्त है जो अनादि काल से पूर्व कर्मस्कार व कारण इस समार की भिन्न भिन्न यानियों में शरीर धारण करते हुए भ्रमण एवं अनेक प्रकार के कष्ट भोग रहे हैं। जीव व पुद्गल दोनों पदार्थों की पारस्परिक क्रिया व प्रतिक्रिया से कर्म स्कार उत्पन्न होते हैं। कर्म सिद्धान्त का इन दान न बड़ा विवाद वणन धार्मिक द्वा से किया है जो पठन एवं मनन करने योग्य है। इस सिद्धान्त का विस्तार पूर्वक वणन पहिले 'कर्म सिद्धान्त' शीर्षक अध्याय व उसके पृष्ठ नाट में किया जा चुका है।

जैन दान के अनुसार, आत्मा अनेक गुण व पर्याययुक्त पन्था है। दान, ज्ञान ध्यान व वीर्य इस आत्मा के मुख्य गुण हैं। स्वभाव की अपेक्षा आत्मा में समस्त पदार्थों के देखन व जानन की शक्ति (सकलता), ध्यान एवं अनन सामर्थ्य है। ये गुण आत्मा में सर्व विद्यमान रहते हैं इनका नाश कभी नहीं होता। आत्मा का यह ज्ञान ध्यान व वीर्य कर्मों के कारण आच्छादित एवं विवृत हो रहा है। कर्मों के आवरण के

वाग्ज्वाला मनुष्य के ज्ञान में अज्ञानता या अधिवृत्ता देखी जाती है, आत्मा के अज्ञान ध्यान-स्वरूप के विद्युत् होन से, वाम, त्रयोघ्राणि अज्ञान प्रकार की भावनाएँ समाग्रा आत्मा में पार्ज्वी जाती हैं एवं आत्मा की अज्ञान शक्ति कर्मों से आवृत्त हान के कारण ग्राह्य गन्ध-रस-स्पर्श-घ्राणि के रूप में प्रकटित होती है। यह दान आत्मा की अवस्था की परिचयन मानना है। इसके अनुसार मानसिक चेत्या शरीर घ्राणि की स्थिति से बचाना रहनी है।

मनुष्य जब अज्ञान-संज्ञानात्त-स्वरूप की भलीभांति जानकर एक निश्चित क के वि उमचा वतमान अज्ञान-मतिन दगा एवं दुस्तपूर्ण स्थिति एवं कर्मों के कारण श रहती है अज्ञान आत्मस्वरूप में दृढ़ श्रद्धा^१ एवं उत्सव प्राप्त करने का पूण प्रयत्न करता है मन की विषय वामना ग हटाकर समय व तप द्वारा श्रद्धिया की नियमित तथा कर्मबन्धन का मूल करता है उम समय उत्तरी आत्मा गुह्य हारर परमात्म अवस्था की प्राप्त हो जाती है। अहम् अवस्था की प्राप्त करने अपनी स्थित ज्ञान ज्योति में समाज के समस्त पदायों का अवनाशन करना है एवं स्थित, असीमित अज्ञान में मग्न होकर अनुपम गुण का आस्वादन करता है। इस अहम् (जीव-मुक्त) अवस्था में कृत्वा वाज तप रहकर एवं समाज के प्राणियों

^१ जनधर्म ने सम्बन्ध-ज्ञान [आत्म-स्वरूप अथवा जीव १, अजीव २ कर्मों के अक्षय ३, बंध ४, सबर ५ (कर्म का रोकना), निजरा ६ (कर्म का पत्र देन एवं शक्तिविहीन होन के पश्चात् आत्मा के सम्बन्ध से पदक होना) एवं मोक्ष ७ (कर्मों से बिल्कुल मुक्ति) सप्त तत्त्वों का दृढ़ श्रद्धा], सम्बन्ध-ज्ञान (आत्म-स्वरूप अथवा उपरोक्त सप्त तत्त्वों का यथाप ज्ञान), व सम्बन्ध-कारित्र (आत्म-स्वरूप में लीन होना अथवा कारित्र का भगी भांति पालन करना) की मोक्ष का माग बतलाया है, इन तीनों के कारण करने का विशेष उपदेश दिया है।

शैली दिव्य बाणी द्वारा जानामूल पान कराकर मोक्ष का पदार जाता है ज्ञान प्रकृत का तब शिष्य भ्रान्त में मग्न रहता है और जहाँ उसके ज्ञान में सगार के समस्त त्रिलाकवर्ती पदार्थ भ्रालोकित होते ग्हा हैं।

उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि जैनदर्शन न आत्मा व ज्ञान भ्रान्त आदि गणों को उसका वास्तविक स्वरूप की दृष्टि (द्रव्यात्मिक नय) है एवं ज्ञानमत्त ससारी दशा का दाह्य अवस्था की दृष्टि (पर्याय नय) से, यानी दोनों दृष्टियों से विचार किया है। पूर्व में लिखा था कि इस ज्ञान न प्रत्यक्ष पदार्थ को अनकान्तात्मक अर्थात् अनकमन माना है और इसका कथन का दग स्याद्वाद^१ रूप है। जैनदर्शन न इस स्याद्वाद अथवा अनकान्तवाद पर बल्लुत हो अधिक जोर दया है। इन दर्शन की धारणा है कि स्याद्वाद का यथार्थ ज्ञान भिन्न भिन्न दर्शनों के विभिन्न एवं विरोधी सिद्धान्तों की भलीभांति समझ सकता है विचार्य सत विषय के भिन्न भिन्न गुण एवं अवस्थाओं का भिन्न भिन्न शक्ति से विवचन करके उनके विरोध को मिटा सकता है। विरोध को हटाकर जो सिद्धान्त निर्धारित होगा वही सत्य एवं यथार्थ होगा।

^१ स्याद्वाद का शाब्दिक अर्थ है कि (स्यात्-वाद) किसी वस्तु का किसी एक दृष्टि से वर्णन करना। स्याद्वाद कथन से तात्पर्य है कि किसी वस्तु के सम्बन्ध में जो कोई वर्णन किसी समय किया जाना है उसके सम्बन्ध में यह समझ लिया जावे कि यह कथन उस वस्तु के समस्त गुण व अवस्थाओं का नहीं है वरन यह वर्णन उस वस्तु के किसी एक विवक्षित गुण या अवस्था का किसी एक दृष्टि से किया गया है। उस वस्तु के अन्य गुण व अवस्थाओं का एक उस विवक्षित गुण का अर्थ दृष्टि से वर्णन, अन्य प्रकार ही होता है। ऐसा समझ लेने से किसी मनुष्य को उस वस्तु के सम्बन्ध में भ्रम नहीं होगा। इस सिद्धान्त का वर्णन पहिले भी हो चुका है देखो पृष्ठ २०६ ?

जनकम प्रदिपात्त चारित्र्य का प्रासाद अहिंसा सिद्धान्त का जन्म पर मढ़ा है। उच्च अय में, हिंसा शब्द से तात्पर्य वाम काय भाँति उन समस्त भावना एवं प्रवृत्तियों सह त्रिकोण हान से आत्मा की शान्त वृत्त अवस्था विकृत एवं नष्ट होता है। इस उच्च अय में, अहिंसा शब्द से तात्पर्य आत्मा की शान्त वीतराग अवस्था से है। शिष्य एवं जनक के सममान के हेतु हिंसा का भावना का हिंसा, असत्य धोष, अद्रव्य एवं परिश्रम (सासारिक पदार्थों से ममता एवं उनके ग्रहण करने का सातता) एवं भावनाओं में विभक्त किया है जिनको पाच पापा के नाम से पकटा है। इन पाच पापा के त्याग को अहिंसा सत्य अचोय ब्रह्मचर्य एवं अर्पण (परिश्रम त्याग) पाच व्रत कहा है। ये ही पाच व्रत जनकम सम्बन्धी सम्पूर्ण चारित्र्य के आधार हैं। इनकी ही सहायता के लिये अन्य व्रत व नियम बतलाये हैं। गृहस्थ व साधु अवस्था का परिस्थिति अनन्तर, व्रत व विवचन में अन्तर कर लिया गया है।

अहिंसा आदि पाच व्रत का वृत्त चारित्र्य के निषयात्मक पक्ष की दृष्टि में रखकर किया गया है। जब चारित्र्य के विषयात्मक पक्ष का वृत्त किया जाता है तो गुह्य परमात्मा अहन् के गुणा का स्तवन परमात्म अवस्था का ध्यान स्वकृत कार्यों की दैनिक भावोचना स्वाध्याय तप परोपकार भाँति नियम व काय—जिनके करन से आत्मा का शान्त वीतराग अवस्था प्राप्त करन में सहायता मिलती है—मुमक्षु जब के लिये बतलाये हैं। व नियम वास्तव में अहिंसा धर्म का निषयात्मक पक्ष है। अन्वीक्षण एवं अनुसन्धान द्वारा निर्धारित उपरान्त धर्म स्वरूप एवं चारित्र्य के कथन से जनकम कथित आत्म स्वरूप व चारित्र्य का वान दहत कुछ मिलता जुलता है।

(६) ईसाई धर्म

ईसाई धर्म के प्रवक्तक महात्मा ईसा ह । २००० वर्ष पूर्व एगिया के पश्चिम भाग में जेरुसलम नगर के समीप महात्मा ईसा न जन्म लिया था । वह प्रदेश उस समय रोमन साम्राज्य के अन्तर्गत था । वहाँ की जनता अज्ञानता एवं ऋद्धिवादी की ज़खीर में डूबा थी । प्रचलित धर्म रीति रिवाज एवं साम्राज्य के विरुद्ध कटूना श्री पाप समझा जाता था । प्रतिकूल विचारों के मुनन की क्षमता जनता में न थी अस्तित्वपूर्ण की मात्रा अधिक बढ़ी हुई था । ऐसी परिस्थिति में, महात्मा ईसा न इस पृथ्वी पर जन्म धारण किया था । यह बिम्बुल स्वाभाविक ही था कि इस परिस्थिति का प्रभाव उनके उपदेश एवं कार्यप्रणाली पर पड़ता । उन्तान अपना उपदेश कहानी (Parables) एवं अलंकारिक भाषा (allegories) के रूप में बना प्रारम्भ किया । उनका यह

“ Give not that which is holy unto the dogs
neither cast ye your pearls before Swine, lest they
trample them under their feet and turn again and
rend you ’ Bible *Mathew Chap 7 6*

ईसाइयों की पवित्र पुस्तक बाइबिल (मैथ्यू अध्याय ७ ६) में कहा है कि “पवित्र वस्तु को कुत्ते को मत दो, न अपने माती सुअर के सामने डालो नहीं तो वे उनको अपने परो के नीचे कुचल डालेंगे और तुम पर टूट पड़ेंगे तथा तुमको फाट डालेंगे” जिसका भाषा निम्न प्रकार है —
‘तुम अपना उपदेश कुत्तों को मत दो, वह तुमसे उल्टा अपसन्न हो कर तुम्हारा अहित करने के लिये उताह हो जावेगा ।

भय था कि यदि उलान प्रचलित धर्म एवं रीति रिवाज के विमूढ श्रुतमनुश्ला आन्दोलन किया, तो व स्वयं एवं उनके अनुयायी विपत्ति में पड़ जावेंगे और व अपनी गुम भावना को कायरूप में परिणत न कर सकेंगे ।

ईसाई धर्मावलम्बी प्राचीन समय के आचार्य यह भलीभांति जानते थे, कि महात्मा ईसा का सदुपदेश कहाना की अलंकारिक भाषा क पदों में टिपा हुआ है और उसका वास्तविक अर्थ शाब्दिक अर्थ से वही भिन्न है । वे सत्य का पहचानते थे । अर्वाचीन समय के आचार्य बाइबिल

‘It is not meet to take the children’s bread and to cast it unto the dogs Bible Mark VII 27

बाइबिल में (माक-अध्याय ७ २७) कहा है “यह उचित नहीं है कि बच्चों की रोटी ले ली जावे और उ हें कुत्तों के सामने डाल दी जावे” जिनका भावार्थ यह है कि यह उचित नहीं है कि जो उपदेश सुपात्रों के योग्य है वह कुपात्रों को दिया जावे ।

But without a parable spake he not unto them’ Bible Mark IV 34

बाइबिल में (माक अध्याय ४ ३४) में कहा है कि बिना कहाना के, वे उनसे (जनता से) नहीं कहते थे ।

‘ईसामसीह का भय घटना के रूप में सत्य निबला । महात्मा ईसा की मृत्यु उपरोक्त उपदेश के कारण शूली पर चढ़ा कर की गई थी ।

‘ And he said ‘Unto you it is given to know the mysterie of the Kingdom of God but to others in parables that seeing they might not see and hearing they might not understand”

Bible Luke VIII 10

तथा अन्य पुस्तकों का शाब्दिक अर्थ लेते हैं जिसका परिणाम यह हुआ कि ईसाई मत का प्रभाव पाश्चात्य स्त्री पुष्पो में हृदय से उठ रहा है।

महात्मा ईसा ने मानव जीवन को उच्च गुण एवं गान्तामय बनाने के लिये, बहुत ही उत्तम एवं उच्च उपदेश दिया है जिसका अनुसार जीवन से, मनुष्य की आत्मा गुण गान्त आनन्द रूप धवन्या का अनुभव करती है। महात्मा ईसा के विख्यात 'पर्वत पर के व्याख्यान' (Sermon on the mount) के कुछ अंग उद्धृत किये जाते हैं।

उन मनुष्यों को—जो न भय है—धर्म है क्योंकि उनका स्थान स्वर्ग में निश्चित है। मथ्यू (अध्याय १३)

व मनुष्य—जिनका हृदय गुण है—धर्म है क्योंकि वे परमेश्वर से मिल सकेंगे। मथ्यू (अ० ५८)

उन मनुष्यों को—जिन पर शयता के कारण अत्याचार किया जाता है—धर्म है क्योंकि उनके लिये स्वर्ग में स्थान सुरक्षित है। (मथ्यू अ० ५१०)

बाइबिल (लूक अध्याय ८ १०) में लिखा है कि उन्होंने (महात्मा ईसा ने) कहा 'तुम ईश्वरीय साम्राज्य के रहस्य को समझ सकोगे, परन्तु अन्य मनुष्यों के लिये कहानी में कहा गया है क्योंकि वे देखते हुए भी न देख सकेंगे और सुनते हुए भी न समझ सकेंगे'

Very many events are figuratively predicted by means of enigmas and allegories and parables and they must be understood in a sense different from the literal description (Tertullian) Ante Nicene Christian Library Vol VII, P 176

"Truth lies hidden veiled in obscurity" (Lactantius) A N C L Vol XXI p -

प्राचीन समय में कहते आते हैं कि त किसी को मन मार, क्योंकि चाय के तिन हिसब मनुष्य विपत्ति में पड़ जावगा परन्तु मैं तुमसे कहता हूँ कि जो मनुष्य अपने किसी भाद से, बिना विनाय कारण के, अप्रसन्न हागा वह भी चाय के तिन आपत्ति में पड़ेगा। जो मनुष्य अपने भाई से अपशब्द कहगा, उसका साथ भी पचायत बढोरता का बनावि करगी। जो दूसरे मनुष्य को मूल कहगा उसका नरक प्राप्तनायें महीनी होगी। (मथ्यू अध० ५—२१ २२)

प्राचीन समय से कहते आते हैं कि तू व्यभिचार मत कर, परन्तु मैं तुमसे कहता हूँ कि जो पुरुष किसी स्त्री का वाम दृष्टि से दृष्टता है, वह व्यभिचार का दोषी होता है, क्योंकि उसने अपने हृदय में उस स्त्री से काम सेवन कर लिया। (मथ्यू अध० ५—२८ २९)

‘ And with us indeed who have had handed down from our forefathers the mystery of the books which are able to deceive Clementine Homilies A N C L Vol XVII p 58

जिनके भावाय निम्न प्रकार है

बहुत सी घटनायें, अलकारिव भाषा में पहेली, दृष्टान्त एवं कहानी के रूप में, कही गई हैं उनका वास्तविक अर्थ गार्बिक अर्थ से भिन्न है।

टरटूलियन एंटी निसन त्रिदिव्यन पुस्तकालय पुस्तक ७ पृ० १७६ सत्य अर्थकार में लिखा हुआ है। (लेक्टनियस)

उक्त पुस्तकालय की पुस्तक २१, पृ० २

हमको अपने पूर्वजों से उन पुस्तकों का रहस्य —जिनसे साधारण जनता को भ्रम होता है—परम्परा से ज्ञात होता रहा है। (क्वमिटाइन होमीलीज)

उक्त पुस्तकालय की पुस्तक १७, पृ० ५८

यह कहा जाता है कि 'धर्म के बन्ध धर्मों पर न बन्धने पर (धर्मानु-
 ले को लैमा) परन्तु मैं तुममें बन्धा हू कि बुलाई के बन्ध बुलाई मत
 र। यदि कोई मन्थ्य तुम्हारे दाहिने गान पर ध्येय मार, तो तुम उसका
 र बायां गान भी कर दो। (मैथ्यू घ० ५—३० ३६)

यह कहा जाता है कि तुम धर्म पढीं तो प्रेम धर्म धर्मने ननु स द्वेष
 रो परन्तु म तुमने कहा है कि तुम धर्मने दन्तुर्मा स प्रेम करो जो तुमको
 नगान कर उन्हें धर्मार्थी दो जो तुमसे धर्म करते हों, उनके माध
 साईं करो जिसका बन्ध तुम्हारे साथ बुरा हा और जो तुम पर धर्म
 करत हों उनके धर्म बन्धान के धर्म प्रार्थना करो। (मैथ्यू घ०
 ५—४४ ४५)

तुम श्रेष्ठ जान दो, उगकी मूचना धर्म हाथ को भी न होत है। तुम्हारे
 धर्म गुण होना चाहिये। ईश्वर गुण बाला को देखता है, यह तुमको गुण
 धर्म का पुरस्कार देगा। (मैथ्यू घ० ६—३ ४)

महात्मा ईसा न उररोक्त प्रकार का उच्च उद्योग धर्म धर्म
 धर्मियों को श्रेष्ठ इस पत्नी को स्वर्ग में परिणत करत का प्रयत्न
 किया था।

धर्मानु ब परमात्मा का वास्तविक स्वरूप एक उनका पारस्परिक
 सम्बन्ध स्पष्ट रूप से ईसाई धर्म में नहीं निगमाया गया। महात्मा
 ईसा एवं ईसाई धर्म के पूर्व धर्मार्थों का धर्म धर्मार्थिक भाषा के धर्म
 में, धर्म हुआ है। उक्त धर्म का धर्मानुधर्म पढ़न एक सम्बन्ध से प्रतीत
 होता है कि धर्मानु ब परमात्मा वास्तविक इस धर्मानु द्वारा निर्धारित
 धर्मानु ब परमात्मा के स्वरूप से धर्मानु धर्मानु है, धर्म कि निम्नलिखित
 उद्धरणों में प्रमाण होता है —

तुम भी इतनी ही शक्ति एवं धर्म का प्राप्त करत जिसकी धर्म
 एवं धर्मानु तुम्हारे धर्म ईश्वर में है जो स्वर्ग में विराजमान है।
 (मैथ्यू घ० ३ ४०)

मन कहा ह कि तुम स्वय ईश्वर हो । (जान अध० १० ३४)

ऐसो ईश्वर का साम्राज्य तुम्हारे अन्दर ह । (लूक अध० १७ २१)

तुम भी वे ही विचार हृदय में धारण करो, जस कि ईसा मसीह में थ । ईश्वर का अवतार होत हुए भी, उसन ईश्वर सदा होन क प्रयास में अपराध नहीं समभा । फिलीपियन (ध० २—५ ६)

सबसे अधिक जानन योग्य यह ह कि तू अपने आपको जान ले । यदि तुम अपने आपको जान लोग तो तुम ईश्वर को भी जान जाओग । यदि तुम ईश्वर को जान लोग, तो तुम ईश्वर सदा हो जाओग । मुनहर या बढ़िया बपट पानन स नहीं, वरन् अच्छ काय करन एव अपनी आवश्यकताओं को कम स कम करन स ईश्वर तुय दे सकोग । (क्लीमेंट clement) एंटीनिस्तन त्रिश्चयन पुस्तकालय (पुस्तक ४ प० २७५)

(१०) इस्लाम धर्म

मसलमान धर्म के प्रवक्तक हजरत मोहम्मद साहब पगम्बर ह । ५०० वर्ष पूर्व पगम्बर साहब ने अरब देश के मक्का नगर में जन्म लिया था । उस समय वहाँ पर यहूदी, पागसी आदि धर्म का जोर था वहाँ की जनता बड़ी कट्टर अज्ञानता व रुढ़ियाँ में फँसी हुई एवं असहिष्णु थी । उनका देवताओं की पूजा होता थी । प्रचलित धर्म के रीति रिवाज के विरुद्ध किसी बात के मुनन थी, उसमें दामना न थी । जो मनुष्य प्रचलित धर्म या रीति रिवाज के विरुद्ध आवाज उठाता या प्रचार करता था उसको तलवार के धार उतार दिया जाता था । एसी परिस्थिति में हजरत मोहम्मद साहब ने जन्म लिया था । वहाँ की रीति के अनुसार माहम्मद साहब प्रच्छ वक्ता एवं झुड़सवार थ । व बचपन से ही विचारशील थ । हीरा पर्वत की गुफा में कितना ही दिनो तक रहकर तप व ध्यान किया था और उन्हें ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त हुआ था ।

मोहम्मद साहब न अपने धर्म का प्रचार, सतुलित भाषा में प्रारम्भ किया । इस पर भी उनका विरोध बढन लगा । उनके कुछ अनुयायी हो गये । उन पर आक्रमण हुआ । मोहम्मद साहब न अपने अनुयायियों की सहायता से आक्रमणकारियों पर विजय पाई । उनके अनुयायी बढने लग एव उनके धर्म में भी तलवार के जोर के साथ साथ वृद्धि होन लगी । मोहम्मद साहब धर्म प्रवक्तव के साथ साथ देश के भी शासक हो गये ।

यह स्वभाविक ही था कि वहाँ की परिस्थिति का प्रभाव मोहम्मद साहब के धर्म एव उपदेश पर पड़ता । इसलिये मोहम्मद साहब द्वारा रचिन करान में धर्म, समाज, न्याय, राजनीति आदि अनेक विषयों पर आयतों (पर) ह । कितनी बातें अनकारिक भाषा में कही गई ह और

कितन ही स्वाना पर सत्य टिपा हुआ है। वही की जनता बठार मत्स्य सुनन के अयोग्य थी। यदि मत्स्य स्पष्ट कहा जाना, तो सनव था कि सत्य वक्तव्या को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ता।

माहम्मद साहब न स्वयं पवित्र पुस्तक कुरान में कहा है कि पैगम्बर प्रत्येक देश में युग में उत्पन्न होते हैं और वे सब एक ही वास्तविक सत्य का उपदेश देने हैं। भिन्न भिन्न भाषाएँ एक तरीके से कोई मन्त्र नहीं पड़ता।

साधारण मुसलमान जनता इस जगत् को सृष्टि (ईश्वर) का बनाया हुआ मानती है। समस्त प्राणी समाज का निर्मापक ईश्वर है। वही मनुष्य को मृत्यु के पदचाल 'यायदिवस' के दिन उसके पण्डवों के अनुसार स्वर्ग में भेज देता है जहाँ वह अनन्त काल तक स्वर्ग का भुक्त भोगता है। वही मनुष्य को उसके पाप कर्मों के अनुसार, नरक में डाल देता है जहाँ धिरकाल तक नरक की यातनाएँ सहन करता है।

माहम्मद साहब न अपने अनुयायियों के ईमान (श्रद्धा) स्तान पर जोर दिया है। प्रत्येक सम्भव मुसलमान को ईश्वर, 'यायदिवस' के पैगम्बर मोहम्मद साहब पर विनाय कर, ईमान स्ताना चाहिये और परोपकार के कार्य में लगना चाहिये। उन्होंने अपने अनुयायियों के लिये, निम्नलिखित धार्मिक कार्य निश्चय किये हैं —

(१) नमाज पढ़ना (प्राथना) — ५ बार नमाज पढ़ी जावे जिसमें ईश्वर की स्तुति होती है। शुक्रवार के दिन विनाय कर नमाज पढ़ी जावे।

(२) रोजा (उपवास) रखना — आत्म शुद्धि के इन्तियासना पर नियंत्रण प्राप्त करने के लिये, उपवास रखा जावे। इसके लिये रमजान का मास विनाय कर नियत किया गया है जिसमें भोजन एवं जल का त्याग दिन में बतलाया गया है बस रात्रि में भोजन किया जाता है। इन दिनों में हल्का भोजन एवं अपने विचार के इन्द्रियो को बग में रखना चाहिये। इन दिनों में अपना कहेता शोष दाह आदि भावना का रचना निषिद्ध ठहराया गया है।

(३) हज (तीर्थयात्रा) करना—मक्का तीर्थस्थान पर जाना। इस तीर्थयात्रा में अत्यन्त शुद्ध रहने का आदेश दिया गया है, जीवा की हत्या करना भी निषिद्ध बताया गया है।

(४) उषात (गान)—सुमुक्षित टुलित, श्रेणी व्यक्तियों की सहायता, कृष्णी ध्यक्षिष्या की मुक्ति आदि धार्मिक कार्यों में धन व्यय करने का उपदेश दिया गया है।

जनता के चारित्र्य को उन्नत करने के हेतु मोहम्मद साहब न अपन अनुयायियों को नम्र, पवित्र, सहिष्णु आदि रहने का उपदेश दिया है। सच्चे मुसलमान को अपनी प्रिय से प्रिय वस्तु के त्याग के लिये, तयार रहना चाहिये। माता पिता की सेवा और आपस में भातभाव व प्रेम के साथ बतना चाहिये।

मुसलमानों में सूफियों का एक बड़ा दल है जो कुरान की भाषा को धर्मकारिक समझता है व उसकी व्याख्या भी धर्मकारिक ढंग से करता है। ये सूफी बड़े दार्शनिक हुए हैं। ये अपनी व्याख्या को गुप्त रखते हैं। साधारण मनुष्य से अपना सम्बन्ध गुप्त सत्य नहीं बतलाते हैं। ये सूफ़ी आत्मा को गान ध्यान-दमय मानते हैं और अपन भापकी भी स्वय ईश्वर समझते हैं। इनकी धारणा बदान्तिव सद्गुण है। ये सूफ़ी अपन सत्य गुप्त विचारों को प्रयोग्य कुपात्र व्यक्ति को नहीं बतलाते थे, यदि उसने (अपात्र व्यक्ति न) अप्रसन्न होकर, साधारण जनता से कह दिया तो उनको राजदंड सहता पड़ेगा। हनाज के मसूर नामी विख्यात सूफ़ी के मुख से—आत्मिक ध्यान म भस्त हो जान पर—'ग' निकल पड़े 'म' ईश्वर है (الالحق)। उसको इस कथन के लिये, प्राणदंड की सजा सुगुत्रनी पड़ी।

प्राचीन मुस्लिम विद्वान व दार्शनिक थी इब्नेइब्ने¹ कुरान की भाषा

¹ थी इब्नेइब्ने स्पेन देश के कारदोवो (Cardovo) शहर में

को अलवारिक मानते थे और अर्वाचीन मुस्लिम विद्वान श्री खाजा खा (Mr Khaja Khan) न भी तसव्वुफ के अध्ययन (Studies in Tasawuf) नामी पुस्तक में स्वीकार किया है कि इस्लाम धर्म की पवित्र पुस्तक कुरान अलवारिक भाषा में लिखी हुई है। विद्वान अण्डरसो जी ज० पी० ब्राउन (J P Brown) न 'दरिश्स' (Deris hes) नामी पुस्तक में कुरान शरीफ को अलवारिक भाषा में हाना लिखा है।

कुरान शरीफ में गाय के बलिदान की एक कहानी दी हुई है, जिसका हिन्दी अनुवाद श्री सेत द्वारा रचित अंग्रेजी कुरान शरीफ के अनुसार, लिया जाता है। इस कथा से स्पष्ट है कि इसकी भाषा अलवारिक है —

एक मनुष्य ने, अपना मृत्यु के समय अपना पुत्र शिशु लेकर बछिया छोड़ी जा पुत्र की युवा अवस्था तक जंगल में भूमती रही। उसकी माता ने कहा कि बछिया तेरी है तू उमको जंगल से ल आ और बाजार में जाकर तीन अर्शिया में बच दे। वहा देवदूत ने मनुष्य के रूप में आकर गाय के मूल्य में छ अर्शिया उसका देनी चाही। उसने बिना माता की आज्ञा के नहीं ली। माता की आज्ञा प्राप्त करके, वह फिर बाजार में आया और देवदूत से मिला। देवदूत ने गाय के मूल्य में अब दूनी अर्शिया देनी चाही इस बात पर कि वह माता से इस बात को न कहे। नवयुवक इस बात को अस्वीकार करके अपनी माता के पास आया और अधिक मूल्य प्राप्त होने की बात कही। माता ने यह समझ कर कि वह देवदूत है अपने पुत्र से कहा कि उसके पास जाओ और उससे पूछो कि इस गाय

बारहवीं गताब्दी में उत्पन्न हुए थे और वहां पर Averros के नाम से प्रसिद्ध है। इन्होंने बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं, देखो *Outlines of Islamic Culture* by Mr A M A Shustery

हा क्या किया जायगा। इस पर दयदूत न नयनयुक्त स कहा कि अन्त्यकाल
 न ही इसराइल (Israel) के पुत्र इसरा वहुत अधिक मूल्य में मान
 लेंगे। कुछ समय पदवान् हमल नामी एक इसराइल का एक सम्बन्ध
 न काट जाता और इस घटना को छिपाने के लिये उसकी लाश को घटना
 से दूर दूर रखा गया। अधिक व्यक्ति के मित्रा न मूना पशुधर के
 कानन, अन्य मनुष्या पर इस दोष का आरोपण किया। उनके अम्बीकार
 कानन पर किसी साक्षी के न होने पर पशुधर माहृय न एक गाय का—
 या अथवा चिह्न की हो—बलिदान करने का आदेश दिया। अनाथ नय
 उरुह की गाय के प्रतिरिक्ता अथ कोई गाय उग विरुह की न थी इगलिय
 उरुह उग गाय का इतना अधिक स्वयं शिवा अिनजा उगवा। रथका (गाय)
 न का रचना था। कुछ कहते हैं कि गाय के अदन का रथका शिवा और
 रथकी सम्मति में यजन से भी दस गुणा स्वर्ण था। उग गाय का अन्तिम
 किया गया और उग अधिक व्यक्ति की लाश का स्थान कराया गया।
 अन्तिम पुरप जीवित हो उठा और अन्तिम अधिक का नाम बतना दिया।
 का मनुष्य गत्वान गिन्कर अन्तिम को फिर प्राप्त हो गया।

यदि इस कथा का अर्थ साक्षिक किया जाय तो यह अर्थ असाध्य
 है। यदि इस कथा को अन्तिमकारिक समझा जाय तो यह एक महान् मन्त्र
 की छात्रक हो जाती है। श्री अनाम उरुह कमी—या अन्तिम अन्त
 में विनाश कर लुकी समाज में उरुह स्थान रणों है—इस अन्तिमकारिका
 का अन्तिम में (इस्ताम मन्त्र भाग २ प० १२३-१८) कविता रची है,
 अन्तिम में अन्त की अन्त (इन्तिम अन्तना) अन्तना है। इस कविता के
 अन्त में अन्त है कि न इस कथा को अन्तिमकारिक समझने से। इस
 कथा के अन्तिमकार की अन्तना श्री गी० धार० ईन न "अन्तिम अन्त
 (confluence of opposites) नामी पुस्तक में अन्त अन्त अन्तों
 में की है श्री अन्त अन्त है -

अन्तिम में अन्त अन्त अन्तना का है अन्तना के अन्तना के अन्तना

रक्षक कोई नही है । बधिया एव गाय सं अथ नपस अर्थात् मन व इन्द्रिय सं है । जगल की उपमा सत्तार से ही गर्ह है जिसमें प्राणी भ्रष्टता फिरता है । माना मे अथ बुद्धि का है । बाजार का अर्थ जगत से है । तीन प्रशक्तिया मे अथ है भावश्यकता आराम एव एश की वस्तुप्रा से । देव दूत से अथ है उस मनुष्य के पूव पुण्य कम का फल । इमराइल से—जो मत्स्य को प्राप्त हुआ—तात्पर्य गुद्ध आत्मा सं है जो प्रकृति (इन्द्रियवासना) के संयोग में अगुद्ध हो गया है । इस वषा का तात्पर्य यह है कि मनुष्य जब बटा हुआ और उसके बुद्धि उत्पन्न हुई तो उस (बुद्धि ५पा माता) न प्ररण की कि तू खन कून में समय व्यतीत मत कर, अपनी इन्द्रिय वासन को वग म करके व्यापार कर, जिसमे तगी सासारिक भावश्यकतायें पूरी एव कुछ वस्तुयें आराम व एश की भी प्राप्त हो जावेंगी । जब वा इन्द्रिया का वग म करके व्यापार म लगा तो उस समय पूव पुण्य कम की भावना न प्ररित किया कि तू मूख है यदि तू इन्द्रिय एव मन को संयमित रख सकता है तो तुम्हको उपरोक्त तीनों प्रकार की वस्तुयें ही नही, बरन् बहुत कुछ सुख की सामग्रिया प्राप्त हो सकगी । जब बुद्धि इस बात व लिये तम्पार हा गई कि अधिक समय द्वारा मन एव इन्द्रिय वासन (नपस=गाय) को वग में कर ल तो पूव पुण्य कम न फिर प्ररण की कि यदि तू मन एव इन्द्रियो को पूणतया वग में कर लगा, तो तू अनुपम धानन को—तो अमल्य है—प्राप्त कर सकगा ।

इस वषा का पिछला भाग उस वात्विवात् से सम्यग् रक्षता है, जो भौतिकवादी (Materialist) और आध्यात्मिक (Spiritualist) में आत्मा के सम्यग् म चला आता है कि आत्मा क्या पदार्थ है ? जो क्या एसी दशा में है ? इसके निणय के लिये एक ऐसे आचार्य का भावश्यकता हुई जिसने इन्द्रियो को दमन करके जानानन्द अवस्था को प्राप्त कर लिया है । वह ससारा आत्मा (मत इमराइल) आचार्य के पास—जो इन्द्रिया (नपस=गाय) का वग में करके जितन्द्रिय हो गये है—

गया। आचाय के दान एवं उपदान (स्नान) में उसका धर्म हट गया एवं वह फिर आ-यात्मिक (जीवित) हो गया। ऐसा होने पर फिर बाह्य शरीर को त्याग कर मुक्त भवस्त्रा को प्राप्त हो गया (अर्थात् उमका बाह्य शरीर पथक हो गया)। इस प्रकार उपरोक्त कथा को यदि अन्वार्थिक समझा जाव तो वह एक बड़ सत्य की घोषक हो जाती है।

कुरान का आयना (पदों) में स्पष्ट है कि ईश्वर किसी के साथ अन्याय नहीं करता है। मनुष्य कम कम करता है उन्हा के अनुसार वह फल देता है।

आत्मा न जा पुण्य कम किय है उनके सस्कार उसके साथ हैं। जो बुर कम किय है उनके भी बुर सस्कार उसके साथ हैं (कुरान २ प० २८६)

अर मनुष्य जो आपत्ति नेर ऊपर आती है वह तुभम ही उत्पन्न हुई है। (कुरान ६ प० ७६)

जो विपत्ति तुम्हार ऊपर आती है वह इस कारण से है कि तुमन उसको अपन हाथा से किया है। (कुरान ४२ प० ३० ३२)

ईश्वर मनुष्य के साथ बार् अन्याय नहा करता है मनुष्य स्वय अपन साथ अन्याय करता है। (कुरान ५०, प० ४४)

मनुष्य के अतिरिक्त, पग पशिया में भी आत्मा मानी है। कुरान (अध्याय २४) में कहा है - क्या तू नहीं देखता कि पथ्वी व म्यग के समस्त प्राणी ईश्वर की स्तुति करते हैं और पानी भी अपन पर फला कर।

अलबयान (Al Bayan) में कहा है कि अन्द्रिया मनुष्य के ही बबल नहीं ईश्वर का यह उपकार पगु जगन तक ही नया अपितु वनस्पति तक पहुचना है। उनकी प्रवृत्ति बच्चा के पालन की

रीति^१ भाग्य पदार्थों के सग्रह पारस्परिक प्रेम, जन्मुमा से घृणा अप
हानि व नाभ या समभजा रोगियों की सेवा गुश्रूपा आदि से विस
होता है। अनग स्पष्ट ह कि उनके इन्द्रिया होता ह और उनका श
हागा ह।

आमा वं सम्बन्ध में मोहम्मद साहब से प्रश्न किया गया तो उन्ह
उत्तर दिया कि आमा ईश्वर के आदेश से है^२। यह स्पष्ट भाषा
ह जिसका अर्थ गुप्त ह। उसका वास्तविक अर्थ अरब के तत्कालीन प्रचलित
विचार से अवश्य भिन्न हागा नहीं तो व स्पष्ट भाषा में उत्तर दते।

^१ देशी इरान श्री सेल द्वारा अग्रज्ञा भाषा में रचित।

^२ श्री लाजा खा ने इस्लामी दशन (Philosophy of Islam) में सम्बन्धित आयत को अंग्रेजी में 'By command of God' शब्दों में उलया किया ह।

५—उपसंहार

ज्ञान व धर्मों के उपयोग व सदाप वचन से स्पष्ट है कि इन प्रचलित धर्मों में क्या तक समानता एवं मतभेद है और उस मतभेद का कारण क्या है। पाठकों के ललाय यह समानता सदाप में निम्न प्रकार कही जा सकती है —

१ समस्त ही प्रचलित धर्मों न मनुष्य के अन्तस्थित ज्ञान एवं भावना युक्त पशु को आत्मा माना है और इस आत्मा को सुख, धर्मिक इन्द्रिय अगाधर एवं भौतिक पदार्थ का गुणा से विलक्षण गुणधारी बनलाया है।

२ सब ही धर्मों की धारणा है कि यह मनुष्य मोह के कारण, इन्द्रिय वासना की सृष्टि को ही सुख मान लेता है। विषय वासना, वास्तव में सुख नहीं है वरन् दुःख रूप है। सांसारिक सुखों की प्राप्ति में सलग्न होने से, मनुष्य में काम, क्रोध आदि अनेक अशुभ भावना व शुद्ध वृत्तिया उत्पन्न होती है जिनसे मनुष्य का भविष्य में दुःख उठाना पड़ता है एवं उसका नतिक पतन हो जाता है। इसलिये समस्त धर्मों न सांसारिक सुख एवं विषय वासना की सृष्टि को हृदय अन्तःकार, समय द्वारा ही पर विजय प्राप्त करना निश्चित किया है।

समस्त धर्मों का उपदेश है कि जीवा पर दया करनी चाहिये, किसी भी प्राणी को मनाया न जाव। टुलित मनुष्यों को दुःख से मुक्त कराना भूखा को भोजन कराना रोगियों को औषधि देना एवं उनकी सेवा करना मनुष्य मात्र का कर्तव्य है। समस्त मानवसमाज का धर्म सत्ता समझ कर, प्रत्येक व्यक्ति के साथ आननभाव से बतना चाहिये। सब ही धर्मों न अज्ञान को त्याग बतलाया है। अग्रिय, कठोर, निन्द्य अहकारयुक्त

वचनों की निगाही है। दैनिक व्यवहार में एत रन्ति स्पष्ट एव गिप्यता का व्यवहार करने का आदेश दिया है। मन्त्रि आदि मानक वस्तु का—जिसके प्रयोग से मनुष्य मत्तोमत्त होकर अज्ञानी हो जाता है एवं अनेक प्रकार के दुष्कर्म कर डालता है—सबथा निषेध किया है। जूझा—जो अज्ञान का मूल है, उसे आदि शुद्ध वस्तुओं का वर्द्धक है व जिससे अनेक अनेक अज्ञान होत है—सबथा त्याग कहा है।

प्रत्येक धर्म न धारी की निगाही है। किसी मनुष्य की धन सम्पत्ति घोषा देकर अपहरण करना धरोहर इजम कर लाना अज्ञान द्वारा धनी पाजन करना आदि काय का धर्णित बताया है। स्त्रियों के साथ भोग विलास में रत रहने को त्याग कहा है। अपनी विवाहिता स्त्री के अनि रिकत समस्त स्त्री गमात्र को माना वहिन के तुल्य समझने का आदेश दिया है। पर स्त्री को काम वासना की दृष्टि से देखना पाप बनता है। भारतवर्ष के समस्त धर्मों में तो पूर्ण ब्रह्मचारी रहना श्रेष्ठ समझा है। उक्त व्यक्तिके लिये—ओ आत्मक-वाण एव अन्तर्मित्त ज्ञान ध्यान स्वप्न प्राप्त करने का उत्सुक है—सचाग माग का उपदेश दिया है एवं विवाहिता स्त्री को भी त्याग कहा है।

मन इन्द्रिय एव इच्छाओं पर नियंत्रण प्राप्त करने के लिये, भोग व उपभोग की सामग्रिया सीमित की जावें। सांख्य जीवन व्यनीत करने के लिये मांसारिक आवश्यकताओं को घटाया जाव। केवल उद्वा वस्तुओं का उपयोग किया जाय जिनके बिना धरीरयात्रा कठिन हो। शोध प्रहकार आदि दुर्भावना एवं शत्रु वृत्तिया को नष्ट करके उनके स्थान पर, दया प्रेम आदि सद्भावना एवं उच्च वृत्तियों की वृद्धि की जाव।

३. समस्त प्रवर्तित धर्मों में धारित किया है कि मनुष्य को इस मानव जीवन के पदचात् परलोक में गमन करना है। यदि वह इस जीवन में शुभ कर्म करेगा इन्द्रियों का दास होकर त्रिपय वासना में लिप्त न होगा

तो उसको परलाक में सुख मिलना एक स्वर्ग में जावगा, जहा चिरकाल तक सुख भोगगा । यदि मनुष्य पाप कम करगा, अन्य जीवा का सत्कार का भाव स धनोपासन करगा विषय वासना में रत रहगा तो परलाक में दुःख भागगा एक भस्म में जावगा, जहा चिरकाल तक अनक प्रकार की मानवार्थ सहन करनी हागी ।

भारतीय धर्मों के अनुसार ज्यों-ज्या मनुष्य समय ारा, इन्द्रिय वासना सामारिक इच्छा तथा क्षुब्धति पर विजय एक तपस्या द्वारा पूव सचित कर्मों का विनाश करना जावगा त्या-त्या उमका धामा गुड एवं उन्नत हाता जावगा । एक समय एसा धा जावगा जब वह समस्त कम जाल को नष्ट करके, शुद्ध हो जावगा उमके त्रिव्य ज्ञान में समस्त लोका क पणाय धानोचित होने लगेंग । पवित्र मान स्थान में पदच कर अनन्त काल तक अनुपम अलोकिक ध्यान में मान रहगा । यदि ईसाई व मुसलमान धर्मों की पवित्र पुस्तका की भाषा का अन्कारिक माना जाव, ता य धम भी भारतीय धर्मों के संग ही, आत्मा को उन्नत बनाकर परमात्म अवस्था तक पहुचने का माग दतताते ह ।

८ प्रत्येक धम की धारणा ह कि मनुष्य जैसा कम करता ह उमक अनुसार ही उसको पम मिलता है । जिन धर्मों न ईश्वर को कर्ता या कम पत्नता माना ह उनकी भी यही भावना ह कि मनुष्य जसा कम करता ह उसके अनुसार ही ईश्वर कमफल देता ह । ईश्वर विती प्राणी के साथ ध्याय नहीं करता ह ।

भारतीय धर्मों की भी यही धारणा ह कि मनुष्य अपन कर्मों क कारण इस समार में भ्रमण कर रहा ह नाना प्रकार की योनियों में शरीर धारण करना ह । जन बौद्ध योग, साय्य एवं बदान्त दर्शन के अनुसार कोई ध्याय धतन गति ईश्वर कर्मों का पत्न नहीं दता ह, प्राणी को अपन पूव कर्मों का पत्न स्वमेव (उपराक्त निर्धारित कमसिद्धान्त स न्यनाधिक मिलनी तुमनी पडति पत्र) मिलता रहगा ह । ईसाई व मुसलमान धर्मों

के अनुसार भी, ईश्वर 'मायदिवस पर प्राणियों को, उनके कम अनु
स्वर्ग अथवा नरक में भज देता है ।

यदि हम पुस्तक के अध्ययन व मनन करने से, पाठकों व हृत्प
अध्यात्मिक ज्ञान या विश्वास भिन्न भिन्न धर्मों व प्रति सहिष्णुत
आत्म उत्पन्न करने की भावना उत्पन्न हुई, तो लेखक अथवा प्रयास का स
समर्थन ।

इति

